[माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा कक्षा 11 हेतु
अनिवार्य हिन्दी की स्वीकृत पाठ्यपुस्तक]

धरती का सूरज

[महाराणा प्रताप के जीवन पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास]

श्यामसुन्दर भट्ट
उदयपुर

राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

इस पुस्तक में H.P.C. मिल्स का 58 G.S.M. का 22 × 36 साइज का कागज व 130 G.S.M. की कार्डशीट मुखपृष्ठ हेतु प्रयोग में ली गई हैं ।

प्रकाशक :
राजस्थान प्रकाशन
28-29, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2

संस्करण : प्रथम, 1998

मुद्रित प्रतियाँ : 1,50,000

मूल्य : 10.80 रुपये

लेवी : 30 पैसे

लेजर टाईपसैटिंग :
मैक सिस्टम,
किशनपोल बाजार, जयपुर

मुद्रक :
कोटावाला ऑफसैट
जयपुर

आत्म निवेदन

दिल्ली-आगरा के मैदानों का अरावली की चट्टानों से विरोध मात्र वर्षों का न होकर युगों का रहा है । जब-जब भी केन्द्रीय सत्ता की धूलभरी आंधी भारतवर्ष को निगलने के प्रयास में संलग्न रही, देश के शिलाखण्डों से उसे टकराना पड़ा । यद्यपि पाषाणों का भी विखण्डन हुआ तथापि अस्मिता की आग की चिनगारियाँ इस धरती के पुत्रों के मन में स्थाईभाव के रूप में पैठ गई । ये अग्नि स्फुलिंग कई बार मेवाड़ कहे जाने वाले भू-भाग में इतने प्रज्वलित हुए कि उन अंगारों की ऊष्मा आज तक अनुभव की जाती है ।

महाराणा कुंभा और सांगा की अघोषित अनाक्रमण संधि एवं विरोधियों के विरुद्ध आपसी सहयोग की नीतियों से वे लोग अनजान नहीं थे, जिनका ध्येय तलवार के बल पर तथाकथित राष्ट्रीय एकता स्थापित करना था । जिस समय प्रताप महाराणा पद पर अवतरित हुआ, उस समय तक केन्द्रीय राज्य सत्ता के विरुद्ध अनवरत युद्ध का वह तीसरा प्रहरी था । स्थितियाँ इतनी विकट थीं कि दिल्ली सल्तनत के सत्ताधीशों के स्वप्न मेवाड़ के स्मरण मात्र से भंग हो जाया करते थे ।

उन मध्यकालीन घटनाओं को स्मृति स्तर पर दोहराने की सार्थकता क्षरित होते मूल्यों के इस युग में अधिक समीचीन बन गई है । देश के नेतृत्व वर्ग की चारित्रिक कमजोरियों के तन्तुओं को पुराने मीनाबाजारों और कत्लेआम कर संपत्ति लूटने के प्रयासों में ढूँढ़ा जा सकता है । आवश्यकता है, ऐसे महापुरुषों को स्मरण करने की, जिससे प्रेरणा लेकर युवा पीढ़ी में यह विश्वास पैदा हो सके कि उनके पूर्वज किसी स्विस बैंक के खातेदार न होकर, घास की रोटी-खाने में अपना स्वाभिमान सुरक्षित समझते थे ।

प्रस्तुत उपन्यास उन किशोरों को समर्पित है जिनके मन में इस भूमि को माँ जैसा आदर देने के भाव हैं । प्रयत्न रहा है, कि महाराणा प्रताप के सोच को न्यायपूर्वक रेखांकित कर सकूँ । संभव है मेवाड़ के प्रति मोह के कारण यत्र-तत्र अतिरंजना हो गई हो । उपन्यास के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं, तथापि सूत्रधार के रूप में चारण कवि नामक काल्पनिक पात्र का सृजन किया गया है । आशा है कि यह उपन्यास पाठक वर्ग को देश के प्रति सोचने हेतु विवश करेगा ।

लेखन के पूर्व, मानसिकता निर्मिति हेतु प्रताप पर लिखने वाले सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

लेखक

"धरती का सूरज"

स्वातन्त्र्य वीर महाराणा प्रताप राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष की आन बान और शान के प्रतीक रहे हैं। श्री श्यामसुंदर भट्ट का उपन्यास "धरती का सूरज" इसी शान का मूल्यवान ऐतिहासिक दस्तावेज कहा जा सकता है जिसमें कल्पना का भी सुन्दर समन्वय है। वर्तमान में चारों ओर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से समाज में निरन्तर मूल्यों की गिरावट दृष्टिगोचर हो रही है। आधुनिक युवा-पीढ़ी के आदर्श "माइकिल जैक्सन व मैरेडोना" हो रहे हैं। ऐसे में भटकती युवा-पीढ़ी यदि महाराणा प्रताप जैसे चरित्रों को आत्मसात करें तो यह निश्चय ही समाज व राष्ट्र के लिए हितकर है। लेखक ने अपने तात्विक चिंतन एवं गवेषणा से तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियों, सत्ता प्राप्ति के लिए रचे जाने वाले कूट षड्यंत्रों, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा-अपराध जैसी स्थितियों को वर्तमान राजनीति के कालुष्य से जोड़कर रचना को प्रासंगिक बना दिया है।

छात्रों को प्रताप के जीवन की विषम-विकट परिस्थितियों से परिचित कराने के प्रयास में इतिवृतात्मकता आ गई है। लघु फलक के पात्रों की बहुलता के कारण अधिकतर सह चरित्र पूर्णरूपेण उभर नहीं पाये हैं। किंचित अपवादों को छोड़कर उपन्यास अपने नाम को सार्थक करता है। माध्यमिक स्तर में छात्रों के मानस-पटल पर अंकित यह "सूरज" निश्चय ही उन्हें जीवन संघर्षों की प्रेरणा से दीप्त करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। वर्तमान समय में इस प्रकार के चरित्रवान देशभक्तों की जीवनी अपनी प्रासंगिकता रखती है। आवश्यक संशोधनों के पश्चात् अब यह कृति मुद्रण हेतु प्रेषित किए जाने की अनुशंषा करता हूँ।

(डॉ. जी.के. राठी)

उपन्यास : उद्भव, विकास और प्रवृतियाँ

आधुनिक साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, जैसे—कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, व्यंग्य, रिपोर्ताज आदि। इन सब साहित्यिक विधाओं में उपन्यास साहित्य की अत्यन्त आधुनिक, लोकप्रिय एवं रोचक विधा है। अनेक विद्वान इसे आधुनिक युग का महाकाव्य मानते हैं।

अंग्रेजी में उपन्यास के लिए नावेल (Novel) शब्द प्रयोग में लिया जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ नवीन या नूतन है। हिन्दी में इसका रूपान्तर है उपन्यास, जिसका अर्थ उप यानि समीप और न्यास यानि रखना अर्थात समीप रखना है। इसका अभिप्राय है कि उपन्यास विधा में उपन्यासकार मानव-जीवन के चित्रण को पाठकों के निकट रखता है। वह गद्य में अपनी मनोरंजक शैली द्वारा मानव-जीवन का वास्तविक चित्र ऐसे ढंग से प्रस्तुत करता है कि पाठक उसे कल्पित कथा नहीं समझकर जीवन का वास्तविक चित्र समझने लगता है। उल्लेखनीय है कि तेलगू साहित्य में उपन्यास के लिए 'नावेल' शब्द के अनुरूप 'नवल' शब्द की रचना की गई है। इन दोनों शब्दों का अर्थ ओर प्रयोजन समान होते हुए भी 'नवल' शब्द पूरी तरह स्वदेशी है।

उपन्यासकार शिप्ले के अनुसार 'नाविल' शब्द से एक नवीन प्रकार की रचना का बोध होता है, जिसमें आधुनिकता और सत्य दोनों की प्रतिष्ठा पाई जाती है। फ्रांसीसी लेखक एवेल देवेल ने उपन्यास को एक बंधे आकार का गद्य आख्यान माना है, जबकि बेवस्टर के अनुसार उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों तथा उनके क्रियाकलापों का चरित्र-चित्रण रहता है।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री उपन्यास के कथानक को कौतूहलवर्द्धक और मनोरंजनपूर्ण बनाने को रेखांकित करते थे। हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र' मानते थे। आधुनिक काल के विद्वान लेखक स.ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' उपन्यास को 'व्यक्ति के अपनी परिस्थितियों के साथ संबंध के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व के रूप में स्वीकार करते रहे। इस तरह उपन्यास को हम मानव-जीवन के यथार्थ स्वरूप के चित्रण के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि यह मानव-मन को भी अनेक प्रकार से प्रभावित करता है।

उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास के स्वरूप को समझने हेतु इसके मूलतत्वों को समझना आवश्यक है। उपन्यास का आधार मानव-जीवन की घटनाएँ, व्यापार और क्रियाएँ होती हैं, जिन्हें कथावस्तु कहा जाता है। इन क्रियाओं या घटनाओं का संचालन मनुष्य करता है। इसलिए उपन्यास में पात्रों की सृष्टि हो जाती है। पात्रों के लिए परस्पर वार्तालाप की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उसी के द्वारा वे अपने मनोभावों को एक-दूसरे पर प्रगट करते हैं। अतः कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण भी हो जाता है। पात्रों के मनोभावों को

अभिव्यक्ति के द्वारा उनके चरित्रों की झलक पाठक को मिल जाती है और उपन्यासकार जिस ढंग से अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करता है या कथावस्तु प्रस्तुत करता है, उसमें उसकी शैली होती है। उपन्यास में शैली का प्रधान स्थान होता है। और, उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार पात्रों और घटनाओं के प्रति अपने दृष्टिकोण और अपनी सहानुभूति अभिव्यक्त करता है, जिसमें उसका जीवन-दर्शन निहित होता है। उपन्यास में देश-काल की ओर संकेत कर लेखक उसे वास्तविकता के रंग में रंगकर उसे एक अलौकिक कला के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे मानव-जीवन का वास्तविक चित्रण बना देता है। और, पाठक यह अनुभव करने लगता है कि यह उपन्यास जीवन की सच्ची घटना का चित्रण है। इस तरह एक सफल उपन्यास के लिए कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देश काल एवं वातावरण, भाषा-शैली और जीवन-दर्शन प्रमुख छः तत्व होते हैं, जिनका विस्तृत विवरण आगे दिया जा रहा है।

कथावस्तु—उपन्यास का मूल आधार कथावस्तु होती है, जिसकी वर्णना में उपन्यास की कला होती है। एक सफल उपन्यासकार अपने उपन्यास में जीवन की घटनाओं, व्यापारों और क्रिया-कलापों का एक क्रमबद्ध वर्णन करता है। कुछ विद्वान मानते हैं कि जिस प्रकार जीवन की घटनाओं का कोई क्रम नहीं होता, उसी प्रकार उपन्यास में इस प्रकार की क्रमबद्धता की प्रतिष्ठा करना अस्वाभाविक है। परन्तु, यह स्पष्ट होना चाहिए कि उपन्यास में जीवन का हूबहू चित्र फोटोग्राफ की भाँति नहीं होता, उसमें उपन्यासकार की अनुभूतियों के रस में डूबे हुए चलचित्र ही होते हैं। अतः उपन्यासकार को घटनाओं में तारतम्य स्थापित करना पड़ता है। इस प्रकार उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपने उपन्यास में कथानक तो वास्तविक जीवन से ले, परन्तु वह उसे अति रोचक बनाने का पूरा प्रयत्न करे। इसलिए घटनाओं और कार्यकलापों का एक क्रम में प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है।

मानव का अनुभूति-क्षेत्र बड़ा विशाल होता है और जीवन में हम न जाने कितनी अनुभूतियों को अपने हृदय में स्थान देते हैं। परन्तु उपन्यासकार अपनी समस्त अनुभूतियों को [illegible] रचना में प्रस्तुत नहीं करता, प्रत्युत वह उन्हीं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है, जो उसके विषय के अनुकूल हैं। उपन्यासकार जीवन के जिसक्षेत्र से अपने कथानक के लिए सामग्री लेना चाहे, उसका उसे प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव होना चाहिए। यदि उसे जीवन के उस क्षेत्र का अनुभव न होगा तो वह उपन्यास की रचना करने में असफल ही रहेगा। उपन्यासकार को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उसके उपन्यास में वर्णित घटनाएँ स्वाभाविक और वास्तविक हों।

कथोपकथन—पात्रों के परस्पर वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। वार्तालाप में अक्सर व्यक्ति की योग्यता, समय, देश और प्रसंग का ध्यान रखा जाता है। जिस व्यक्ति से हम बातचीत कर रहे हैं तथा जिस विषय को लेकर बातचीत कर रहे हैं, उसे जानने या समझने की उसमें क्षमता है या नहीं—इसका पहले विचार कर लेना चाहिए। जब हम अपने सामाजिक जीवन में वार्तालाप में यह ध्यान रखते हैं तो उपन्यासकार को इसके अतिरिक्त वार्तालाप में समय, देश, काल, पात्र एवं प्रसंग का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

कथोपकथन के माध्यम से पात्रों के चरित्र-चित्रण, कथा-वस्तु के प्रवाह और घटनाओं में तीव्र गति का संचार किया जा सकता है। उपन्यासकार पात्रों पर पूरा विश्वास रखे और साथ में सहानुभूति भी। जब पात्र कथन कर रहे हों तो लेखक को उन पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। कथोपकथन की प्रमुख विशेषता यह है कि वह मानवोचित और स्वाभाविक हो। उसे पढ़कर पाठक यह न कहे कि कोई भी मनुष्य ऐसी बात नहीं कहेगा। द्वितीय, उपन्यास में प्रत्येक पात्र का वार्तालाप अपने निजी ढंग का होना चाहिए, जिससे प्रत्येक पाठक यह आसानी से जान सके कि इस प्रकार का वार्तालाप अमुक पात्र का ही हो सकता है। उसमें अनुकरण, आडम्बर और अनुपयुक्तता नहीं होनी चाहिए। तृतीय, कथोपकथन में सरसता और सौन्दर्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। जो कथोपकथन सरस नहीं होते, वे पाठक को रुचिकर नहीं लगते। कथोपकथन मे अत्यन्त उच्च कोटि के दार्शनिक भाव या वैज्ञानिक मीमांसा का समावेश सर्वथा अवांछनीय है। चतुर्थ, कथोपकथन की भाषा स्पष्ट, प्रांजल और धारावाहिक होनी चाहिए। शब्दों का चुनाव बड़े कौशल से करना चाहिए। वाक्य छोटे और सारगर्भित हों। कथोपकथन अत्यन्त लम्बे और बोझिल भी नही होने चाहिए, पचम, कथोपकथन में विनोद, हास्य और व्यंग्य का भी प्रसंगानुकूल पुट देना उचित है। परन्तु इसका प्रयोग सतर्कतापूर्वक करना चाहिए नहीं तो अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। अनत में उपन्यासकार अपने किसी सिद्धान्त या आदर्श को जबरदस्ती स्थापित करने की कोशिश नही करे।

चरित्र-चित्रण—उपन्यास मे चरित्र-चित्रण से अभिप्राय उसमे आये पात्रों का कथानक, स्थिति, देश और काल तथा पात्र की प्रकृति के अनुसार चरित्र अंकित किया जाये। हम पात्रों में अपने जैसे ही मनोभावों का अनुभव करने लगें। जिस प्रकार हम राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, सहानुभूति, दया, उदारता, क्रूरता आदि मनोविकारों के वशीभूत हो कार्य करते हैं, उसी प्रकार उपन्यास के पात्रों में भी इसी तरह के मनोभावों को देखें।

एक उपन्यासकार को अपने उपन्यास में पात्रों के चरित्र-चित्रण में अति सावधानी बरतनी पड़ती है। पात्रों के चरित्र को अंकित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनका जन्म से लेकर अब तक का पूरा चित्र उपस्थित किया जाये। प्रत्येक मनुष्य के जीवन की सभी घटनाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इसलिए उपन्यासकार को वे ही घटनाएँ बड़े कौशल से चुन लेनी चाहिए, जिनका चरित्र-चित्रण में उपयोग हो सकता है।

उपन्यास मे चरित्र-चित्रण मुख्यत. दो रीतियों से किया जा सकता है—विश्लेषणात्मक और नाटकीय। विश्लेषणात्मक रीति के द्वारा उपन्यासकार उपने पात्रों के मनोभावों, विचारों एवं उनकी मानसिकता एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो का विश्लेषण करता है। उपन्यासकार पात्रों के चरित्र के सबंध में अपना निर्णय भी दे देता है। नाटकीय रीति के अनुसार उपन्यासकार अपने पात्रों को स्वतत्र छोड़ देता है और पात्रों के कथोपकथन तथा कार्य-कलाप द्वारा उनके चरित्र का विकास स्वतः ही होता जाता है। चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार उस प्रभाव को ही अंकित नहीं करता, जो वाह्य परिस्थितियों के द्वारा पात्रो पर पडता है, प्रत्युत वह पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का भी चित्रण करता है।

उपन्यासकार अपने पात्रों का चयन करने में स्वतंत्र होता है। वह उपन्यास के कथानक के अनुरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सुयोग्य पात्र ले सकता है। हाँ, चरित्र-चित्रण करते समय उपन्यासकार को सुरुचि का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। किसी भी पात्र का पाठकों पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। वास्तव में उपन्यास का महत्व और उसकी कला की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पात्रों का चरित्र-चित्रण पाठकों में उच्च भावनाओं का उद्रेक करे। पाठक घृणा, पाप, द्वेष, दुराचार, व्यभिचार से घृणा करने लगें और हमारी भावनाएँ श्रेष्टतम हो जायें।

देश-काल—मानव का जीवन देश और काल की सीमाओं से आबद्ध है। उपन्यास में जब मानव-जीवन का चित्रण होता है तब देश-काल का ध्यान रखना पड़ता है। और, यही कारण है कि उपन्यासकार अपने युग विशेष और देश-विशेष की सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, संस्कृति, सभ्यता और विचारधारा पर प्रकाश डालता है, जिससे उपन्यास वास्तविक और सजीव लगे। यदि उपन्यास में देश-काल का यथोचित ध्यान नहीं रखा जायेगा तो उसमें वास्वतिकता का नितान्त अभाव रहेगा। उसमें सजीवता नहीं झलकेगी और पाठक उसे एक कल्पित कृति कही समझेगा। देश-काल का प्रयोग उपन्यास के पात्रों को इस दृश्यमान जगत का मानव बना देता है और इस प्रकार वह मानव हृदय पर अधिक प्रभाव डालने में सफल होता है।

भाषा-शैली:

उपन्यास यथार्थ जीवन का सजीव चित्रण है, अतः उसकी भाषा स्पष्ट, सरल और रोचक होनी चाहिए। उपन्यास में प्रवाह हो, स्पष्टता हो तथा उसकी भाषा में जीवन की निकटता हो। जीवन्त भाषा ही पाठक को आकर्षित करती है। उपन्यासकार किसी भी भाषा शैली का प्रयोग करे, मगर वह मोहक और आकर्षक होनी चाहिये। चाहे वह आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी शैली, वर्णनात्मक या मनो-विश्लेषणात्मक हो परन्तु वह जिज्ञासापूर्ण और सजीव हो, जिससे पाठक बंधा रहे। यह उपन्यासकार पर निर्भर करता है कि उपन्यास लेखन में एक शैली का उपयोग करता है या एक से अधिक शैली का।

जीवन-दर्शन:

कला में, काव्य में, उपन्यास में जीवन का विरोध हो ही नहीं सकता। वे तो हमें उत्कर्ष की ओर प्रेरित करते हैं। जहाँ उत्कर्ष है, वहाँ जीवन है और जहाँ जीवन है, वहाँ नीति है, सदाचार है, सत्य है, अहिंसा है और है अपूर्व त्याग की भावना।

साहित्य हमें सत्य दर्शन कराने के साथ-ही-साथ सौन्दर्य का बोध भी कराता है। रवीन्द्रनाथ टाकुर ने सत्य ही कहा है—"जहाँ हमे सत्य की उपलब्धि होती है, वहीं हम आनन्द देख पाते हैं। जहाँ हमें सत्य की सम्पूर्णतया प्राप्ति नहीं होती, वहीं आनन्द का अभाव रहता है। जिस सत्य में हमें आनन्द नहीं मिलता, उसे हम जानते तो हैं, लेकिन उसे हमने प्राप्त नहीं किया है। जो सत्य हमारे लिए पूर्ण रूप से सत्य होता है, उसी से हमें प्रेम होता है, और उसी से हमें आनन्द की प्राप्ति होती है।" वैसे उपन्यास उपन्यासकार का कल्पना-चित्र होता है, मगर उसका आधार यह वास्तविक जगत् ही है। अतः उसमें जीवन के यथार्थ दर्शन का चित्रण होता है। एक सहृदय

उपन्यासकार जितना मार्मिकता के साथ जीवन के दृश्यों का चित्र खींचता है, उतना एक सामान्य व्यक्ति नहीं खींच सकता। इसलिए, उपन्यास सत्य के ऊपर जो आवरण है, उसे एक ओर हटाकर हमें उसका पूर्ण रूप से दर्शन कराता है। वह जीवन की व्याख्या में यथार्थ दर्शन करवाता है, और जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रकट करता है।

उपन्यास के प्रकार

वैसे तो अनेक विद्वान साहित्य-समालोचकों ने उपन्यासों का वर्गीकरण विविध ढंग से किया है, फिर भी उपन्यासों का वर्गीकरण उपन्यास के तत्वों-घटना, चरित्र-चित्रण आदि के आधार पर किया जाये तो अधिक उपयुक्त और वैज्ञानिक होगा। इस आधार पर उपन्यासों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) घटना प्रधान उपन्यास,
(2) चरित्र प्रधान उपन्यास और
(3) घटना-चरित्र प्रधान।

घटना-प्रधान उपन्यास में लेखक एक के बाद दूसरी घटना का वर्णन ऐसे ढंग से करता है कि पाठक के मन में एक प्रकार का कौतुहल पैदा हो जाता है और वह घटना की डोरी के सहारे उपन्यास का सृजन करता है। ऐसे उपन्यास मे घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं, जिससे उनका तारतम्य बना रहे। चन्द्रकांता, चंद्रकांता सन्तति, भूतनाथ आदि उपन्यास इसी श्रेणी के हैं।

दूसरे प्रकार के उपन्यासों में घटनाओं की प्रधानता के स्थान पर पात्रों के वार्तालाप, कार्य और मनोभावों की अभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। श्री जैनेन्द्रकुमार, श्री ऋषभकरण जैन, श्री चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में चरित्रों की ही प्रधानता मिलती है।

तीसरे प्रकार के उपन्यास वे हैं, जिनमें घटनाओं और चरित्रों का सामंजस्य पूर्ण रीति से होता है। ऐसे उपन्यासों में ही हमें जीवन का पूर्ण चित्र मिलता है। ऐसे उपन्यासों में घटनाएँ और पात्र एक-दूसरे पर पूर्णरूपेण आश्रित होते हैं। पात्र विशेष परिस्थितियों और अवस्थाओं में पड़कर अपने चरित्र का विकास करते हैं। हिन्दी में ऐसे उपन्यासों की सर्वप्रथम रचना का श्रेय प्रेमचंद को जाता है। उनके उपन्यासों में घटनाओं और चरित्र का पूर्ण सामंजस्य मिलता है। उन्होंने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है।

सम्पूर्ण उपन्यास विधा को समेटने हेतु उपन्यासों का वर्गीकरण निम्न प्रकार भी किया जाता है—

1. सामाजिक उपन्यास
2. चरित्र प्रधान उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास
4. आँचलिक उपन्यास
5. साम्यवादी वर्ग के उपन्यास और
6. वैज्ञानिक उपन्यास।

उपन्यास का विकास

कथा-कहानी की परम्परा भारत के लिए नई नहीं है। पंचतंत्र, हितोपदेश, वेताल पंचविंशति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुक सप्तति, कथा-सरित्सागर, बृहत्कथा-मंजरी, कादम्बरी, हर्ष चरित जैसी कथाएं और नीति-उपदेश की गल्पें संस्कृत के प्राचीन साहित्य में उपलब्ध हैं। फिर भी इन कृतियों को उपन्यास विधा में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि रूप विधान, कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ये कृतियाँ आधुनिक उपन्यास की कोटि में नहीं आतीं। फिर भी आधुनिक उपन्यास के विकास में इन प्राचीन कृतियों को कथा-साहित्य की परम्परा की प्रारम्भिक कड़ी मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

आधुनिक उपन्यास का सर्वप्रथम लेखन इटली में हुआ। आरम्भिक उपन्यासों की नैतिक और पौराणिक कहानियों में पतित स्त्रियों, दुराचारी पादरियों, असभ्य किसानों और कुलीन मध्यवर्गीय पात्रों का बाहुल्य रहा। इसके पश्चात् फ्रांस में रेबेल ने सन् 1532 में 'गरगन्तुआ' उपन्यास की रचना की। फिर सौ वर्ष तक फ्रांस में यथार्थवादी एवं रोमानी उपन्यास लिखे जाते रहे। सन् 1605 में सरवान्टे ने 'डॉन क्विग्जोट' की रचना की। इंग्लैण्ड में उपन्यास साहित्य का विकास अठारहवीं शताब्दी में हुआ।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में सेम्युअल, रिचर्डसन, लेमही फील्डिंग, गोल्ड स्मिथ, वाल्टर स्काट, डिकेन्स, थेकरे, जार्ज इलियट इत्यादि प्रतिभाओं ने जन्म लिया। इसी काल में फ्रांस में वाल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, बालजाक, जोलफ्लवेयर, तुर्गनेव द्वायत्सोवस्की, तालस्ताय, जैसी प्रतिभाओं ने अपनी अमर कृतियों से विश्व साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। इन साहित्यकारों का प्रभाव बंगला-साहित्य पर पड़ा और बंगला उपन्यासों की देखादेखी हिन्दी में उपन्यास लिखे जाने लगे।

हिन्दी उपन्यास काल को निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रारम्भिक काल या आदि काल,
2. प्रेमचन्द प्रभावित विकास काल और
3. आधुनिक काल।

1. प्रारम्भिक काल या आदि काल—संवत 1856 और 1865 के बीच सैयद इशा अल्लाखाँ ने हिन्दी में 'रानी केतकी की कहानी' नामक एक आख्यानिका की रचना की। यह हिन्दी की पहली मौलिक कहानी है। इसके बाद सं. 1929 में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षागुरू' हिन्दी का प्रथम उपन्यास लिखा। श्री रामकृष्ण वर्मा और श्री कार्तिकप्रसाद खत्री ने बंगला, उर्दू और अंगरेजी के अनेक उपन्यासों के अनुवाद किये।

इस काल में श्री देवकीनन्दन खत्री ने मौलिक रचना की। 'चन्द्रकान्ता' 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'भूतनाथ' तिलस्मी कथानक के वृहत् उपन्यास थे। इन उपन्यासों की उस जमाने में बड़ी धूम थी। कितने ही लोगों ने उनका आनन्द लेने हेतु हिन्दी भाषा सीखी। निस्सन्देह खत्रीजी ने हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार और विस्तार में अनुपम योगदान दिया।

श्री गोपालराम गहमरी ने सन् 1894 में हिन्दी उपन्यासों की रचना आरम्भ की। उन्होंने लगभग 150 से अधिक जासूसी उपन्यास लिखे जिनमें 'रहस्य-विप्लव', 'होली का हरबांग', 'जासूस की बुद्धि', 'हंसादेवी', 'दो लाख रूपया', 'भंयकर भेद', आदि प्रमुख हैं। श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने बँगला के ढंग पर उपन्यासों की रचना की। 'रजिया बेगम', 'राजकुमारी', 'तपस्विनी', 'इन्दुमती', 'लावण्यमयी' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास लिखे। पं. लज्जाराम मेहता ने धूर्त रसिकलाल, बिगड़े का सुधार, आदर्श-हिन्दू नामक उपन्यास लिखे।

2. प्रेमचन्द प्रभावित विकास काल:—उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम काल में मुंशी प्रेमचन्द का हिन्दी में प्रादुर्भाव हुआ। वे पहले उर्दू में लिखते थे। हिन्दी में उनका पहला उपन्यास 'सेवा-सदन' आया। प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि और गोदान उपन्यास बाद में आये। उनहोंने अपने साहित्य की रचना जन भाषा में की, इसलिए अनेक लोगों ने उनको पढ़ा और वे लोकप्रिय लेखक बन सके।

प्रेमचन्द ने आदर्शवादी यथार्थ का चित्रण अपने साहित्य में कर भारतीय परम्परा को निभाया और आधुनिकतम् नवीन प्रभाव से भी वे पृथक नहीं रहे। उन्होंने अपने साहित्य में प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया। उन्होंने पहली बार अपने उपन्यासों में देश की सामाजिक, राजनैतिक और मानवीय समस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्द के समकालीन लेखकों में जयशंकरप्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राधिकारमण प्रसाद सिंह, वृन्दावन लाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार आदि लेखक उभरकर सामने आये और उनहोंने हिन्दी साहित्य को नवीनतम रचनाएँ प्रदान कीं। इन रचनाकारों की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक क्रांति, वर्ग क्रांति तथा संघर्ष विशेष रूप से सामने आए और राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया।

जयशकरप्रसाद ने तीन उपन्यास 'तितली', 'कंकाल' और 'इरावती' लिखे, जिनमें 'कंकाल' महत्वपूर्ण है। इसमें स्त्री-पुरूष संबंधों में विवाह की पवित्रता को मान्यता प्रदान की गई है। विश्वम्भरनाथ कौशिक के 'माँ' और 'भिखारिणी' श्रेष्ठ उपन्यास हैं।

'बुधुआ की बेटी' पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का श्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें समाज के कुत्सित अगों पर निर्भीकतापूर्वक करारी चोट की गई है। 'हृदय की प्यास', 'वैशाली की नगरवधू' और 'वय रक्षामः' आचार्य चतुरसेन शास्त्री के चर्चित उपन्यास हैं, जिनमें समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया गया है।

वृन्दालाल वर्मा एक सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार हुए। 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी' उनके चर्चित उपन्यास हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा के बाद राहुल सास्कृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी और रागेय राघव

के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। उन्होंने ऐतिहासिकता और औपन्यासिक मार्मिकता दोनों का सफल निर्वाह किया है।

3. आधुनिक काल—इस युग के साहित्यकारों ने अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर वैचारिक पुष्टता को मजबूती से आगे बढ़ाया। इस युग में मानसिक मन्थन की शुरूआत हुई और प्राचीन नैतिकताओं के प्रति खुला विद्रोह भी होने लगा। आर्थिक विषमता के प्रति जनवादी दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा तथा जीवन मूल्य नयी दृष्टि से परखे जाने लगे। जैनेन्द्रकुमार इस युग के प्रथम उपन्यासकार माने जा सकते हैं जो सम्भवतः प्रेमचन्द के बाद हिन्दी के दूसरे सबसे श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। विषय-वस्तु, शैली, प्रवृत्ति, भाषा तथा अन्य सभी दृष्टियों से जैनेन्द्रकुमार का क्षेत्र प्रेमचन्द से भिन्न और मौलिक रहा है। 'सुनीता', 'त्याग-पत्र', 'कल्याणी' उनके चर्चित उपन्यास हैं, जिनमें शहरी जीवन के पात्रों को लेकर उनका मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। 'परदे की रानी' और 'जिप्सी' इलाचन्द्र जोशी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'पिपासा' व 'दो बहनें' उपन्यासों में नैतिक दुर्बलता के चित्रों को बहुलता से उभारा गया है, परन्तु वे आदर्श स्वरूप से हटे नहीं हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' में पाप, पुण्य, प्रेम, वासना इत्यादि प्रश्नों पर सूक्ष्म विचार प्रस्तुत किया गया है।

यशपाल की रचनाओं में मार्क्सवादी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान समाज की जर्जर शृंखलाओं पर आपने आघात किया है। 'दादा कामरेड', 'झूठा सच' और 'दिव्या' महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। राहुल सांस्कृत्यायन ने 'सिंह सेनापति' में आदर्श समाज की रचना की आवश्यकता पर बल दिया है। मध्यवर्गीय प्रेम तथा सामाजिक विद्रूपताओं को उभारने में विष्णु प्रभाकर, यज्ञदत्त आदि ने अपने उपन्यासों में सफल बनाया। रांगेय राघव के 'मुर्दों का टीला', 'कब तक पुकारूँ', अमृतलाल नागर के 'शतरंज के मुहरे', 'सात घूंघट वाला मुखड़ा', विष्णु प्रभाकर का 'स्वप्नमयी', फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल', अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी', नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ', मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा', राजेन्द्र यादव का 'सारा आकाश', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'शहर में घूमता आईना' कमलेश्वर का अधूरी आवाज आदि आधुनिक युग के चर्चित उपन्यास हैं। इस काल में विषय, संदर्भ तथा काल सब कुछ बदल जाने से सोच का परिवेश नूतन आयाम ले चुका है। अतः यह समय यथार्थ के प्रस्तुतिकरण के साथ समाज में व्याप्त कुण्ठाओं, त्रासदियों तथा लालसाओं को विविध कथा रूपों में उजागर करने का है।

□□□

(1)

"कविराज ! प्रश्न यह नहीं है कि महाराणा पद पर आसीन व्यक्ति ने मेरी पुत्री को उपेक्षित किया हुआ है, अपितु इस प्रश्न पर भी गंभीरता से सोचा जाना चाहिए कि प्रताप महाराणा वंश का उत्तराधिकारी है ।" पाली नरेश अक्षयराज की भृकुटियों की भंगिमा के भीतर छिपे ज्वालामुखी को प्रकट कर रही थी ।

"अन्नदाता ! आपका कथन सत्य है । तथापि मेवाड़ नरेश के समक्ष विरोध करने का कोई उपाय तो सोचा जाना चाहिए ।" युवक चारण कवि वास्तविकता के आधार खोजने में व्यस्त हो गया । जब से महाराणा उदयसिंह ने अक्षयराज की पुत्री एवं प्रताप की माता जैवन्तीबाई का तिरस्कार किया था, तब से ही खबरें उड़ना आरम्भ हो गई थीं । तिरस्कार का कारण था-तीखे नाकनक्श वाली राजरानी धीरजकंवर की कानाफूसी । मुग्ध महाराणा उदयसिंह ने प्रताप जैसे योग्य एवं उत्तराधिकारी को आदेश दिया था कि वह बिना स्वीकृति के चित्तौड़ के दुर्ग में प्रवेश नहीं करे । मध्ययुग के शासन के उस युग में सर्व-सत्तावादी पतियों के आदेश ही सब कुछ हुआ करते थे ।

"कविराज, आप मेरी व्यथा समझ सकते हैं । उदयसिंह को तो जाति के लोग क्षत्रिय मानने को भी तैयार नहीं थे । हमने अपनी पुत्री का विवाह कर उन्हें क्षत्रिय घोषित किया और आज ..... ? स्थिति यह है कि हमारी ही पुत्री की उपेक्षा ..... ?" अक्षयराज का चेहरा रक्तिम हो उठा ।

"अपने बेटे की बलि देकर, जब पन्ना धाय उदयसिंह को कुंभलगढ़ ले आई, तब आपने ही उनकी सहायता की थी ।" चारण कवि ने कहा । चित्तौड़गढ़ पर अपनी ध्वजा फहराने वाले दासीपुत्र बनवीर की झूठन खाने से मना करने पर कोठारिया के सामंत चित्तौड़गढ़ छोड़कर कुंभलगढ़ आ गए थे । पन्ना और कोठारिया के सामंत के प्रयासों से क्षत्रियों का एक सम्मेलन कुंभलगढ़ में किया गया । वहाँ क्षत्रियों की ओर से पूछा गया कि उदयसिंह वास्तविक क्षत्रिय हैं, या नहीं ? आशाशाह देवपुरा ने प्रमाण देकर कहा कि उदयसिंह ही पूर्व महाराणा सांगा का वंशधर था, किन्तु किसी ने तथ्यों को स्वीकार नहीं किया । एक पुराना पाप सामंत कह उठा-

"प्रमाण रोटी और बेटी का होना चाहिए ।"

"क्या मतलब ?" आशाशाह ने पूछा ।

"मतलब यह कि यहाँ एकत्रित क्षत्रियों में से जिस क्षत्रिय को यह विश्वास हो उदयसिंह ही पूज्य सांगाजी का पुत्र है, तो वह इनकी थाली में एक साथ भोजन करे, ... ।"

"और क्या .... ?

"उपस्थित क्षत्रियों में से कोई अपनी बेटी देकर यह प्रमाणित करे कि उदयसिंह सिसोदिया कुल का वंशज है।"

सभा में सन्नाटा छा गया। यकायक कोठारिया सरदार उठ खड़े हुए। वहीं का थाल मंगवाया गया। युवक उदयसिंह ने उस थाल में परोसे गए खाद्यान्नों को चखा अपनी थाली में से मिठाई के ग्रास सामंत श्रेष्ठ को दिए गए। सामन्त ने उसे सहज कर क्षत्रियों की उस महासभा के बीच खाना आरंभ कर दिया। पहली परीक्षा समाप्त हुई।

अब दूसरी समस्या बेटी की थी। कानाफूसी होना शुरू हो गई। पाली अक्षयराज ने ही उस समाज में साहस कर घोषणा की- "वीरों! आप सुनें! सूर्य और मेरी प्रतिज्ञा के साक्षी हों। पूर्वजों का त्याग और बलिदान मेरा सहायक हो। मैं अपनी जैवन्तीबाई का हाथ महाराणा उदयसिंह के हाथ में देने की घोषणा करता हूँ किन्तु पूछने वाले क्षत्रिय समाज से भी दो सवाल पूछना चाहता हूँ ....।"

सभा का वातावरण गंभीर हो गया। उदयसिंह दोनों ही प्रमाणों में सफल सिद्ध चुका था किन्तु अक्षयराज क्या पूछने जा रहा था ..... ? सभी के कान और आँख की ओर लग गए।

"पहला तथ्य तो सत्य साबित हो चुका है कि श्री उदयसिंह जी क्षत्रिय हैं सांगाजी के वंशधर हैं और मेरी घोषणा के अनुसार मेरे दामाद हैं। इसके साथ ही वे राज्य के सिंहासन के हकदार हैं। मैं पूछना चाहूँगा आप सभी क्षत्रिय पुरुषों से, कि क सदा से जिसे अपना सिरमौर मानते आए हैं, अब भी मानते रहेंगे ? मेवाड़ के ध्वज के अपनी पगड़ी झुकाते आए हैं, क्या अब भी वे ऐसा करते रहेंगे ?"

प्रश्न हवा में तैर गया। समाज के वीरों की भुजाओं के बल को मानो गया था। दो-चार सामंत खड़े हुए। उन्होंने न केवल मेवाड़ के आसन के प्रति निष्ठा शपथ ली अपितु अपने अंगूठे के रक्त से महाराणा उदयसिंह के भाल पर तिलक भी दिया। अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि दो-चार नहीं, लगभग समस्त क्षत्रिय उठ खड़ा हुआ, और महाराणा के आसन के प्रति अपनी निष्ठा की शपथ लेने लगा। मे एक-एक सरदार आसन के निकट आता। भाट और राव उस क्षत्रिय के वंश का देता और वह क्षत्रिय उदयसिंह के आसन को प्रणाम कर लौटता जाता। लगभग आधा तक यह क्रम चलता रहा।

"अब मेरा दूसरा निवेदन भी सुनें।" अक्षयराज का धीर-गंभीर स्वर सभा में शांति छा गई।

"मेरा निवेदन यह है कि समस्त क्षत्रिय समाज दो दिन यहीं विराजें। मैंने सवार भेज दिए हैं। मेरी पुत्री कल तक पाली से यहाँ आ जाएगी। चाहता हूँ कि आप की उपस्थिति में यह शुभ कार्य यहीं सम्पन्न हो जाए। आपका उपस्थित रहना अनुग्रह करना होगा।" अक्षयराज की वाणी क्षत्रियों के मर्म तक पहुँच रही थी। इसी कोठारिया के सामन्त खड़े हुए और कहने लगे—

"मित्रों ! अब महाराणा पद पर आसीन व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई संशय शेष न है । आप लोगों द्वारा व्यक्त की गई निष्ठा के प्रति भी किसी को कुछ नहीं कहना है । अ प्रश्न उठता है कि *क्या महाराणा की राजधानी कुंभलगढ़ ही रहेगी ? क्या आप नहीं चाहें* कि चित्तौड़गढ़ पर अपना शासन जमाए हुए दासीपुत्र बनवीर को सत्ताच्युत किया जाए ?"

सभा में उपस्थित कई वीरों ने अपनी तलवारें खींच कर कोठारिया सामंत के प्रश का उत्तर दिया । सामंत का स्वर दुबारा मुखरित हुआ—

"आपके उत्साह के कारण सभी को प्रसन्नता हुई, किन्तु मित्रों ! युद्ध तो गणि होता है । युद्ध कविता नहीं है । हम लोग अपनी-अपनी तैयारियाँ करें । जिन मित्रों व उपस्थिति आज यहाँ संभव नहीं हो सकी, उन्हें भी निमंत्रण भिजवाया जा रहा है । ठीव एक वर्ष बाद हम अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ यहीं पर मिलेंगे और चित्तौड़गढ़ की ओ प्रस्थान करेंगे ।"

इतिहास गवाह है कि उदयसिंह परिणय सूत्र में बंधे । ठीक एक वर्ष बा कुंभलगढ़ के राज प्रासादों में जैवन्तीबाई की कोख से प्रताप का जन्म हुआ और मेवाड़ व सेना ने कुंभलगढ़ से प्रयाण किया । बनवीर को भी पता चल चुका था । वह भी अपनी से के साथ आगे बढ़ा । पहली झड़प ग्राम माहोली (वर्तमान के मावली गाँव) में हुई । बनवी भाग कर चित्तौड़गढ़ में जा छिपा किन्तु उसकी सेना ने उसका साथ नहीं दिया । उसे चित्तौड़ गढ़ से भी पलायन करना पड़ा और चित्तौड़गढ़ के विजय स्तम्भ पर महाराणा उदयसिंह व ध्वज फहरा दिया गया ।

और ..... वही उदयसिंह आज उसी जैवन्तीबाई की उपेक्षा कर रहा था । प्रता जैसे योग्य उत्तराधिकारी को निर्देश दिए गए कि वह चित्तौड़ दुर्ग के नीचे बनवाए गए ए छोटे से आवास में रहे । अलबत्ता जैवन्तीबाई को यह छूट थी कि वह दुर्ग स्थित महाराण के अंतःपुर में रह सकती थीं किन्तु पति से उपेक्षित महारानी ने भी अपने पुत्र के कारण दु के बाहर निवास करना स्वीकार कर लिया था ।

अपने निजी कक्ष में बैठे अक्षयराज की आँखों में पिछले सोलह वर्षों के घटना क्रम का सिलसिला चलचित्र की भाँति ताजा दिखाई देने लगा । भारी स्वर में वे कहने लगे—

"कविराज ! आप चित्तौड़गढ़ जाएँ । महाराणा को समझाएँ । वहाँ के सामन्तों मिलें । वहाँ के आम आदमी में प्रताप के सम्बन्ध में फैली हुई धारणा का पता लगाएँ । प्रता मिलें । यदि मेरी पुत्री और उसके पुत्र को किसी यातना में फंसा देखें तो मुझे संके भिजवा दें । मैं उन्हें वहाँ लेने आ जाऊँगा । कविराज ! जैवन्ती मेरी पुत्री ही नहीं मेरा प्रा है । उसके कष्ट की कल्पनामात्र से मुझे रोमांच हो आता है ।"

"आप शान्त हों अन्नदाता ! मैं कल ही प्रस्थान करूँगा । मेरे साथ दो-चार साथिय ले जाऊँगा और लगभग एक महीने में पूरे समाचार लेकर आपकी सेवा में उपस्थित ह ऊँगा ।"

और अगले दिन चारण कवि के नेतृत्व में एक शिष्टमण्डल चित्तौड़गढ़ की ओ प्रस्थान कर गया ।

उधर चित्तौड़गढ़ के राजप्रासादों के गवाक्ष में बैठा उदयसिंह विजय स्तम्भ के शी बैठे मोर पक्षी की छटा को निहारने में व्यस्त था । उसकी चहेती रानी धीरजकुंव

महाराणा जी के लिए बादाम पिसवा रही थी। तीखे नाक-नक्श, रक्ताभ नेत्रों वाली व सुंदरी अपने पाँवों में बंधी स्वर्णसूत्र की पैंजनियों की खनक से उदयसिंह का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास भी कर रही थी। बीस रानियों के स्वामी उदयसिंह अपने खोए अतीत की किसी घटना की ओर अपना ध्यान जमाए हुए थे। रूपसम्पन्ना राजरानी की पैंजनियाँ भी जब असफल हो गई, तो उन्होंने धीरे से महाराणा के समीप पहुँच कर निवेदन किया-

"लगता है, बाहर कोई अपूर्व दृश्य आपको बाँधे हुए है?" महाराणा का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने महारानी जी को समीप बैठने का संकेत करते हुए कहा-

"नहीं... ऐसी कोई बात नहीं है।"

"फिर भी आप खोए हुए थे। कोई चिन्ता जैसी बात तो नहीं है... ?"

"राजाओं और चिन्ताओं का तो चोली-दामन का साथ होता है।"

"यदि गोपनीय न हो तो मैं भी जानना चाहूँगी कि इस समय कौनसी चिन्ता सताए जा रही है?"

"रानी जी, चिन्ता जैसी तो कोई बात नहीं है, किन्तु कुछ अतीत की परतें हैं, जो मुझे यदाकदा बाँध देती हैं। देखो न, यह महल भी कितना रंग बदल चुका है? लगभग सौ वर्ष पूर्व इसका निर्माण मेरे पूर्वज महाराणा कुंभा जी ने कराया था। उनके पुत्र रायमल जी ने यहाँ निवास किया। इसके बाद यहाँ की शोभा इतिहास पुरुष सांगा जी ने बढ़ाई। मेरे भाई विक्रमादित्य भी इन्हीं महलों में महाराणा बनकर रहे और दासी पुत्र बनवीर के हाथों मारे गए।" महाराणा अतीत की कड़वाहट को भीतर कुछ क्षणों के लिए विराम देने लगे।

"जब .. बनवीर ने पन्नाधाय के पुत्र को मारकर यह समझ लिया होगा कि उसने आपकी इहलीला ही समाप्त कर दी, तो संभव है विधाता भी हँसा होगा।" रानी जी ने कहा।

"यह तो मुझे पता नहीं कि पन्नाधाय पर उस समय क्या बीती होगी?, किन्तु मैंने तो अपनी माँ के रूप में उसे ही देखा था। मेरी माँ ने गुजरात के शासक द्वारा चित्तौड़गढ़ पर अधिकार करने के बाद जौहर कर लिया था। इसके बाद तो पन्ना ही मेरे लिए सब कुछ थी।"

"आपको जब चित्तौड़गढ़ से भागना पड़ा, तो उस समय भी तो कठिनाइयाँ कम नहीं हुई होंगी?"

"वह हमारे लिए बहुत कठिन समय था। पन्ना मुझे छिपाते हुए देवलिया (प्रतापगढ़) गई। वह डूंगरपुर के तत्कालीन रावल पृथ्वीसिंह से भी मिली। कई सामन्तों से भी मिली, किन्तु किसी ने भी मुझे शरण नहीं दी। मेरे पास क्या था? मुझे लोग क्षत्रिय तक मानने को तैयार नहीं थे। यह तो भाग्य ही कहा जाएगा कि कोठारिया के सरदारों ने मुझे पहचान कर साथ देने का वचन दिया और सबसे बड़ा ऋण तो मेरे पर पाली के सोनगरा चौहान श्री अखैराज जी का है, जिन्होंने मुझे अपनी बेटी देकर सम्मानित किया। न केवल इतना ही, अपितु अपनी सेना के साथ मावली गाँव में बनवीर के साथ हुए मेरे निर्णायक युद्ध में उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।" महाराणा उदयसिंह अतीत के इतिवृत्त में पुनः खो गए।

"आप बुरा न मानें तो एक बात निवेदन करूँ ?" महारानी धीरजकुंवर के लिए अखैराज जी चौहान की पुत्री जैवन्तीबाई अर्थात् उसकी सौत के कुल की प्रशंसा सुनना असह्य हो गया। महाराणा की भी वैचारिक सरिता मानों यकायक रुक-सी गई। उन्होंने मात्र इतना-सा कहा-"आप अवश्य कहें, महारानी जी।"

"महारानी जैवन्तीबाई जी मेवाड़ की पटरानी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं, किन्तु इस पद के अनुरूप उनका व्यवहार बड़ा घटिया है। क्षमा करें महाराज, यदि उनके व्यवहार की कोई बात आपसे निवेदन करूँ तो।"

"इसमें क्षमा की क्या बात है ?" अंतःपुर में क्या होता है, इसकी जानकारी यदि मुझे नहीं होगी तो और किसे होनी चाहिए ?"

"स्वामी, एक बार हमारे कुलगुरु ने एक सलाह दी थी कि जहाँ तक हो सके व्यक्ति को किसी के अहसान से बचकर रहना चाहिए, क्योंकि उपकार करने वाला व्यक्ति यदि सज्जन है तो वह कभी भी अपने द्वारा किए गए उपकार को गिनाएगा नहीं, किन्तु यदि वह धूर्त है तो किए गए उपकार को जगजाहिर कर उपकृत व्यक्ति के यश को फीका करने का प्रयास करेगा।"

"किन्तु अखैराज जी ने तो कभी भी मेरे पर किए गए उपकार को किसी के सामने प्रकट नहीं किया।"

"सत्य है, अन्नदाता। वे सज्जन व्यक्ति हैं, किन्तु उनकी पुत्री बात-बात में यह कहना नहीं भूलती हैं कि आपको क्षत्रिय घोषित करने में उनके पिताश्री का कितना योग रहा। यहाँ तक कि सेविकाओं एवं सामान्य-सी औरतों के बीच में भी यह चर्चा की जाती है। ऐसी चर्चाओं से आपके सम्मान को क्षति पहुँचती है। कई बार मुझे इस बात के उलाहने भी सुनना पड़ता है। कुल की बड़ी-बूढ़ी सम्मानित महिलाएँ भी जैवन्तीबाई जी की इस ऐंकड़ी से दुःखी होती हैं, किन्तु आपको कभी भी अपनी व्यथा कहती नहीं हैं।" धीरजकुंवर अपना विषबुझा तीर चला चुकी थी। महाराणा उदयसिंह कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् कहने लगे—

"व्यक्ति अपने अहं का प्रदर्शन तो करेगा ही। उसके पिता ने मेरा उपकार तो किया ही है। इस सत्य को तो सारा संसार जानता है कि वह पहला व्यक्ति था जिसने अपनी बेटी देकर मेरे क्षत्रिय होने का प्रमाण सभी के समक्ष प्रस्तुत किया।" महाराणा के इस कथन से धीरजकुंवर के द्वारा फैलाया गया विष बेअसर सा होने लगा। रूपसी का मायावृत्त कम होता दिखाई दिया। चतुर धीरजकुंवर ने विषय को बदलने की दृष्टि से पूछ लिया

"स्वामी ! आप सरल हैं। वह चौहानों की पुत्री है और उसका बेटा मेरी जानकारी के अनुसार कुछ और ही दिशा में क्रियाशील है।"

"क्या मतलब ?" इस बार महाराणा चौंके। महारानी ने भी देखा कि लोहा गरम है, अतः उसने कहा-

"प्रतापसिंह जी कुलीन व्यवहार छोड़कर छोटे-मोटे भोमियों एवं वनवासी भीलों और मीणों को एकत्रित कर रहे हैं। उनके साथ ही बैठना-उठना और खाना-पीना शुरू कर दिया है। सुना तो यह भी है कि जिन लोगों की दृष्टि बचाकर हम भोजन करते हैं, उन अन्त्यजों को भी अपनी ही पंक्ति में बिठाकर भोजन कराते हैं। उन्हें न जाति का गौरव स्मरण रहता है, न अपने पद का दायित्व बोध।"

"आपका कथन सत्य को लिए हुए है। हमें भी इसकी जानकारी है।"

"स्वामी! इन भीलों का क्या भरोसा? इन लोगों ने सदा विद्रोह का साथ दिया है। जब महाराणा मोकलजी के समय चूण्डा जी को देश निकाला दिया था, उस समय चित्तौड़गढ़ के दो सौ भील परिवार चित्तौड़गढ़ छोड़कर चूण्डा जी के साथ चले गए थे। इन भीलों को उकसा कर एवं इनका सहयोग लेकर चाचा और मेरे जैसे क्षत्रियों ने महाराणा मोकल जी की हत्या की थी। मुझे तो प्रतापसिंह जी का चाल-चलन ठीक नहीं लगता है।"

महारानी के चुप रहने पर भी उदयसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। रानी को लगा जैसे उसका अंतिम हथियार काम कर गया था। उसने पुनः प्रहार किया-

"एक ओर प्रतापसिंह जी हैं जो इन जंगलियों के साथ रहते हैं और दूसरी ओर इस खानदान का एक और राजकुमार है जिसमें जातीय अभिमान है, क्षत्रियोचित गुण है और प्रबन्ध करने की क्षमताएँ हैं फिर भी उसकी नियति तो एक छोटे-मोटे जागीरदार की होनी है। चूँकि पहले जन्म ले लिया, इस कारण, अयोग्य होने पर भी प्रतापसिंह जी ही महाराज कुंवर कहे जाएँगे।"

उदयसिंह उस रूपसी की आसक्ति में सब कुछ सुने जा रहा था। उसने पुनः पूछ ही लिया-

"आपने कुछ कहा नहीं, स्वामी?"

"कहने को कुछ शेष है भी नहीं, रानीजी। आपको राई रत्ती की जानकारी है।"

उधर संलग्न कक्ष में शीतल पेय तैयार हो चुका था। सेविका पेय भरे स्वर्णपात्रों को रखकर चली गई।

महाराणा पेय पीकर अंतःपुर से बाहर आकर सीधे मंत्रणाकक्ष की ओर चल दिए। इसी बीच उन्होंने प्रमुख गूढ़ पुरुष को उपस्थित होने का संदेश भी भिजवा दिया। पूर्व महाराणा मोकल की हत्या के प्रसंग ने उन्हें और अधिक सतर्क कर दिया था। कुछ ही पलों में मेवाड़ का गूढ़ पुरुष पंडित रामचन्द्र भी उपस्थित हो गया। महाराणा के तेवर को देखकर पंडित रामचन्द्र को आश्चर्य हुआ। लगभग चालीस वर्ष की आयु एवं मध्यम व बलिष्ठ कद-काठी का पंडित रामचन्द्र एक आकर्षक व्यक्तित्व का धनी था। उसका स्वर गंभीर एवं आँखें सतर्क थी। आपसी वंदना के बाद महाराणा ने कहा

"आइए, पंडित जी! आज आपको असमय कष्ट दिया।"

"इसमें कष्ट कैसा? आप आज्ञा करें।"

"आप मुझे, महाराजकुंवर प्रतापसिंह के बारे में कुछ बताएँ।"

"यह 'कुछ' शब्द बहुआयामी है। वैसे कोई विशेष समाचार नहीं हैं। उन्हें प्रकृति से प्रेम हो गया है। वनों में भ्रमण करना, वनवासियों से ठिठोली करना, शेरों का शिकार करना और वनों में पैदा होने वाली वस्तुओं से अपनी क्षुधा शान्त करने में उनका अधिकांश समय निकल जाता है।"

"मुझे यह बतावें कि उनका वनवासियों से मिलना-मिलाना कहीं राज्यहित के विरुद्ध तो नहीं है?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। प्रताप देशभक्त हैं। वे ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते हैं जसे मेवाड़ के विरुद्ध कहा जा सके।" पंडित रामचन्द्र समझ नहीं पा रहा था कि आज इस पता को ऐसा कौनसा तर्क मिल गया है कि वह भावी महाराणा के चरित्र पर संदेह कर ठा है। उसकी सतर्क आँखें महाराणा के चेहरे पर स्थिर हो गईं ताकि बदलती भाव भंगिमा हो पढ़ा जा सके। महाराणा कुछ समय तक मौन रहे। फिर सहसा पूछ बैठे-

"उनका वनवासियों को प्रभावित करने का यह अर्थ तो नहीं कि वे जब भी अपना सिर उठाना चाहें, भील लोग उनका साथ दें।"

"यह आपकी आशंका हो सकती है, अन्नदाता ! सत्यता इसमें नहीं है। हमारी सूचनाओं का सारांश इतना अवश्य है कि भील लोग महाराज कुमार को बेहद चाहते हैं। समय आने पर वे अपने प्राण देकर भी उनका साथ देंगे।"

"ऐसा क्या कर दिया है इस प्रताप ने कि वनवासी लोग उसे महाराणा से भी अधिक चाहते हैं ?"

"किसी एक को चाहने का अर्थ दूसरे को नकारना नहीं है। यह तो मन मानने की बात है।" पंडित अब शब्दों की गहराई में बैठे भावों को पहचानने की दिशा में तत्पर हो रहा था। उदयसिंह मौन हो गए। पंडित रामचन्द्र से जब नहीं रहा गया तो वह पूछने लगा-

"अन्नदाता... ! आज यह अचानक आपको क्या हो गया ? यकायक प्रताप सिंह जी को लेकर ऐसी कौनसी बात सामने आ गई ?"

"प्रश्न यह है कि हमारे साथ सेना है, प्रशासनिक तंत्र है, आर्थिक नियंत्रण है, अर्थात् सब कुछ हमारे पास है। दूसरी ओर प्रताप अकेला है, उसे राज्य का आश्रय मिला हुआ है। उसका प्रभुत्व भी नहीं है तथापि आम आदमियों में उसकी पहचान बन रही है, इसका कारण मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।"

"एक बड़ा कारण तो यह है कि वे महाराजकुँवर हैं। वे भावी महाराणा पद के निर्विरोध प्रत्याशी हैं। दूसरा कारण है कि उनका लोगों के प्रति दयालुता का व्यवहार है। वे आम आदमी के दुःख दर्द में राजकीय मर्यादाओं को छोड़कर आम आदमी की भाँति हिस्सेदार बनने का प्रयास कर रहे हैं। यही कारण है लाड़-प्यार से आम आदमी उन्हें 'कूका" कह कर पुकारता है।"

"यही तो मुसीबत है। प्रतापसिंह से "कूका" बनने का अर्थ यह तो नहीं कि इन वनवासियों के सहयोग से ही वह ऐसा कृत्य कर गुजरे, जिससे इस देश के महाराणा के प्राण संकट में पड़ जाए।"

"यह असंभव है। आपको इस आशंका के कोई आधार हैं ?"

"मात्र अनुमान है। महाराणा मोकलजी की हत्या इसी प्रकार की गई थी। महाराणा कुंभा भी अपने ज्येष्ठ पुत्र के हाथों मारे गए। इन राजकीय षड्यंत्रों के कारण ही हमारे पूर्वज राघवदेव की हत्या की गई। क्या हत्या का यह क्रम आगे नहीं बढ़ सकता है ?"

"आपके सोच की दिशा के सत्यासत्य की जाँच की जाएगी, किन्तु आज इस दुपहरी में इस विषय का उठना, निश्चित ही किसी ठोस आधार पीठिका पर होना चाहिए।"

"मुझे गुप्तचरों से पता लगा है कि कुछ तीर्थयात्री पाली से यहाँ आए हुए हैं।" उदयसिंह ने संशय का कारण ढूँढ निकाला। जब भी व्यक्ति के मन में संशय का कीड़ा जाता है, उसका मस्तिष्क संशय के पक्ष में तर्क एवं उदाहरण एकत्रित करने लग जाता है।

"मुझे ज्ञात है, अन्नदाता! बाहर से आने वाले यात्रियों का परिचय पंडे, धर्मशालाओं के प्रबन्धकों के साथ हो जाता है। हमारे गुप्तचर सर्वत्र फैले हुए हैं। मुझे पता कि एक नवयुवक चारण और उसके साथ आठ अंगरक्षक अश्वारोही चित्तौड़गढ़ के आए हुए हैं। उन्होंने आपसे मिलने हेतु हमारे कार्यालय में निवेदन भी किया हुआ है पंडित रामचन्द्र महाराणाजी के मन में घुसे संशय रूपी शूल की तह में जाना चाहते थे उदयसिंह अपने अंत:पुर की कानाफूसी को दबाए हुए था।

"आपके कार्यालय ने उसे क्या उत्तर दिया?"

"अन्नदाता! वे आपसे कल मिल सकेंगे। हमने उनके आवेदन की बात निजी कक्ष के सुरक्षा अधिकारी को दे दी है।"

"आप सतर्क रहें, अब मैं स्वयं भी उस युवक को टटोलने का प्रयास करूँगा।

महाराणा उठ खड़े हुए। पंडित रामचन्द्र समझ गया कि अब उसे प्रस्थान था। आपसी अभिवादन के बाद रामचन्द्र चला गया किन्तु वह नहीं समझ पा रहा था बिना किसी कारण के अपने पुत्र के प्रति उनके मन में दुर्भाव का कारण क्या था .... ?

अगले दिन चारण कवि महाराणा उदयसिंह के प्रासाद की ओर बढ़ा। प्रत्येक पर अपने आश्रयदाता के नाम को दोहराता हुआ मुख्य कक्ष के समीप तक चला गया। उसके अंगरक्षकों को रोक दिया गया और उसे अकेले महाराणा के मंत्रणा कक्ष में ले गया। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद महाराणा जा पधारे। आपसी अभिवादन औपचारिकता के पश्चात् महाराणा जी ने युवक से इतनी दूर तक चलकर आने का जानना चाहा। निर्भीक युवक ने कहा-"अन्नदाता, कई दिनों से महाराज अक्षयराज जी पास समाचार पहुँच रहे थे कि आप हमारे बाईजी जैवन्तीबाई से नाराज हो गए हैं। मुझे आश्रयदाता ने इसी निमित्त यहाँ भेजा है कि मैं नाराजगी का कारण ज्ञात कर सकूँ। महाराज ने भी कहला भेजा है कि बाईजी से यदि कोई अपराध बन पड़ा हो तो वे समक्ष क्षमायाचना करना चाहेंगे।"

"ऐसी कोई बात नहीं है, युवक। हमारा स्नेह सभी रानियों पर एक जैसा है और यदि दूसरी ओर देखें तो आपसी कहा-सुनी कहाँ नहीं होती है। जब दो बर्तन आपस में खड़क उठते हैं तो हम तो मानव हैं। आप अपने महाराज को समझाएँ कि किसी भी बात को अन्यथा नहीं लें।" महाराणा उदयसिंह अन्यमनस्क भाव से कह था। उसके चेहरे से लग रहा था, मानो वह कहीं खोया हुआ सा हो।

"महाराज, हमें बताया गया है कि हमारे बाईजी जैवन्तीबाई को पटरानी होने भी आपने उन्हें दुर्ग में रहने से मना किया हुआ है। सुना तो यह भी है कि मेवाड़ महाराजकुंवर श्री प्रतापसिंह एवं उनकी माताजी को चित्तौड़गढ़ दुर्ग से बाहर किसी गाँव रहना पड़ रहा है।" युवक की ओजपूर्ण वाणी से उदयसिंह भी एक बार तो सकपका गे तथापि उसने हिम्मत कर कहना जारी रखा-

"देखो युवक, यह सिक्के का एक पहलू है, जिसे आप देख रहे हैं। दूसरा पक्ष यह भी है कि युवराज प्रताप को शिकार करने का शौक है। इस कारण वे लगातार वनों के समीप रहना चाहते हैं। उनकी माँ उन्हें अकेला जाने से मना करती है। यही कारण है कि माता और पुत्र चित्तौड़गढ़ दुर्ग के नीचे निवास करते हैं। वहाँ उनके लिए पाटनपोल के पास एक छोटी सी हवेली और एक कुंड बनवाया हुआ है। दोनों प्राणी वहाँ निवास कर रहे हैं।"

"महाराज, आपके सामने मैं कोई तर्क नहीं करना चाहता हूँ, तथापि यह प्रश्न तो न मैं अनुत्तरित ही रह जाएगा कि पन्द्रह वर्ष की उम्र के महाराजकुमार को मृगया में गाया जाना चाहिए या शिक्षा-दीक्षा की ओर ?"

"प्रताप बहुत ही हठी है। हमने उसके लिए शिक्षकों की व्यवस्था की हुई है। लोग उसे वहाँ जाकर भाषा, गणित एवं क्षत्रियोचित संस्कार देने का प्रयास कर रहे हैं।"

महाराणा कह तो गए, किन्तु उनके मुखमण्डल पर हल्का सा पसीना भी छलक गया।

"मेरे आश्रयदाता पूज्य अक्षयराज जी ने आपकी सेवा में एक निवेदन और भी किया है।"

"क्या कहा है, हमारे श्वसुर महाराज ने ?"

"यदि आप अनुमति दें तो मैं हमारे बाईजी एवं मेवाड़ के राजकुंवर को कुछ समय के लिए पाली लेता जाऊँ। इससे थोड़ा पानी भी बदल जाएगा और हमारे महाराज को भी अपनी पुत्री के साथ रहने का अवसर मिल जाएगा।" चारण युवक अपने स्वर में अत्यन्त विनम्रता का भाव लाते हुए कहने लगा।

"आप जो कुछ कह रहे हैं, वह सत्य ही होगा फिर भी मैं यह अवश्य जानना चाहूँगा कि क्या हमारी महारानी जी भी अपने पिताजी के पास जाना चाहती हैं ?"

चतुर युवक भी महाराणा के मन में प्रच्छन्न संदेह को भांप गया, तथापि अत्यन्त सरल भाव से कहने लगा-

"मैं अभी किसी से नहीं मिला, अन्नदाता ! हमारे बाईजी के क्या विचार हैं-इसकी जानकारी मुझे नहीं है। मैंने जो कुछ भी कहा, वह मात्र मेरे आश्रयदाता का एक प्रस्ताव था, जिसे मैंने आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। उन्हें पाली भिजवाने अथवा नहीं भिजवाने का निर्णय आप द्वारा लिया जाना है।"

"क्या महारानी जी भी पाली जाना चाहेंगी ?" महाराज ने जानना चाहा।

"यह तो उनसे पूछकर ही पता किया जा सकता है। आप आज्ञा दें तो मैं दुर्ग के नीचे निवास कर रहे बाईजी से पूछ कर आऊँ।" सरलता से चारण कवि कह गया।

"आप अवश्य ही जाएँ, किन्तु आप इतनी दूर से आए हैं, विश्राम करके जाते तो ठीक रहता।"

"जैसी आपकी आज्ञा, अन्नदाता।"

"आप अतिथिशाला में विश्राम करें। आपके ठहरने तथा महारानी जी से मिलने जाने की व्यवस्था मैं किए देता हूँ।" संक्षिप्त भेंट समाप्त हुई।

(2)

अगले दिन संध्या तक पाली से आए अथिथि महाराजकुंवर के आवास पर पहुँच गए। एक दुमंजिला भवन, चारों ओर कवेलू छाई हुई झोंपड़ियाँ, दूसरी ओर बहुत बड़े-बड़े थुअर के कंटीले वृक्षों की बाड़ से आवृत्त घासघर, वहाँ समीप में अश्वशाला और रेंहट लगा चौड़े मुँह का कुँआ... कुल मिलाकर महाराजकुंवर का यह आवास अति सामान्य सामंत के आवास जैसा लग रहा था।

एक छोटी सी छतरी के नीचे स्थापित शिव मंदिर पर संध्या आरती की तैयारी की जा रही थी। छतरी के उत्तरी द्वार को कनात लगाकर घेर दिया गया था। संभवतया राजवंश की महिलाओं के लिए पर्दे के विस्तार का ही यह प्रयोजन था। छतरी का पूर्वी द्वार खुला था। चारणकवि और उसके सहयोगियों ने राजकीय सेवकों को अपने अश्व सौंप कर सीधे मंदिर की ओर प्रस्थान किया। कवि के लिए प्रभुदर्शन का क्रम प्रथम था। आरती आरंभ हो चुकी थी। पुजारी पूर्ण तन्मयता से भगवान आशुतोष की आरती उतारने में व्यस्त था। कनात के आवरण में घिरी राजपरिवार की स्त्रियाँ एवं दासियाँ हाथ जोड़कर उस दृश्य को देख रही थीं।

उधर पूर्वी द्वार के समक्ष मेवाड़ साम्राज्य का घोषित उत्तराधिकारी एवं प्रजा का दुलारा "कूका" हाथ बाँधे एक सेवक की भाँति खड़ा था। मध्यम किन्तु मजबूत कदकाठी का प्रताप अपनी बड़ी-बड़ी आँखों और चेहरे पर झलकती सौम्यता के कारण अलग से ही पहचाना जा रहा था। ढोल, नगाड़े, घंटियाँ, थाली और मांदल के समवेत स्वरों के साथ आरती के आरोह-अवरोह चल रहे थे। प्रताप स्वयं भक्ति के उन क्षणों में खोया हुआ था। उनके पीछे कौन अनुचर, कौन संगी-साथी और कौन आगन्तुक खड़ा था, उन्हें पता नहीं था। धीरे-धीरे आरती समाप्त हुई। पुजारी ने शंख से पानी अपने हाथ में लेकर पूर्व एवं उत्तर द्वार की ओर खड़े जन समुदाय पर छिटका। सभी ने भगवान एकलिंग नाथ की जय के साथ प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम करना आरम्भ कर दिया।

प्रताप ने देव प्रतिमा को प्रणाम कर पुजारी के चरण छुए। इसके बाद वह उस ओर चला गया जहाँ महिलाओं के लिए स्थान नियत था। दासियों ने प्रताप के जाने के लिए रास्ता दिया। वह सीधा अपनी माँ के समीप पहुँचा और उसके चरणों में अपना सिर रख दिया। माँ ने प्रताप को उठाकर अपने सीने से लगा दिया और सिर पर हाथ फिराकर

आशीर्वाद दिया। उसका गला भर आया था। केवल यही वाक्य उसके मुँह से फूटा- "कूका" ईश्वर तेरा सहायक है। तेरे दिन भी आएँगे।"

"मांजी राज! आपका हाथ जब मेरे सिर पर है तो सभी दिन मेरे ही हैं।"

बस इन्हीं दो वाक्यों के आदान-प्रदान के पश्चात् कूका अपनी माँ से अलग होकर पुनः पुरुष दर्शनार्थियों के पूर्वी द्वार के सामने आ गया। वहीं दुर्ग से आए अधिकारी ने परिचय कराते हुए कहा-

"महाराज कुँवर, आप चारण कवि हैं। आपके ननिहाल से आपके नाना श्री अखैराज जी ने इन्हें आपसे मिलने भेजा है।"

"प्रणाम, कविराज।" प्रताप ने हाथ जोड़कर कहा।

"आपकी जय हो महाराज कुँवर। आज्ञा हो तो शिवमहिम्न का पाठ देवाधिदेव को सुनाऊँ।"

"अवश्य, हम सभी चाहेंगे कि आपके सस्वर पाठ का आनन्द उठावें। पुजारी जी ... ?"

"आज्ञा दें महाराज कुँवर ...।" पुजारी सामने ही खड़े थे।

"आप माताजी को बता दें कि वे भी तनिक रुक जाएँ। ननिहाल से चारण कवि पधारे हैं। वे भी इनका पाठ सुन लें।"

उसने अपनी बुलंद आवाज में "महिम्नः पारंते...." से स्तुति आरम्भ कर दी। महाराज कुँवर शांतचित्त होकर कभी देव प्रतिमा तो कभी सामने बैठे कवि की ओर देखते हुए उसकी वाणी से फूट रहे छंदों के आरोह एवं अवरोह की सीमाओं और उसके अर्थ को समझने की चेष्टा कर रहे थे।

समवेत स्वरों में गाया गया स्तुति पाठ समाप्त हुआ। प्रताप ने अपने कंठ से स्वर्णसूत्र की कंठी उतार कर कवि के गले में पहनाई और दुबारा चरण स्पर्श कर अभिवादन किया। कवि ने आशीर्वादात्मक श्लोक का उच्चारण कर रघुकुल से चली आई परम्परा का निर्वहन करने वाले सिसोदिया राजकुल के पूर्वजों के शौर्य की छन्दोबद्ध गाथा को गाकर उस परम्परा के वंशधर प्रताप के सिर पर हाथ रखा। चारों ओर खड़े अनुचरों ने भी कवि के चरणों की वंदना की।

आपसी स्नेह की सरिता के साक्षी गुप्तचरों के मन में भी प्रताप की शालीनता को लेकर शुभता के भाव जागने लगे। गुप्तचरों का अधिकारी समझ ही नहीं पा रहा था कि ऐसे गुणी, दानी एवं शूरवीर महाराज कुंवर के प्रति महाराणा उदयसिंह के भाव नकारात्मक क्यों हैं ? रात्रि को भोजनोपरान्त चारण कवि को विश्राम हेतु दी गई कुटिया में महाराज
उपस्थित हुए। कुछ ही क्षणों बाद मेवाड़ कुल की पटरानी जैवन्ती बाई भी
के घेरे में चलती हुई कुटिया में प्रवेश कर गई। दासियों ने कुटिया को
लिया और पुरुषों को संकेत से दूर चले जाने का आदेश दे दिया। क्षत्रियों

कारण आज गुप्तचर हाथ मलते रह गए। उन्हें यह तो पता था कि चारण कवि, प्रताप एवं राजरानी के बीच आज की रात कुछ तय होना था, किन्तु वार्तासूत्र की भनक तक लगना कठिन था। चूँकि अधिकांश दासियाँ भी पूर्व प्रथा के अनुसार राजरानी के साथ पाली से आई थी। अतः किसी भी समाचार के बाहर जाने की संभावना भी नहीं थी। राजकुल की महिलाओं के समक्ष ब्राह्मण, चारण एवं उम्र में छोटे रक्त सम्बन्धियों को छोड़कर अन्य किसी पुरुष का रहना असंभव था। आज यही प्रथा इस गुप्त बैठक हेतु सार्थक रही।

राजरानी जी के आसन ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने सर्वप्रथम चर्चा आरम्भ की-

"पूज्य पिताजी एवं माताजी कैसे हैं ?"

"सभी प्रसन्न हैं। आपकी कुशलता को लेकर यदाकदा चिंतित भी हो जाया करते हैं।" चारण कवि ने उत्तर दिया।

"यह तो प्रत्येक माँ बाप का स्वभाव ही होता है कि अपनी संतान की असुविधा की बात सुनकर उन्हें मार्मिक पीड़ा होती है। आप तो यहाँ देख ही रहे हैं कि हमें किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है। अपने पुत्र के साथ इस प्राकृतिक सौन्दर्य में मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ।"

"किन्तु, मेवाड़ राज्य की पटरानी को वन में रहकर एक निर्वासिता का जीवन जीना पड़े, मेवाड़ के भावी महाराणा को सामंतपुत्रों की अपेक्षा वनवासियों के साथ अपना समय गुजारना पड़े, क्या इस स्थिति को देखते हुए भी पूज्य अखैराज जी महाराज को चिन्ता नहीं होनी चाहिए ?"

"कविराज ! सुख-दुःख मानने के होते हैं। हम प्रसन्न हैं, यह आप देख ही रहे हैं। रही बात राजप्रासादों में रहने की या उच्चकुल के युवकों के साथ रहने की अथवा इनसे जुड़े तथाकथित सम्मान की बात, तो इसकी चिन्ता हमें बिल्कुल नहीं है। मैं यहाँ रहकर कम से कम शहरी विष से तो दूर हूँ। वनों में रहने वाले भील युवकों में जितनी सच्चाई है, संभव है, उन युवकों में नहीं है जो दुर्ग के प्रासादों से अपनी प्रजा को देखते हैं।" प्रताप का पहली बार स्वर फूटा।

"किन्तु, महाराज कुँवर ! आप जब भी राजनीति के शीर्ष पर होंगे आपका वास्ता तो उन लोगों से ही पड़ेगा, जो ऊँचे महलों में रहते आए हैं ?"

"कविराज ! यही गलतफहमी राजनेताओं एवं सत्ताशीर्ष पर बैठे लोगों को होती है। वे समझते हैं कि सम्पूर्ण देश एवं उसकी रीति-नीति के नियन्ता वे लोग हैं, जो ऊपर से चमकदार वस्त्र पहनते हैं, ऊँची पगड़ियाँ धारण करते हैं, या मखमली गद्दों पर शयन करते हैं।"

"यह तो नैसर्गिक सत्य है कि सत्ता का केन्द्र अहं से भरा होता है अतः वहाँ पहुँचने वाला सामान्य व्यक्ति भी असामान्य हो जाता है। बाहरी आवरणों की चमक, ... की दमक, एवं प्रभुत्व की भभक ऐसे व्यक्ति की पहचान के स्थाई लक्षण हो

ते हैं। लोगों की जय-जयकार, कुर्सी की मादकता और बुरा-भला कर गुजरने की क्षमता, ाओं के अहं में वृद्धि करती है। इन सारी स्थितियों से तो आपको भी गुजरना होगा, त्र जी !"

"आपका कथन सामान्यतया सत्य है। और यही कारण है कि सत्ताधारियों की नक और वेश्याओं की पायलों की धमक में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। सत्ताधीश ायं को प्रजा से विशिष्ट समझ लेता है और वेश्या प्रत्येक पुरुष को बिकाऊ मान बैठती -यही दोनों में साम्यता के आधार हैं किन्तु इन दोनों के अपवाद भी धरती पर होते हैं। ी धरती पर महाराज रघु, रामचन्द्रजी, बापारावल, महाराणा कुंभा एवं महाराणा सांगा जैसे ागों ने भी जन्म लिया है और शकुनी एवं जयचंद जैसे भी यहाँ आकर चले गए हैं। मैत्रेयी, ार्गियाँ और अनुसूया भी यहाँ हुई हैं।" प्रताप का चेहरा मिट्टी के दिए की रोशनी में भी -दप कर रहा था।

"बेटा ! सिद्धान्तों की चर्चा की अपेक्षा आप लोग इस पर विचार करो कि दुर्ग से ाए संदेश का क्या उत्तर भिजवाया जाए ?" महारानी ने मूल विषय पर चर्चा को मोड़ने की रज से कहा।

"कैसा संदेश महारानी जी ?" चारण कवि की विचार सरणी को मानों विराम ग गया था।

"इसे शुभ अवसर ही समझा जाएगा कि आज प्रताप के जीवन के प्रथम मोड़ पर ाप जैसा हितैषी व्यक्ति यहाँ उपस्थित है।"

राजरानी को अपने पीहर से आए चारण कवि से मिल कर वास्तव में प्रसन्नता हुई ी।

"बाईजी ! मैं आपका आशय नहीं समझ पाया। युवराज के जीवन के किस मोड़ ी ओर आप संकेत कर रही हैं ?"

"कविराज ! महाराणा जी ने संदेश भिजवाया है कि वे युवराज की क्षमताओं को रखना चाहते हैं।"

"किस क्षेत्र की क्षमताओं को ?"

"क्षत्रियों के लिए तो केवल एक ही क्षेत्र होता है। उनका जन्म ही मानो युद्ध ेत्र के लिए होता है। हम क्षत्राणियाँ तो बच्चों को जन्म ही इसी निमित्त देती हैं।"

"यह तो सौभाग्य है माताजी। आपने मुझे महाभारत की कथाएँ सुनाई थीं। अर्जुन ौर श्री कृष्ण के संवादों का अर्थ भी समझाया था फिर यह जीवन का पहला मोड़ कैसा ? ुझे लगता है मेरे जीवन का आरम्भ ही अब होने जा रहा है।"

"आप दोनों किस युद्ध की चर्चा कर रहे हैं ?"

"कविवर ! आपके प्रश्न का उत्तर मैं देना चाहूँगा। आपको पता है कि हमारे ूज्य दादाजी महाराणा सांगा अपने जीवन के अंतिम युद्ध में हार गए थे। इसके बाद हमारे घर

की फूट के कारण मेरी दादीजी कर्मावती जी को जौहर करना पड़ा । इसी बीच दासं बनवीर ने मेवाड़ की सत्ता हथिया ली । इसके बाद पूज्य पिताश्री सत्ता में आ गए । महा सांगा की पराजय से लेकर आज तक की तीस वर्षों की अवधि में हमारे राज्य का अ छोटा हो गया । डूंगरपुर और बांसवाड़ा जैसे हमारे कुटुम्बी शासक बाबर के साथ हुए यु सहयोगी थे, आज वे स्वतंत्र राज्य की भाँति व्यवहार कर रहे हैं । और तो और सलू सराड़ा और चावण्ड जैसे परगनों में भोमियों ने कर देना बंद कर दिया है । पूज्य पिताजं आग्रह है कि मेवाड़ की सीमा को उस स्तर तक ले जाया जाए, जहाँ हमारे दादाजी वर्चस्व कभी रहा था । खेराड़ और डूँगरपुर को धरती दिखाने का काम पिताश्री मुझे सं चाहते हैं ।'' प्रताप ने संक्षिप्त भूमिका के साथ अपनी बात कही ।

प्रताप की बात सुनकर कविराज हँस पड़ा । प्रताप और उसकी माँ हतप्रभ हो हँसी का क्या अर्थ हो सकता था, यह समझ से परे था । दोनों कवि की ओर ताकने लगे

''मेरा अनुमान ठीक निकला, महाराजकुँवर ।''

''क्या आपको पूर्वाभास था कि मुझे दुर्ग से इस प्रकार का प्रस्ताव मिलेगा साश्चर्य प्रताप ने पूछा ।

''नहीं । मुझे बिल्कुल पता नहीं था । जो कुछ मैंने सुना, उसका सारांश यह कि महाराणा जी अपने युवराज की आम प्रजा में बढ़ रही प्रसिद्धि से चिंतित हैं । अत सोच रहा था कि वे कोई न कोई ऐसा उपाय अवश्य करेंगे जिससे युवराज का संपर्क आदमी से कट जाए । यही कारण है कि आपसे युद्ध की खबर सुनकर मुझे हँसी आ थी ।''

''किन्तु बेटा ! जबसे यह संदेश आया है, मेरा दिल बैठा जा रहा है । क्या प्रस्ताव को किसी तरह का बहाना बनाकर टाला नहीं जा सकता है ?'' माँ का मन र गया ।

''ऐसा क्यों माताजी ? आपने तो कभी भय को स्वीकारा तक नहीं । युद्ध की सुनकर तो क्षत्राणियों को प्रसन्नता होती है । आपके मन में इस समय कौनसी आशंका हुई है, जिसके कारण आप इस प्रस्ताव को टालना चाहती हैं ?'' प्रताप को अपनी माँ कथन पर आश्चर्य हुआ ।

''शंका युद्ध की नहीं है । मुझे अपने पुत्र से भी अधिक स्वयं पर अधिक भरोसा मेरा पुत्र कायर नहीं है । भय तो उसे छूकर भी नहीं निकला है । मेरा दूध पीकर वह को कैसे नकार सकता है, किन्तु मेरी आशंका शत्रुओं से नहीं है । मेरी शंका इस दुर्ग निवासियों पर है । दुर्ग के षड्यंत्रों के कारण कहीं अपने ही लोग मेरे पुत्र पर घात नहीं दें, यही मेरी चिंता का मूल कारण है ?'' क्षत्राणी का मन प्रकट हो उठा ।

''आपकी चिंता का आधार ?'' कविराज स्वयं आश्चर्य में पड़ गया । वह अ तक यही समझ पाया था कि महाराणा उदयसिंह के मन में प्रताप को लेकर ईर्ष्या का भ जग गया था, किन्तु अब उसे लगने लगा कि कारण और किसी गहराई में था ।

"आधार है कविवर ! मेरा सौन्दर्य ढल गया है । हमारे स्वामी किसी रूपसी पर
ुग्ध हैं । वह रूपसी नहीं चाहेगी कि प्रताप इस देश का महाराजकुंवर कहा जाए । यदि
ताप इस धरती पर नहीं होगा तो उसका बेटा महाराज कुंवर बनेगा । लगता है, युद्ध का
हाना बनाकर मेरे पुत्र को मुझसे दूर किया जा रहा है । युद्ध में किसने किसको मारा इसकी
ृणित कौन रखता है ? मेरा बेटा शत्रुओं से तो लड़ लेगा किन्तु अपने लोगों के प्रहार से कैसे
चेगा, यह चिंतनीय है । मेरा यह सोच निर्मूल नहीं है, चारणदेव ।" माँ की पीड़ा गले तक
र आई ।

कुछ पलों तक मौन छा गया । माँ की ममता गहराई तक उतर गई थी । राजरानी
ि तर्क का उत्तर नहीं सूझ रहा था, तथापि प्रताप ने हिम्मत दिखाई-"माँजीराज ! आप यह
यों भूल जाती हैं कि गीता का उपदेश ऐसे ही अवसरों के लिए होता है । जन्म के दिन ही
त्यु की तिथि अंकित हो जाती है । यदि मेरी मौत युद्ध में लिखी है तो इसे कौन टाल
एगा ? आप इसकी चिन्ता नहीं करें, माताश्री !"

"बेटा ! तू औरत नहीं है, इसलिए माँ के मन की पीड़ा को क्या समझेगा ? फिर
इतना समझ ले कि मेरे जीवन की ज्योति का आधार एकमात्र तू ही है । मैं किसी
हाराणा या महाराजकुंवर को नहीं जानती हूँ । मेरे लिए इन समस्त पदों की तुलना में मेरा
त्र मुझे प्रिय है ।" माँ के कपोलों पर गंगा-यमुना बह निकली ।

"बाई जी ! आप हिम्मत से काम लें । मैं आपकी आशंका को गांठ बाँधकर अपने
ांव लौट रहा हूँ । आपके पिताश्री को समझाने की चेष्टा करूँगा । आप विश्वास रखें कि
मारे भाणेज प्रताप के निजी अंगरक्षकों के रूप में कम से कम एक सौ युवकों को लेकर मैं
दा उनके साथ छाया की भाँति लगा रहूँगा । होनी-अनहोनी तो ईश्वराधीन है फिर भी मैं
पने जीते जी आपके पुत्र का बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा । आप युद्ध में जाने की स्वीकृति
भजवा दें । मैं कल यहाँ से प्रस्थान करूँगा और आपको एकलिंगनाथ के मंदिर में मिलूँगा ।"
ारण कवि उत्तेजित हो उठा ।

"किस तिथि तक वहाँ पहुँच जाओगे ?" माँ का विश्वास लौट आया था ।

"अगली पूर्णिमा की रात, एकलिंगनाथ के मंदिर में ही बीतेगी ।" कवि ने मानो
याण का मुहूर्त ही निकाल दिया था । महारानी के मन पर छाया कुहासा छँट गया था ।
सने मन से शुभाशीष दिया-"कविराज, आप शतायु हों । मेरा बेटा अब आपके भरोसे है ।
ब चलती हूँ, रात्रि का दूसरा प्रहर हो चला है ।"

"जय एकलिंग, कविराज !"

"जय एकलिंग !" कवि जाते हुए तूफानों को निर्निमेष देखता ही रहा ।
ाराछायी रात में दूर पहाड़ी के पीछे से चंद्रमा उदय हो रहा था । खेतों से सियारों की
ावाज सुनाई पड़ रही थी । श्वानदेव अपनी उपस्थिति की जानकारी जोर शोर के साथ जड़-
ैतन्य को दे रहे थे । कभी-कभार किसी घोड़े की हिनहिनाहट भी सुनाई दे जाती थी ।
मीप ही ऊँचाई पर दुर्ग की प्राचीर पर जलते बिनोलों का प्रकाश दूर-दूर तक दिखाई दे
हा था । कविराज एक झौंपड़ी में तख्त पर लेटे-लेटे भविष्य के स्वप्न में डूब रहे थे । □

(3)

मेवाड़ की दक्षिण दिशा में चित्तौड़गढ़ से निकले सिसोदिया खानदान के वंशज आसकरण का डूंगरपुर राज्य पर अधिकार था। पिछले कुछ दिनों से जो समाचार पहुँच रहे थे, उनको समझ पाना आसकरण जैसे परम्परावादी शासक के लिए कठिन था। ऊँची पहाड़ी पर बने दुर्ग स्थित प्रासाद के निजीकक्ष में अपने पलंग पर पसरा आसकरण मात्र करवटें ही बदलने में अपना समय व्यय कर रहा था। मन था कि चुप होने का नाम तक नहीं लेता था। भीतर छाई व्याकुलता, धुंध एवं संदेह की परतें एक-एक कर अनावृत्त हो रही थीं। कभी उसके पूर्वजों का चित्तौड़गढ़ पर शासन था, किन्तु उसके ही रक्त सम्बन्धी उसके पूर्वजों को चित्तौड़गढ़ साम्राज्य में नहीं पचा पाए थे। यह तो उनका पुरुषार्थ था कि पर्वतों एवं पहाड़ी नदियों से घिरे इस वन्यजीवों के भूखण्ड पर उन्होंने अधिकार कर एक राज्य का गठन कर लिया था। दुर्ग बना हुआ था, चौहान क्षत्रियों की सहायता भी उपलब्ध थी, आय के स्रोत भी गुजराती वणजारों की कृपा से ठीक ठाक थे, किन्तु मेवाड़ से जो भी खबरें निकल रही थीं, वे डूंगरपुर के लिए शुभ नहीं कही जा सकती थी।

महाराणा उदयसिंह अपने बेटे प्रताप से नाराज थे, यह बात तो बहुत सामान्य सी थी, किन्तु उसे सेना देकर एकलिंगनाथ के दर्शनार्थ भेजना, क्यों आवश्यक था ? क्या उस सेना का लक्ष्य डूंगरपुर तो नहीं था ? क्या प्रताप जैसा महाराजकुँवर अपने पिता से अलग भूमि स्थापित करने की इच्छा से तो नहीं निकला था ? बाप-बेटों का आपसी मनमुटाव कहीं किसी योजना का हिस्सा तो नहीं था ? मन का एक भाग इस प्रकार के कई प्रश्न खड़े कर रहा था तो दूसरा भाग ढांढस भी बंधा रहा था। यह मन कहता था कि भय किस बात का है ? मेवाड़ और वागड़ (डूंगरपुर और बांसवाड़ा) के बीच सलूम्बर, चावण्ड एवं सराड़ा के पर्वत हैं जहाँ राठौड़ों ने छोटी-मोटी छप्पन जागीरें बना रखी थीं। ये छप्पनिए राठौड़ डूंगरपुर के मित्र बन गए थे। जब तक ये राठौड़ परास्त नहीं होते, तब तक डूंगरपुर तक पहुँच पाना कठिन था। वैसे सीधी चिन्ता जैसी कोई बात नहीं थी तथापि महाराजकुँवर का सेना लेकर निकलना अपने आप में एक बड़ी घटना थी, एक बड़ा प्रश्नचिन्ह था जिसका उत्तर खोज पाना कठिन था।

करवटें बदलते बदलते महाराज आसकरण की वह दुपहरी, संध्या में बदल गई। किसी प्रकार स्वयं को हिम्मत बंधा कर महाराज ने आगन्तुकों से भेंट करने के कक्ष में प्रवेश

किया। यहाँ आने पर पता लगा कि नगर का दंडनायक एवं राज्य का प्रमुख महाबलाधिकृत सांवलदास चौहान उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज को दोनों की उपस्थिति गंभीर बना गई। आपसी अभिवादन के पश्चात् अपने आसन पर बैठते-बैठते महारावल आसकरण ने पूछ ही लिया—

"आज आपका एक साथ यहाँ पधारना किसी विशिष्ट स्थिति की ओर संकेत करता है।"

"आपका अनुमान सत्य है महाराज।" चौहानवंशज सांवलदास के रोबीले चेहरे पर फैली मूँछें, इस वाक्य के साथ ही कुछ हिल सी गई।

"पहले आप ही आरम्भ करें दंडनायक जी !"

"अन्नदाता, इन दिनों हमारे पूरे प्रयत्नों के बावजूद भीलों और मीणों की समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है। भीलों के आपसी कलह और लूटपाट के व्यसन के कारण डूंगरपुर राज्य में चोरियाँ बढ़ी हैं। विशेष बात तो यह है कि इन दिनों दिन दहाड़े लूटने की घटनाओं में विशेष वृद्धि हो रही है।"

"अपराध की इस वृद्धि को क्या समझा जाए ? क्या इसका अर्थ यह तो नहीं कि हमारे सैनिक इन डकैतों से भय खाते हों, अथवा सैनिकों का अप्रच्छन्न सहयोग इन डकैतों को मिल रहा हो ?" महाराज की तीक्ष्ण आँखें महादंडनायक पर केन्द्रित थी।

"नहीं महाराज। डकैतों के ये गिरोह सबसे पहले हमारे सैनिकों पर ही घात लगाकर हमले करते हैं। इनमें से कुछ डकैतों को पकड़ा भी गया है, किन्तु एक विचित्र बात यह सामने आई है कि इनका सम्बन्ध मेवाड़ से है।" दंडनायक ने विनम्रतापूर्वक कहा।

"इसका क्या अर्थ है ?"

"यही कि इन डकैतों को मेवाड़ राज्य के महाराजकुँवर प्रतापसिंह के साथियों का समर्थन प्राप्त है।"

"इसी क्रम में मैं भी आपसे कुछ निवेदन करने की स्वीकृति चाहूँगा।"

"आप निर्भय होकर कहें, सांवलदास जी !" महारावल आसकरण अधिक सतर्क हो उठे।

"महाराज ! कुँवर प्रतापसिंह ने पिछली पूर्णिमा की रात एकलिंग जी के मंदिर में व्यतीत की थी। उनके साथ मेवाड़ की सेना के दो हजार घुड़सवार थे। इसके बाद सेना किस ओर गई, इसकी जानकारी नहीं मिली। उनके कुछ सैनिकों को हमारी सीमा की ओर आते हुए देखा गया है।"

"क्या इसी सेना ने छप्पनिये राठौड़ों को परास्त कर दिया ? क्या सलूम्बर जैसा सुदृढ़ दुर्ग राठौड़ों के हाथों से निकल गया ?" महाराज के चेहरे पर पसीना छलक आया।

"इसकी कोई जानकारी नहीं है। इतना तय है कि किसी बड़ी सेना के आने का कोई संकेत नहीं है।" महाबलाधिकृत ने उत्तर दिया।

"इसका सीधा सा अर्थ यह है कि डकैतियों के प्रकरण और मेवाड़ी सेना के बीच कोई न कोई सहसम्बन्ध है।" महाराज इतना कहकर मौन हो गए। कुछ पलों तक शान्ति छा गई। तीनों व्यक्ति अपने-अपने आकलन में व्यस्त हो गए। इसी बीच एक द्वारपाल कक्ष में आकर क्षमा चाहता हुआ निवेदन करने लगा-

"अन्नदाता, मेवाड़ का कोई संदेश लेकर एक चारण उपस्थित होने की अनुमति चाहता है।"

"महारावल ने एक क्षण सोचा और उसे संकेत से बुला लाने की स्वीकृति दे दी। कुछ अन्तराल बाद चारण उपस्थित हुआ। उसने आपसी शिष्टाचारवश अभिवादन के बाद कहना आरम्भ किया-

"महारावल जी, महाराजकुँवर प्रतापसिंह जी ने आपके श्रीचरणों में परिवार के बुजुर्ग होने के नाते प्रणाम निवेदन किया है।"

"वह चिरायु हो। आपको यहाँ भेजने का कोई विशेष अर्थ ?"

"महाराजकुँवर ने कहलाया है कि आपके पिताश्री ने महाराणा सांगा एवं बादशाह बाबर के बीच हुए महासमर में भाग लिया था। उस समय तक यह परम्परा थी कि डूंगरपुर के राज्यसिंहासन पर बैठने वाला शासक चित्तौड़गढ़ में आकर महाराणा के समक्ष विशिष्ट सामन्तों की पंक्ति में बैठा करता था, किन्तु खेद है कि गत अट्ठाइस वर्षों में आपने उक्त परम्परा का पालन नहीं किया है।" कहकर चारण कुछ क्षण रुका।

"तो क्या तुम्हारा युवराज हमसे स्पष्टीकरण पूछना चाहता है ?"

"युवराज चाहते हैं कि आप उस परम्परा का पालन पुनः आरम्भ करें।"

"आपके महाराणाओं ने इस लम्बी कालावधि में यह प्रश्न क्यों नहीं पूछा ? आज भी यह बात महाराणा जी न पूछ कर प्रताप सिंह पूछ रहे हैं। इसका क्या अर्थ है ?" महारावल का चेहरा तमतमा गया।

"जो कुछ पूछा जा रहा है, उसमें महाराणा जी की स्वीकृति है।"

"आपको तो पता है चारण जी, कि अब हमारा शासन स्वतंत्र है। हमें अपने बारे में निर्णय करने की पूरी आजादी है। हम अब मेवाड़ के अधीन राज्य करने वाले शासक नहीं हैं।"

"यह कुँवर प्रताप सिंह को पता है अन्नदाता ! उनका निवेदन इतना सा है कि चली आई परम्परा का निर्वाह किया जाए।"

"यदि हमने उनके आग्रह को नहीं स्वीकारा तो... ?"

"कुँवर जी ने कहलाया है कि, इसके परिणाम जो भी होंगे, इसके लिए आप स्वयं जिम्मेदार कहे जाएँगे।"

"उन्हें समझाओ दूत ! महाराणा जी में स्वयं तो दम है नहीं और अब वह उपेक्षित युवक हमसे चुनौती की भाषा में अपने संदेश भेज रहा है। जिस युवक को अपने

ता से मिलने के लिए स्वीकृति लेनी पड़ती हो, जिसे राजमहलों में रहने से वंचित किया था हो, जिसकी माँ को अपने बेटे के लिए राजमहल छोड़कर वन में रहना पड़ता हो, वह में महाराणा की चाकरी करने की सीख दे रहा है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि प्रताप सिंह जी रा धमका कर स्वयं के लिए किसी जागीर का इन्तजाम करना चाहते हैं ? यदि वे जागीर चाहते हैं तो उन्हें कहें कि वह मेरे पास आ जाएँ। गुजारे लायक जमीन का बन्दोबस्त मैं र दूँगा।"

"आपकी बात उन तक पहुँचा दूँगा, अन्नदाता ! किन्तु मूल बात अभी तक नुत्तरित है।"

"यह आवश्यक भी नहीं कि पड़ौसी राज्य की प्रत्येक सलाह का उत्तर दिया ही ाए। वैसे आप मेवाड़ के तो नहीं लगते हैं। आपकी बोली में मारवाड़ी का पुट है।"

"आपने ठीक पहचाना अन्नदाता ! मैं पाली का रहने वाला हूँ और महाराज खैराज जी के आश्रय में हूँ।"

"इसका अर्थ है कि प्रतापसिंह अपने ननिहाल वालों की मदद से कुछ करना ाहता है। मेवाड़ में क्या दूत का काम करने वालों का अकाल पड़ गया है ?"

"इसका उत्तर तो महाराजकुँवर ही दे सकते हैं।" दूत ने उत्तर दिया।

"वैसे प्रतापसिंह जी इन दिनों कहाँ हैं ?" यह संदेश किस स्थान से भेजा गया ा ?"

"महारावल जी ! आपने अभी-अभी कहा था कि हमारे महाराजकुँवर महाराणा ा द्वार उपेक्षित हैं ? आपने यह भी बताया कि उन्हें दुर्ग से बाहर रहना होता है, अतः यह ेश किसी वनभूमि से ही लिखा गया है।" चारण कवि नहीं चाहता था कि प्रश्न का सीधा र दिया जाए।

"उस वनभूमि का कोई नाम तो होगा ?"

"सारी भूमि भगवान एकलिंगनाथ की है। कहीं से भी संदेश भिजवाया जा सकता ।"

"मुझे बताया गया है कि आपके महाराजकुँवर अपने साथ सेना लेकर चित्तौड़गढ़ एकलिंगनाथ के मंदिर तक आए थे। इसके बाद वे कहाँ गए ? क्या आप इस पर कुछ ा सकेंगे ?"

"एकलिंगनाथ तो मेवाड़ के अधिपति हैं। महाराणा जी एवं मेवाड़ के महाराज वर तो उनके अनुचर हैं। किसी नौकर का अधिपति के मंदिर में उपस्थित होना कोई होनी बात नहीं है। जहाँ तक सेना लेकर साथ जाने का प्रश्न है, इसका सीधा सा उत्तर है कि महाराज कुँवर की सुरक्षा करना राज्य का धर्म है, अतः छोटी-बड़ी सेना तो के साथ लगी ही रहती है। वैसे इन दिनों वे शिकार का आनन्द ले रहे हैं। आप जानते हैं उन्हें शिकार का बेहद शौक है।"

"यह शिकार उन्हें मेवाड़ की सीमा में ही मिलता है या पड़ौसी राज्यों में महारावल ने सीधा प्रश्न कर दिया।

"वैसे वन्य जीवों की मेवाड़ में कमी तो नहीं है। ऐसा एक भी उदाहरण तक मुझे ज्ञात नहीं है, जिससे यह कहा जा सके कि महाराज कुँवर ने राज्य की सी अतिक्रमण किया हो ?"

"अतिक्रमण के लिए व्यक्ति का स्वयं जाना ही आवश्यक नहीं है। डकैर पड़ौसियों की सीमा में भेजना, गाँवों में आग लगाकर आतंक फैलाना, छल-बल से प्र सामंतों को प्रभावित करना... क्या ये कार्य अतिक्रमण में नहीं आते हैं ?"

"महाराज, इन सभी कार्यों की जानकारी मुझे नहीं है। मैं तो मात्र महाराज का संदेश आप तक पहुँचाने आया था। यदि आप उन तक अपना कोई समाचार पहुँचान तो यह सेवक तत्पर है।" चारण कवि विवाद से बचना चाहता था, अतः चर्चा को स की ओर ले गया।

"दूत ! तुम प्रतिभावान हो। प्रतापसिंह जी को समझाइये कि वे चुनौतियं अपेक्षा सहयोग की भाषा में बात करें। वे चाहें तो उनके पिताश्री की उपेक्षा का बदला जा सकता है। यदि वे अपने अधिकारों के लिए महाराणा जी के विरुद्ध कुछ करना चा हमसे सहयोग ले सकते हैं।"

"इसका अर्थ मेवाड़ के प्रति विद्रोह से है ?"

"नहीं... ! मेवाड़ के प्रति नहीं ... ! विद्रोह किया जाना चाहिए अपने पिताश्र विरुद्ध, जिन्होंने प्रताप जैसे योग्य उत्तराधिकारी की उपेक्षा की है।"

"आपका संदेश उन तक पहुँचा दूँगा, अन्नदाता। और कुछ . . ?"

"उन्हें समझाना कि, शिकार करने की लत का दुरुपयोग पड़ौसी सीमा में करें और शिकारी कुत्तों को डकैतों के रूप में डूंगरपुर राज्य में नहीं भेजें। यदि वे अ आदत में परिवर्तन नहीं कर सकें, तो हमें ही कुछ सोचना पड़ेगा। अब आप विश्राम और कुछ दिन हमारे आतिथ्य को स्वीकार करें।"

"आपके आतिथ्य की मनुहार के लिए मैं आभारी हूँ। आप आज्ञा दें तो मैं ही मेवाड़ की ओर प्रस्थान कर जाना चाहता हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा, चारण जी।"

चारण कवि प्रणाम कर कक्ष छोड़कर बाहर आ गया। राज्य के दोनों अधिका और महारावल के बीच देर तक चर्चा चलती रही। चर्चा का परिणाम यह रहा कि अ दिन डूंगरपुर की सेना ने सांवलदास चौहान के नेतृत्व में मेवाड़ की ओर प्रस्थान किया।

(4)

वृद्ध पुरोहित की दौड़धूप का आज अंत नहीं था। पिछले दो सप्ताह से उसे चैन नहीं था। महाराणा उदयसिंह ने आसपास के नरेशों को बुलवाने हेतु दूत भेज दिए थे। बहुत बड़े दरबार का आयोजन किया जाना तय था। दरबार की व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों की जिम्मेदारी वृद्धि पुरोहित पर थी। ज्यों-ज्यों दरबार के आयोजन की तिथि समीप आती जाती थी, वृद्ध पर दबाव बढ़ता जाता था। एक-एक दिन कम होता गया। सामन्तों एवं मित्र देशों के प्रतिनिधि आने लग गए थे। सभी को यथोचित आवासों में ठहराया गया। उनके लिए खाने-पीने एवं मनोरंजन की समस्त प्रकार की व्यवस्थाएँ जुटाई गईं।

अगले दिन दरबार होना था। इसकी पूर्व रात्रि के समय महाराणा उदयसिंह ने अपने कक्ष में एक बार अधिकारी को बुलवाकर उसको सौंपे गए कार्य का विवरण प्राप्त किया। आज अंतःपुर की रानियों ने भी स्वागत की व्यवस्था की थी। महारानी जैवन्तीबाई पिछले छः महिनों से राजप्रासाद में ही रह रही थी। जब से प्रताप अपनी सेना के साथ छप्पनिये राठौड़ों और डूंगरपुर के दमन हेतु गया था तब से राजरानी ने भी अपने वनांचल के आवास को छोड़कर महाराणा से स्वीकृति लेकर दुर्ग में रहना आरम्भ कर दिया। प्रताप के विजय की कामना एवं उसके जीवित लौट आने की प्रार्थना वह भगवान आशुतोष से प्रतिदिन किया करती थी। अपने निजी व्यय की राशि में से उसने माँ अन्नपूर्णा के मंदिर में दुर्गासप्तशती का पाठ आरम्भ कराया था तो दूसरी ओर नीलकंठ महादेव के मंदिर में प्रतिदिन रुद्राभिषेक का आयोजन किया जा रहा था। मन में केवल एक ही उत्कंठा थी कि उसका धीर वीर पुत्र सकुशल लौट आए।

आज का दिवस राजरानी के लिए अपूर्व उत्साह का दिन था। जिस पुत्र को पिता की उपेक्षा के बावजूद पाल-पोस कर बड़ा किया, वह अपनी प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर लौट रहा था। उसके बेटे, जन-जन के कूका और मेवाड़ के भावी उत्तराधिकारी का सम्मान जो किया जाना था। न चाहते हुए भी महाराणा उदयसिंह की प्रिय रानी धीरजकुँवर ने भी लोक दिखावे के लिए महाराजकुँवर प्रतापसिंह के आगमन की तैयारी की। सौतिया डाह की आग को मन ही मन दबाए वह समस्त आयोजन को देखकर प्रसन्नता का आवरण पहने हुए थी। आखिर वह दिवस भी आ गया। समस्त सेना के साथ महाराज कुँवर ने चित्तौड़गढ़

के प्रथम द्वार जिसे पाटनपोल कहा जाता है, में प्रवेश किया । सफेद घोड़े पर बैठा यह युवक दूर से ही पहचाना जा रहा था । उसके चारों ओर सोनगरा चौहान युवकों का एक दल अंगरक्षकों के रूप में नग्न खड्ग हाथ में लिए चल रहा था । द्वार पर वृद्ध पुरोहित, मुख्य आमात्य एवं चूण्डावतों के प्रमुख ने स्वागत किया । इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों शोभायात्रा आगे बढ़ती गई दरवाजों पर खड़ी कुलवधुओं ने पुष्प बरसा कर महाराज कुँवर का अभिनंदन किया । एक-एक कर सातों दरवाजों पर उनका स्वागत किया गया । प्रशस्तियों का गान करने वाले आगे-आगे चल रहे थे । हाथियों, घोड़ों एवं रथों की अपूर्व शोभा वाला सैनिक दल रामपोल तक पहुँचा । यहाँ महाराणा उदयसिंह स्वयं स्वागत हेतु उपस्थित थे । प्रताप ने घोड़े से नीचे उतर कर पिताश्री के चरणों में प्रणाम किया ।

शोभा यात्रा एक बार मानो रुक सी गई थी । कुछ अन्तराल के बाद पिता और पुत्र हाथी पर सवार होकर महाराणा कुंभा के बनाए गए महलों की ओर प्रस्थान करने लगे । कुंभा महल के दक्षिण दिशा की ओर बना आम दरबार का स्थान खचाखच भरा हुआ था जहाँ देखो वहाँ आदमी दिखाई दे रहे थे । भीड़ के बीच में से गुजरते महाराणा और उसके पाटवी पुत्र प्रताप ने सभी की ओर हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए अपना रास्ता बनाया । जय जयकार, पुष्पवर्षण एवं सद्भाव के उस वातावरण में से गुजरते हुए महाराणा ने अपने लिए निर्धारित स्थान को ग्रहण किया । राजरानियाँ प्रासाद के ऊपरी कक्ष के झरोखों में पहले से ही अपना स्थान ले चुकी थीं ।

वृद्ध पुरोहित ने स्वस्तिवाचन कर शुभाशीष देकर प्रताप के साथ गए सैनिक प्रमुखों में से एक कुलवृद्ध से प्रार्थना की कि वे महाराज कुँवर की इस विजय यात्रा के कुछ प्रसंग आम-आदमियों को भी सुनावें । कुलवृद्ध ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फिरा कर कहना आरम्भ किया—

"भगवान एकलिंगनाथ की कृपा से हम विजय प्राप्त कर लौटे हैं । इस समस्त विजय का श्रेय केवल महाराज कुँवर को जाता है क्योंकि उनकी सूझबूझ का ही परिणाम था कि हम सुरक्षित लौट सके । हमें आरम्भ में लगा कि महाराणाजी का यह निर्णय गलत था कि कुँवर प्रताप जैसे नादान को सेनापति बनाकर भेजा जा रहा था, जिसे युद्ध का बिलकुल अनुभव नहीं था । मुझे भी आरम्भ में बहुत बुरा लगा था । मैंने तो महाराणा जी से कहा भी था कि बड़े-बड़े शूरवीरों के होते हुए एक बच्चे को इतनी बड़ी जिम्मेदारी क्यों दी गई थी । फिर भी अनुशासनवश हमने इसे स्वीकार किया ।

जैसे ही हम एकलिंगनाथ के मंदिर में एकत्रित हुए, कुँवर ने प्रार्थना पूर्वक आदेश देना आरम्भ किया । इन आदेशों के अनुसार हमारी सेना कई छोटे-छोटे समूहों में बँट गई । प्रत्येक समूह से कहा गया कि वे छप्पनिये राठौड़ों के प्रमुख कस्बों को घेर लें । हमसे कहा गया कि सभी प्रत्यक्ष युद्ध से बचें और ऐसा प्रयास करें कि गाँवों और कस्बों के दुर्ग उस समय तक बंद रहें जब तक कि भीतर के लोग भूखे न मरने लगें । सर्वप्रथम हमने

सलूम्बर को घेरा। वहाँ के घेरे की जिम्मेदारी कृष्णसिंह जी चुण्डावत को सौंपी गई। नगर के द्वार बन्द कर दिए गए थे। हम उस नगर के चारों ओर फैल गए। हमें निर्देश थे कि न किसी को मारा जाए और न [illegible] तीन महीनों तक यह घेरा चलता था। इसी बीच पता लगा कि कुंवर हमें वहाँ उलझाकर स्वयं सेना के साथ डूंगरपुर पहुँच गए और वहाँ भी उसे जीत कर ही हमारे पास आए।" वृद्ध जोर से बोलते-बोलते थक से गए थे। वृद्ध पुरोहित ने एक दूसरे साथी को खड़ा किया। वह कहने लगा-"महाराज कुँवर का सबसे सुंदर युद्ध डूंगरपुर की सीमा पर हुआ। कुँवर प्रताप ने अपने भील साथियों के कुछ गिरोहों को डूंगरपुर की सीमा पर भेज दिया। इन भील युवकों को आदेश दिया गया कि, वे डूंगरपुर राज्य में उत्पात मचावें। वहाँ की फसलें काटकर ले आवें, आग लगा दें और राजकीय सैनिकों के मन में इतना भय व्याप्त कर दें कि उनका मनोबल ही टूट जाए। परिणाम यह हुआ कि भीलों के समूह दिन दहाड़े डूंगरपुर के गाँवों को लूटते और रात में हमारे पड़ाव में आकर लूट का सामान हमें देकर विश्राम करने लगे। यहाँ भी हमारी सेना सोम नदी के किनारे-किनारे कोसों तक फैली हुई थी। अन्न की पूर्ति इन भील युवकों द्वारा की जाती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि डूंगरपुर राज्य का आम आदमी गाँव के गाँव छोड़कर भाग गया। राज्य की सेना के कई सैनिकों में इतना डर समा गया कि हिम्मत से हमारा सामना ही नहीं कर सके। हमारी सेना इतनी फैली हुई थी कि उन्हें यह अन्दाज ही नहीं लगा कि हम किस ओर से उन पर हमला करेंगे। परिणाम यह रहा कि हम आगे बढ़ते-बढ़ते डूंगरपुर से पाँच-सात कोस दूर रह गए।

इसके बाद वहाँ के महारावल जी ने कुंवर प्रतापसिंह जी के डेरे में आकर क्षमा माँगी, सैनिक खर्च की राशि भेंट की और आगे से परंपरा के अनुसार चित्तौड़गढ़ में आकर सेवा देने की शर्त स्वीकार की। कुंवर ने उसी समय डूँगरपुर के एक हजार घुड़सवारों की सेना को साथ लेकर सराड़ा, चावण्ड और जवास के क्षेत्रों में छप्पनिये राठौड़ों को दबाना आरम्भ कर दिया। छप्पनियों को जो सहायता डूँगरपुर से मिला करती थी वह अब बन्द हो गई। उनका प्रमुख सरदार सलूम्बर नगर में घिरा बैठा था। इस प्रकार एक-एक राठौड़ शक्ति के केन्द्र को समाप्त कर महाराजकुंवर ने अस्थायी रूप से अपनी सेना में श्रेष्ठ सेवा देने वाले सैनिकों को जागीरें दी। सबसे अंत में सलूम्बर पर हमला किया गया और वहाँ से राठौड़ों को निकाल बाहर किया।"

एक युवक कई देर से सारी घटना सुन रहा था। वह भी सेना के साथ था। पुरोहित ने उसकी उत्सुकता देखकर उसे भी कुछ कहने हेतु बुलाया। उस युवक ने कहा- "अन्नदाता! राजकुमार जी ने यह युद्ध बिना अधिक हानि के जीत लिया। कुँवर जी से इतना प्रभावित हूँ कि मैं भगवान एकलिंगनाथ की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि जब तक सांस में सांस है, कुँवर प्रताप का साथ नहीं छोड़ूँगा।" युवक ने अपनी तलवार खींचली और अपने अंगूठे को चीर कर खून से महाराज कुँवर के भाल पर तिलक कर दिया। युवक का जोश मानों उसके शरीर में नहीं समा रहा था। इसी क्रम में अन्य कई लोगों ने भी कुँवर की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा।

अब बारी थी कुँवर के कहने की। वृद्ध पुरोहित ने जैसे ही प्रताप का नाम लिया, सभी एक स्वर से कह उठे-"महाराजकुँवर प्रताप की जय।" प्रताप ने, सभी वृद्धों को हाथ जोड़ कर प्रणाम् निवेदन कर कहना आरम्भ किया-"भगवान् एकलिंगनाथ, आप बुजुर्गों और मेरी माँ के शुभाशीष से हमें सफलता मिली। मैंने युद्ध के समय यदि किसी बुजुर्ग के प्रति कठोरता दिखाई हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ। मैं उन वीरों को भी स्मरण करता हूँ जो हमारे साथ थे किन्तु साथ आ नहीं सके। वे लोग परलोक चले गए। मैं उन्हें हृदय से प्रणाम करता हूँ। मेरी पूज्य महाराणाजी से प्रार्थना है कि जो भी सैनिक इस अभियान में काम आ गए उनके परिवार को जागीर दी जाए। मैंने अपने विवेक से ऐसे लोगों को अस्थाई जागीरें दी हैं, जिन्होंने युद्ध में पराक्रम दिखाया था। यदि महाराणाजी आज्ञा दें तो राठौड़ों से छीनी गई जागीरें ऐसे वीरों में बाँट दी जाए। मैं चाहूँगा कि सलूम्बर की जागीर हमारे चूण्डावत प्रमुख श्री कृष्ण सिंह को दी जाए ताकि भविष्य में भी डूंगरपुर और छप्पन के क्षेत्र पर हमारा स्थाई दबाव बना रहे।

इसी प्रकार मैं चाहूँगा कि मेरे भील साथी श्री पूंजाजी को भी एक बड़े सामंत जितनी जागीर दी जाए ताकि उनकी सेवाओं को स्मरण किया जा सके। उनके साथियों द्वारा मचाए गए उत्पात के कारण ही हम डूंगरपुर जीत सके हैं। इस पूरे अभियान में रसद की आपूर्ति श्री पूँजाजी के सहयोगियों ने ही की थी। इसी प्रकार जिन-जिन लोगों को भी जागीरें दी जानी हैं, उनकी एक सूची मैं पूज्य महाराणाजी को सौंप रहा हूँ। चाहूँगा कि इस पर राज्य की मुहर लग जाए। आपने मुझे सुना, युद्ध में सहयोग दिया एवं स्नेह दिया, एतदर्थ आभार।"

प्रताप के नाम पर एक बार पुनः जोर का जयनाद हुआ। महाराणाजी ने समापन किया। उन्होंने कहा-महाराजकुँवर ने जागीरों के प्रस्ताव किए हैं ऊपर मुहर लगा दी जाएगी किन्तु चाहता हूँ कि उन्हें अब बाँध दिया जाए।"

सारी सभा सन्न रह गई। कुछ क्षणों बाद महाराणा ने मुस्कराकर कहा कि एक माह पश्चात् महाराजकुँवर को विवाह के बंधन में बाँधा जाएगा। आप सभी आमंत्रित हैं। पुनः हर्ष की लहर दौड़ गई।

सभा समाप्त हुई। प्रताप ने आज्ञा लेकर राजप्रासाद के अंतःपुर से प्रवेश किया। माँ जैवन्तीबाई बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रही थी। पूजा की थाली और आरती एक ओर रह गई। प्रताप सीधे जाकर माँ के पैरों में पड़ गए। माँ के आंसुओं से प्रताप का अभिषेक हो गया। बार-बार सिर पर हाथ फिराती माँ केवल यही कह सकी..."बेटा" "कूका"। माँ बेटे का यह मिलन अपूर्व था। जब होश आया तब माँ ने अपने आभूषण उतार उतार कर दास दासियों एवं ब्राह्मणों में वितरित कर दिए। उसके लिए उसका बेटा जीवित था, यही सबसे बड़ी सौगात थी। बड़ी देर बाद प्रताप ने कहा-

"माँ"
"हाँ"
"चलें... ?"
"कहाँ .. ?"

"आपके आवास पर।"

"कौनसा आवास... ?"

"वही दुर्ग के नीचे वाला। हमें तो वहीं रहना है। मैंने राणाजी की आज्ञा का पालन कर दिया। अब हमारा यहाँ क्या काम है ?"

"परन्तु तुम्हारा तो एक माह बाद विवाह है।"

"परन्तु माँ... हमारा घर तो वही है। वहाँ वन है, शान्ति है, भोले-भाले लोग हैं। इन महलों में तो मेरा दम घुटता है।"

"राणा जी से पूछा ?"

"नहीं।"

"क्या वे स्वीकृति देंगे ?"

"यहाँ रहने की भी स्वीकृति कहाँ दी है ?"

"परन्तु आज चले जाना ठीक नहीं होगा। कई देशों के लोग आए हुए हैं। ये लोग चले जाएँ तब तुम भी चल देना।"

"परन्तु माँ एक काम आपको करना होगा।"

"कहो !"

"मेरा विवाह किससे होगा ?"

"किसी राजा या सामन्त की लड़की से।"

"तुमने उसे देखा है ?"

"नहीं।"

"तो उसे देखना। यदि नहीं देख सको तो किसी को भेजकर उसे समझाना।"

"क्या ?"

"यही कि उसे प्रताप से विवाह करना है, महलों से नहीं। उसे बहू बनकर रहना है, राजरानी नहीं।"

"क्या कह रहा है तू... ?"

"हाँ, माँ, मैं सच ही कह रहा हूँ। मुझे महलों का मोह नहीं है। वैभव की आकांक्षा नहीं है। यह बात तू अपनी होने वाली बहू को समझा देना। अब आज्ञा दूँ।" प्रताप ने माँ के चरण छुए और चला गया। एक ठंडी लहर मानों माँ के कलेजे के पार हो गई थी। वह जाते हुए प्रताप के कदम देखती रह गई।

समय की सांकल जब भी बजती है, किसी न किसी परिवर्तन का द्वार खुलता है। कवि चारण ने जब से प्रताप की सुरक्षा के भार को वहन करने का दायित्व स्वीकारा तब से ही उसकी व्यस्तताएँ बढ़ गईं। अब तक वह हवा के झौंकों की भांति इधर-उधर भाग सकता था, आवारा बादल की भाँति इतस्ततः बरस सकता था और जब चाहता किसी देवालय या देव सदृश्य सत्ता शीर्ष पर बैठे नृपति के समक्ष अपने छंदों के बंद खोल सकता

था, किन्तु अब वह बंध गया था। नदी का उन्मुक्त प्रवाह बड़े बाँध के रूप में फैल गया था। उसकी दिनचर्या में भी बदलाव आ गया था। महारानी जैवन्ती बाई ने उसे कई बार समझाया कि वह विवाह कर ले, अपनी घर-गृहस्थी बसा ले और स्थाई रूप से मेवाड़ में बस जाए, किन्तु उसका मुक्त मन इसे स्वीकारता नहीं था। वह विवाह जैसे प्रसंग को ही टाल देता था।

एक बार महारानी जैवन्तीबाई ने उसे समझाने के क्रम में कहा-

"कवि चारण जी।"

"हाँ. . बाईजी।"

"तू यहाँ क्यों पड़ा है ? अपने घर बार छोड़कर, अपने आश्रयदाता मेरे भाई मानसिंह जी का साथ छोड़कर यहाँ क्यों अपना समय जाया कर रहा है ?"

"यह बात आपके समझ में आएगी भी नहीं ?"

"कौनसी बात... ?"

"यही कि मैं यहाँ क्यों रह रहा हूँ ?"

"फिर भी तेरा सोच क्या है ?"

"यह मन की बात है, बाई जी।"

"तेरा मन क्या कहता है ?"

"यह कहता है कि यहीं बंधा रहूँ।"

"किसके साथ ?"

"...है कोई।"

"कौन है ?"

"आप जानकर क्या करेंगी।"

"तू चाहे तो मैं उससे बात करूँ उसे यहाँ बुलवा लूँ।"

"यह संभव नहीं है, बाईजी राज।"

"तू नाम तो बता, वह कहाँ की रहने वाली है ?"

"वह सदा-सर्वदा सर्वत्र रहती है। उसे हर प्राणी पहचानता है उसे बताने की आवश्यकता नहीं है।"

"तू कवि की भाषा में मत बोल। मुझे उसका नाम पता बता।"

"बाईजी आप और कोई बात करें।"

"नहीं रे....। आज तुझे मेरी सौगंध है। बताना ही पड़ेगा।"

"तो सुनें माँ जी। यह जो धरती है न, मेरा इससे स्नेह है। यही मेरा स्थाई आश्रय है। मैं इसी के मोह में यहाँ पड़ा हूँ।"

"पागल है। तुझे कोई जागीर की आवश्यकता हो तो मैं प्रबन्ध कर दूँ। यह बात तूने पहले क्यों नहीं बताई।"

"माताजी, आप गलत समझ रही हैं। यहाँ पड़े रहने में मुझे कोई लोभ नहीं है जागीर प्राप्त करने की बात तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोची थी।"

"तो फिर इस धरती की बात क्यों करता है ?"

"इसलिए कि मेरा इससे प्रेम है। इस धरती के अतिरिक्त मैं और किसी के साथ सम्बन्ध जोड़ ही नहीं सकता हूँ। मेरा विवाह, मेरा प्राण, मेरा शरीर सब कुछ यह धरती ही है।"

"यही धरती क्यों ? पाली तेरा घर है। वहाँ भी तो यह धरती फैली हुई है ?"

"धरती-धरती में अंतर है माँजी। यह जो मेवाड़ है न, यह देव भूमि है। देवाधिदेव एकलिंगनाथ इसके अधिष्ठाता हैं। यहाँ के महाराणा इस धरती के चाकर के रूप में स्वयं को घोषित करते हैं। बताओ ऐसा घोषित भाव और किस राज्य में है ?"

"तो फिर तू चित्तौड़गढ़ के दुर्ग में जाकर महाराणा जी की सेवा में क्यों नहीं रहता है। वे तेरा आदर करेंगे। पुरस्कार देंगे।"

"माँजी, आप धरती को क्या समझती हैं... ? क्या किसी पहाड़ का नाम धरती है या किसी मैदान या नदी का नाम ? बाई जी, धरती बसती है धरती-पुत्रों के मन में। धरती के प्रति लगाव का भाव, उसके प्रति समर्पण का भाव एवं धरतीपुत्रों के प्रति सेवा का भाव, जहाँ भी होता है, वह धरती जीवित कही जाती है।"

"यह भाव तो यहाँ भी नहीं है। वह जो ऊपर गढ़ दिखाई दे रहा है वहाँ के निवासियों में यह भाव कहाँ है ? वही स्वार्थ, वही सोतिया डाह, वही षड्यंत्र यहाँ भी है जो अन्य राजाओं के यहाँ हुआ करते हैं।"

"आपका कथन सत्य है, माताजी। जो कुछ गलत हो रहा है वह ऊपर हो रहा है किन्तु इस दुर्ग के नीचे कुँवर प्रताप हैं। आप हैं। यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है।"

"यहाँ क्या है ? न धन, न वैभव, न सामंत। आटा-दाल तक दुर्ग से आता है।"

"मुझे एक बात समझाएँ ?"

"बोल...।"

"आपकी उपेक्षा की गई। महाराजकुँवर की भी उपेक्षा की गई। यहाँ तक कि उन्हें दुर्ग में जाने के पूर्व अपने पिताश्री की स्वीकृति लेनी होती है।"

"यह सच है।"

"क्या आपने कुँवर प्रताप में कभी पिताश्री के प्रति विद्रोह के भाव देखे ?"

"नहीं। ऐसा तो उसने एक बार भी नहीं सोचा।"

"यही कारण है कि मैं उनसे चिपका हुआ हूँ। उन्हें जब आदेश दिया जाता है कि डूँगरपुर और छप्पनिये राठौड़ों को दबाओ, तो यह युवक बिना हिचकिचाहट के चला जाता है और जीतकर लौटता है। उसे जब कहा जाता है कि गोड़वाड़ पर अपना खोया हुआ प्रभाव स्थापित करो, तो वह सेना लेकर जाता है और खोया हुआ भूखण्ड पुनः मेवाड़ में मिला देता है। क्या महाराजकुँवर ने इसके एवज में कुछ चाहा ? क्या उन्होंने कभी महाराणा जी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि उन्हें अधिकार या जागीर दी जाए ?"

"नहीं।"

"बस यही आकर्षण मुझे बांधे हुए है। यह व्यक्ति उपेक्षित होते हुए भी धरती की सुगंध को अपने मन में धारण किए हुए है। अपने लिए, आपके लिए या मिर लिए यह व्यक्ति कुछ भी नहीं चाहता है। केवल देता है, लेता कुछ भी नहीं है। मैं ऐसे धरतीपुत्रों की चाकरी करने में स्वयं को गौरवान्वित समझता हूँ।"

"तेरे भाव बहुत बड़े हैं कवि। ऐसे स्वार्थशून्य भाव तो बहुत ही कम दिखाई हैं।"

"बाईजी, आपसे अब एक ही प्रार्थना है कि मेरी इस बातचीत की चर्चा आप मत करना। हो सकता है मेरे मन में यश सुनने की लालसा पैदा हो जाए।"

जैवन्तीबाई शून्य में ताकने लगी। उसे लगा कि उसका उपेक्षित बेटा कितना आदमी है। अपने बेटे के ऐसे भावों को बाहर से आया कवि पढ़ गया और वह जन्म वाली माँ अपने बेटे को नहीं समझ सकी।

(5)

कालचक्र फिर आगे बढ़ चला। चित्तौड़गढ़ में इन दिनों मानों भूकम्प आ गया। सन् 1567 चल रहा [illegible] चारों ओर निराशा, स्वाभिमान की कठोरता एवं माल असबाब बांधने की भाषा सुनाई देती थी। चित्तौड़गढ़ के समीप के गाँव के गाँव खाली हो रहे। घोड़ों, गधों एवं बैलगाड़ियों पर अपना सामान लाद-लादकर आम आदमी अरावली के में घुसा चला जा रहा था। खेतों और घरों का मोह उनकी बरसती आँखों से झरता था, दूसरी ओर प्राण बचाने का व्यामोह उन्हें पर्वतों की शरण लेने की ओर प्रेरित करता। लोगों का समूह रात पड़ने पर किसी नदी-नाले के किनारे पर अपना पड़ाव डाल देता। लकड़ियाँ बीन कर अपने-अपने परिवार हेतु भोजन बनता और साथ चल रहे युवक अ जलाकर रातभर पहरा देते। इस प्रकार अपने सिर पर गठरियाँ रखे नागरिक पलायन कर थे।

न केवल प्रजा अपितु उनका शासक भी उनके साथ चल रहा था। राजरानि महारानियाँ, खवासनें, दास-दासियें, घोड़े, हाथी, रथ, सब कुछ साथ था। लगता था जैसे का पूरा राज्य स्थानान्तरित हो रहा था। सभी को अपने प्राणों की पड़ी थी।

न केवल मेवाड़ अपितु ऐसे भूकम्प के झटके मध्ययुग के भारत के अनेक प्रांतों लगे थे। तलवार के बल पर शासन जमाने वालों की आपसी लड़ाई का बोझ झेलना पड़

था-बच्चों को, बूढ़ों को, स्त्रियों को और शान्तिपूर्वक जीवन यापन करने वाले लोगों को। कल तक जो किसान अपने बैलों के कंधों पर जुआ डालकर हल चलाता था, आज बैलगाड़ी में अपने हल को बाँधकर चल रहा था। फटी गुदड़ियों के ढेर, अनाज के बोरों और बच्चों को गाड़ी में डालकर पूरा परिवार अनजान पर्वत की खोह में अपना सिर छिपाने चला जा रहा था। दुर्भाग्य, विधि की विडम्बना एवं विधाता के लेखों के दुष्प्रभावों की रटी रटाई भाषा को बोलता हुआ गाँव का गाँव चल रहा था। राम का नाम ऐसे ही क्षणों में अधिक रटा जाता था।

सामंत पुत्रों, सामंतों की स्त्रियों, राजरानियों के समूहों एवं आम आदमी के इस पलायन का नेतृत्व कर रहा था-महाराणा उदयसिंह। पलायन किया जाए या नहीं किया जाए, इस पर कई दिनों तक चर्चा चली थी। किन्तु अंतिम निर्णय पलायन के पक्ष में ही स्थिर रहा। चित्तौड़गढ़ से चलते-चलते यह समूह गोगुन्दा पहुँच गया। तब से कोई पन्द्रह-सत्रह वर्ष पूर्व महाराणा उदयसिंह ने अरावली के पर्वतीय क्षेत्र में अपनी राजधानी स्थापित करने का स्वप्न देखा था। उस समय यह सोचा गया था कि चित्तौड़गढ़ सुरक्षित नहीं था। चित्तौड़गढ़ एक पहाड़ी पर बसा हुआ था। पहाड़ी के चारों ओर खुला मैदान है। जब-जब भी चित्तौड़गढ़ को जीता गया, तब-तब केवल एक ही आधार उस जीत का रहा था। वह था-चारों ओर घेरा डालकर आठ-दस महिनों तक पड़ा रहा जाए। इस अवधि में दुर्ग का संचित अन्नकोष समाप्त हो जाता और सैनिकों को भूख की अपेक्षा लड़कर युद्ध में मरना श्रेयस्कर लगता था। इस स्थिति के आने पर दुर्ग के द्वार खोल दिए जाते थे। स्त्रियाँ जौहर कर लेती थीं और सैनिक कमर बाँधकर दरवाजे खोल देते और शत्रुओं पर टूट पड़ते। आक्रान्ताओं की तलवारों से कट कट कर ये वीर धराशायी हो जाते और चित्तौड़गढ़ का महान दुर्ग पराभूत हो जाता। अल्लाउद्दीन खिलजी एवं गुजरात के बहादुरशाह ने इसी आधार पर चित्तौड़गढ़ को भस्मीभूत किया था।

इस बार रणनीति बदल दी गई थी। गोगुन्दा में राजप्रासाद का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया था। आम आदमी जहाँ भी पानी का नाला मिलता वहाँ बसता जा रहा था। गोगुन्दा से लगभग आधा कोस दूरी पर गणपति जी का एक मंदिर है। कहते हैं जब महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़गढ़ से पलायन कर अपनी राजधानी गोगुन्दा में स्थिर की, उस समय गणपति जी की इस प्रतिमा को भी साथ लाया गया था और यहाँ स्थापित किया था। आज भी मेवाड़ के लोकगीतों में जब भी गणपति जी के गीत गाए जाते हैं सर्वप्रथम "गोगुन्दा के गणपत" के पधारने की स्तुति की जाती है। गोगुन्दा के गणेश और भदेसर के भैरव लोकगीतों के माध्यम से आज भी स्थाई आस्था के केन्द्र हैं।

गणपति के मंदिर के समीप महाराजकुँवर प्रताप और कवि चारण के घोड़ों को विराम दिया गया। कुँवर को यद्यपि यहाँ आए लगभग एक महीना ही हो चुका था, तथापि उनका मन चित्तौड़गढ़ के समीप बहती गंभीरी नदी में उलझा रहता था। वे खोए-खोए से दिखाई देते थे। पर्वतीय ढाल के पास स्थित मंदिर के सामने आम्रवृक्ष के चारों ओर फैले

चबूतरे पर कुँवर प्रताप विश्राम की मुद्रा में लेट गए। समीप ही चारण कवि पालथ चर्चा करने का कोई प्रसंग सोचने लगे। अंगरक्षकों के दल ने चबूतरे को चारों लिया और सैनिक कुछ दूरी पर खड़े हो गए।

"आप कुछ उदास दिखाई दे रहे हैं कुँवर ?"

"नहीं... ! ऐसी कोई बात नहीं।" कुँवर की निगाह कवि के चेहरे पर केन्द्रि हो गई।

"फिर भी... । मुझे ऐसा लगता है मानो आपको यह स्थान इतना अच्छा नहीं लग रहा है, जितना चित्तौड़गढ़ के नीचे की ओर स्थित आपका आवास।"

"यह तो स्वाभाविक है, कविराज। घर-बार छूट गया। अपने ही घर में हम पराए जैसे हो गए और हमारे निर्णय से बेचारे कई लोगों को कष्ट उठाना पड़ रहा है।"

"आपने तो ऐसा कोई निर्णय नहीं लिया, जिससे इन्हें कठिनाई हो। अलबत्ता चित्तौड़गढ़ पर युद्ध अवश्य थोप दिया गया। इसमें आपका सोच कहाँ गलत था ?"

"हमारे निर्णय का अर्थ केवल मेवाड़ के महाराणा के निर्णय से नहीं है। चाहे वे दिल्ली के सम्राट हों या और किसी राज्य के राजा-महाराजा, इनके निर्णयों का पाप तो आम आदमी को भुगतना होता है।"

"दिल्ली सम्राट की महत्त्वाकांक्षा ही इस प्रसंग में दोषी कही जाएगी। बाहर से आई जाति ने अपना वर्चस्व स्थापित करने की दिशा में दिग्विजय का जो अभियान आरम्भ किया है, इसी के कारण चित्तौड़गढ़ को घेरा जा रहा है।"

"महत्त्वाकांक्षा किसके मन में नहीं होती है, कविराज ? मेरे पूर्वजों में महाराणा कुंभा जी एवं मेरे दादाजी श्री सांगा जी ने जिन महत्त्वाकांक्षाओं को स्थापित किया था, वे ही तो हमारी विरासत हैं। अब बाहरी आगन्तुक स्थानीय सहायकों के सहयोग से हमारी स्थापित कीर्ति को ध्वस्त करने का प्रयास करने में संलग्न है। किन्तु ये महत्त्वाकांक्षाएँ गरीब आदमी को कितना प्रभावित करती हैं, इसे आपने पिछले पलायन के समय देखा ही है।"

"कुँवरजी, खेद तो इस बात का है कि हमारे मित्र एवं हमारे रक्त सम्बन्धी मुगल तलवार को हाथ में लेकर चित्तौड़गढ़ को घेर रहे हैं। जिनके हाथ कभी चित्तौड़गढ़ राज्य की रक्षार्थ उठते थे, वे ही हाथ अब विदेशियों के पक्ष में उठ रहे हैं।"

"इसके मूल में हमारी कुत्सित भावनाएँ काम कर रही हैं। पूज्य सांगाजी तो मुगल तोपों के सामने नहीं टिक पाए। रणथम्भौर के आसपास का हमारा प्रदेश हाथ से चला गया। गुजरात जैसे छोटे से शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़गढ़ को दबा दिया और हम आपसी फूट में एक दूसरे को दोषों का बखान करते रहे। मेवाड़ की रही-सही इज्जत बनवीर जैसे दासीपुत्र ने समाप्त कर दी। इसका दोष किसे दें ?"

"यही हमारी सबसे बड़ी कमजोरी रही है कि जब एक भाई पिटता है तो दूसरा खिलखिलाकर हँसता है।"

"यदि यह सच है तो जयपुर और जोधपुर के शासकों को क्यों दोष दिया जाए ? जयपुर राजघराने के आपसी सत्ता संघर्ष में ही तो मुगलों ने अपना पाँव वहाँ जमा दिया। अब इन बाहरी आक्रांताओं का लक्ष्य राजपूतों के शेष रहे मेवाड़ राज्य को उजाड़ करने का है। मेरी चिन्ता यह नहीं है कि यह सब कुछ क्यों या कैसे हो रहा है ? मेरा चित केवल दो बातों को लेकर ही खिन्न रहता है।"

"कौनसी दो बातें... ?"

"पहली तो यह कि हम युवा लोगों को चित्तौड़गढ़ पर लड़ने का अवसर नहीं दिया गया। मैंने युद्ध के निर्णय लिए जाने वाली संगोष्ठी में पूज्य राणाजी से चित्तौड़गढ़ में रहकर युद्ध करने की अनुमति चाही थी, किन्तु मेरे पक्ष का सभी ने विरोध किया।"

"यह तो स्वाभाविक ही था, कुँवर जी। राज्य का पतन किसी दुर्ग के पतन से नहीं होता है। शतरंज में वजीर का मर जाना दुःखद हो सकता है, किन्तु इससे बाजी हारी नहीं जाती है। बाजी तो तब हारी जाती है जब राजा पकड़ में आ जाए। अतः मेवाड़ की राज्यसभा ने महाराणा, महाराजकुँवर, सामंतों की महिलाओं एवं योद्धाओं के बच्चों को गोगुन्दा ले जाने का निर्णय देकर उचित ही किया था।"

"इसी क्रम में मैंने एक प्रार्थना और की थी। मैं चाहता था कि हम लोग चित्तौड़ के बाहर आकर केल्जर की पहाड़ियों से अपना युद्ध संचालन करते। उधर दुर्ग में भी हमारी सेनाएँ रहतीं और हम बाहर से भी लड़ते। इससे युद्ध की सीमा बढ़ जाती। इस प्रकार हम युद्ध क्षेत्र का विस्तार कर मुगलों को जंगलों में खींच लाते ताकि चित्तौड़ दुर्ग पर दबाव कम हो जाता। मैं स्वयं बाहर से छापामार लड़ाई लड़ना चाहता था, किन्तु मेरे इस सुझाव को भी नहीं माना गया।"

"संभव है छिप कर लड़ने की प्रथा को कायरता जैसा कृत्य करार दिया गया हो।"

"हो सकता है, उनका सोच ऐसा ही रहा हो। जो दूसरी पीड़ा कई बार मुझे उद्वेलित कर देती है वह बहुत ही मार्मिक है।"

"कौनसी पीड़ा ?"

"यही कि हम आम आदमी को क्या दे रहे हैं ? हम किसके राजा हैं ? क्या इन गरीबों, अपाहिजों और दुर्बलों के शासक हैं ? हम इनकी पीड़ाओं को सहलाने की अपेक्षा इनके दुःख दर्द बढ़ा रहे हैं। सल्तनत आगरा की हो या चित्तौड़गढ़ की, असली मार तो इन गरीबों पर ही पड़ती है। मेवाड़ का यह वर्ग हमें अन्न देता है, लड़ने के लिए सैनिक देता है और हाड़ मांस गलाकर खेतों में काम करता है। हम इनसे लेते हैं और देते क्या हैं ? युद्ध की काली छाया से हम इन्हें ढंकते हैं। इन्हें अपना खेत छोड़ने को विवश करते हैं। इन्हें लुटने हेतु खुला छोड़ देते हैं। यही अन्नदाता वर्ग सबसे अधिक शोषण का शिकार होता है। हम गर्व से स्वयं को अन्नदाता कहा जाने में अपने अहं को संतुष्ट होता हुआ देखते हैं किन्तु सच यह है कि हमारा अन्नदाता तो यह किसान है।"

"कुँवर जी, आपका सोच सत्य पर आधारित है।"

"कविराज, मेरी विवशता यह है कि मैं सिवाय मीठे शब्दों के इन्हें कुछ भी न दे सकता हूँ। इसे मैं स्वयं की कायरता समझता हूँ।"

"यह तो इस युग की ही विशेषता है कि सत्ता शीर्ष पर बैठा व्यक्ति आम आद की जेब काटकर अपना घर भरता है और स्वयं को सेवक कहता है। राज्य की आय में अपने लिए जागीरें निर्मित करता है और कहता है कि मैं जनता की भलाई के लिए का कर रहा हूँ।"

"मुझे स्वयं को कुँवरजी कहा जाना तक पसंद नहीं है। आदर तो उस आ आदमी का होना चाहिए जो हमारे राज्य का आधार है। मुझे ये ही पीड़ाएँ सताती रहती हैं मुझे इन लोगों के हित में कुछ करने-धरने का अधिकार नहीं है अतः सिवाय दर्द व महसूस करने के और कर ही क्या सकता हूँ।"

"किन्तु कुँवर जी ! आपने तो बहुत कुछ किया है। आपने अपने मि सामन्तपुत्रों एवं भील युवकों को साथ लेकर आम आदमी के पुनर्वास का प्रयास किया है आप सुबह से लेकर सायंकाल तक इन किसानों से ही तो बतियाते रहते हैं। कष्ट के दि में इन लोगों के साथ आपका उठना-बैठना क्या कम सेवा है।"

"किन्तु इन्हें जेब से क्या दे रहा हूँ ?"

"आपने अपनी निजी बचत का सब कुछ तो इन्हें दे दिया है। महारानी र जैवन्ती बाई जी ने भी अपने गहने बेचकर इन पीड़ितों की सेवा की है। यहाँ तक कि द वर्षीय राजकुमार अमरसिंह तक किसानों के बच्चों में घूम-घाम कर किसानों से अप आत्मीयता स्थापित कर रहे हैं। शासक और शासितों के बीच की यह आत्मीयता और का. है ? दिल्ली का शासक लूटने आया है और आप जो कुछ आपके पास है उसे बाँटकर खाने की भावना रखते हैं।"

"यह तो आपकी महानता है, कविराज ! मन तो यह चाहता है कि न केवल धन अपितु यह शरीर भी किसी गरीब के काम आ सके, उसकी पीड़ा को कम कर सके तो मानो मेरा कर्ज चुक जाएगा।"

"कैसा कर्ज ?"

"हमारी पीढ़ियों ने किसानों से लिया है। यदि मेरी चमड़ी की जूतियाँ बनाकर इन किसानों को पहनाई जा सकें और यदि इससे इनका भला होता हो तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। मेरी आत्मा पीड़ितों की पीड़ा देखकर हाहाकार कर उठती है। यही मेरा रोना है, कविवर।" प्रताप का गला रुंध सा गया।

सामने मंदिर की घंटी बज उठी। किसी भक्त ने गणपति जी की प्रतिमा के समक्ष अपनी पगड़ी उतार कर रखी और आँख बन्द कर प्रार्थना करने लगा था। प्रताप भी अपने स्थान से उठे। मंदिर में जाकर देव प्रतिमा को प्रणाम किया और घोड़े पर सवार हो गए। □

(6)

फागुन का महिना आ रहा था। सर्वत्र बसन्त के बाद की हवाएँ रूखे-सूखे पत्तों को उड़ाकर ले जाने लगी थीं। भगवान सूर्यनारायण की किरणों में गर्मी वढ़ गई थी। शीतकाल में समाधि धारण करने वाले मेंढ़कों और सर्पों ने अपने बिल छोड़कर बाहर की हवाखोरी आरम्भ कर दी थी। चित्तौड़गढ़ दुर्ग स्थित गौमुख कुंड पर स्नानार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी थी। पतझड़ के बाद पलाश के ठूंठ जैसे पेड़ों पर लाल-लाल फूल चमकने लग गए थे। आम्रवृक्षों पर आम्रफल अपना आकार ग्रहण कर रहे थे। सामान्य जन ने माघ मास के उत्तरार्द्ध की आमलिका एकादशी के बाद कंबलों को कंधों पर रखना आरम्भ कर दिया था। यह कहावत चरितार्थ हो उठी थी कि-"आधे माह आँवली, कांधे मेलो कामली", अर्थात् आधे माघ के बाद की आमलिका एकादशी के बाद कंबल को शरीर से उतार कर कंधे पर रख दिया जाता है।

25 फरवरी 1568 को प्रातःकालीन लालिमा चित्तौड़गढ़ वासियों ने पूर्व दिशा की ओर स्थित केल्जर पर्वतों पर फैलती हुई देखी। ठीक उसी समय गुलाब के पत्तों जैसी काया वाली सैंकड़ों क्षत्राणियों एवं स्वधर्म पर आत्माहुतियाँ देने में तत्पर महिलाओं ने अंतिम बार गोमुख कुंड में स्नान कर अपने पूर्वजों, देवी-देवताओं एवं पतियों, पिताओं और भाईयों का स्मरण किया। एक लालिमा पूर्वी क्षितिज पर फैली थी तो दूसरी लालिमा विजयस्तंभ के निकट के खुले आंगन में फैल गई। दुर्ग में बचे-खुचे घी और तेल को सजाई गई सूखी लकड़ियों पर डालकर आग लगा दी गई। मंत्रोच्चारण के बीच एक-एक स्त्री ने अपने सबसे पूज्य एवं प्रिय पुरुष के चरणों का स्पर्श कर अग्नि स्नान हेतु प्रवेश करना शुरू कर दिया। कठोर मन का पुरुष इस अवसर पर अपनी आँखों के सामने भभकती चिनगारियों के बीच अपनी प्रेयसियों को कोयला होता हुआ देख रहा था। एक-दो नहीं सैंकड़ों महिलाओं ने उस प्रातःकाल में स्वयं को अग्नि के समर्पित कर दिया। जिन मेंहदी लगे हाथों का स्पर्श सिरहन उत्पन्न करता था, वे हाथ अब आग के समर्पित थे। जिन मार्गों में सिंदूर की लालिमा के साथ माथे की रखड़ी सजाई जाती थी, उन मानवती महिलाओं के सिर अग्नि में नारियल की भाँति धधक उठे थे। जिन पैरों की थिरकन के साथ पेंजनियों की छम-छम सुनाई देती थी, जो पैर कभी मखमल से नीचे नहीं उतरे थे, वे देखते-देखते अंगारे बन गए थे। सौंदर्य,

शृंगार, मान-मनुहार, शब्दों के आरोह-अवरोह, भाव-भंगिमाएं, गतिमान लास्य और हास्य शांत हो गया था। पद्मिनी एवं कर्मावती के नेतृत्व में वर्षों पूर्व किए गए जौहर पुनरावृत्ति उस दिन सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही सम्पन्न हो गई। चित्तौड़गढ़ में आठ हजार सैनिकों एवं उनके सेनापतियों ने उस महाकाल की अग्नि में सभी को होते देखा था। जयमल, पत्ता, सांईदास एवं सैंकड़ों युद्धसेवियों ने अपने सामने अपने सर्वस्व के द्वारा सम्पन्न अग्निस्नान को होते हुए देखा था।

व्यक्ति किसके लिए जीवित रहता है ? संभवतया भाई, बहिन, पत्नी, माँ-बाप जैसे सम्बन्धों के बंधनों के कारण ही उसकी जीवनयात्रा के विविध आयाम दिखाई देते हैं। दुर्ग का प्रत्येक सैनिक उन बंधनों से मुक्त हो गया था। अब उसके पास बचा था उसका शरीर और उसके हाथ में थमी तलवार। सैनिकों ने सतियों की राख को अपने मस्तक पर चढ़ाया और केसरिया धारण कर लिया। अब उन्हें प्राणों का मोह नहीं था। जीवित रहने की किंचित मात्र भी आशा शेष नहीं थी। मरने की उद्यतता उनके अंग-अंग से प्रस्फुटित हो रही थी। सर्वनाश के बाद उनके जीवन में अब बचा ही क्या था ? उनके घर-बार, खेल-खलियान, हंसी-खुशी एवं राग-रंग सब कुछ स्वाहा हो गया था। धरती से पैदा हुआ हाड़-माँस का पुतला पुनः धरती में मिल जाने को आतुरता से प्रतीक्षा करने लगा।

पिछले छः मास से चित्तौड़गढ़ दुर्ग के चारों ओर फैले मैदानों में महत्त्वाकांक्षी युवक सम्राट अकबर चित्तौड़गढ़ जैसे बिंदुमात्र भूखण्ड को पराभूत करने के स्वप्न संजो रहा था। वह दिन रात दुर्ग की परिक्रमा कर सैनिकों में उत्साह जगाए जा रहा था। उसकी महानता ने दुर्ग से उठती लपटों को देखा। एक बार तो उठती हुई लपटों को देख उसके पैरों तले की धरती ही खिसक गई। मुगल सैनिकों ने समझ लिया कि आज का युद्ध निर्णायक होगा। एक साथ दुर्ग के समस्त द्वार खोल दिए गए। जयमल राठौड़, पत्ता सिसोदिया एवं कल्ला राठौड़ की तलवारें की गाज गाजी बनने के स्वप्न देखने वालों को चीरने लगी। एक-एक सैनिक रणचंडी की पूजा में स्वयं के मस्तकों की बलि दे रहा था। तोपों और बंदूकों की मार के आगे एक-एक कर सैनिक गिरने लगा। उनकी लाशों पर गुजरते हाथी पर बैठा एक व्यक्ति महान बनने की आतुरता में दुर्ग में प्रवेश कर रहा था। अब विजेता का स्वागत करने हेतु कुत्ते और शृगाल ही बचे थे। लाशों पर मंडराने वाली गिद्धों की टोलियाँ पता नहीं कहाँ-कहाँ से आकर उस महान विजेता के दर्शनार्थ जुट गई थी। बिना स्वामियों के रंभाती गायों का रुदन भी धीरे-धीरे अब रुक चुका था। चित्तौड़गढ़ दुर्ग पर जौहर का यह अभ्यास तीसरी बार घटित हो गया।

खबरों के पर नहीं होते हैं, वे तो वायु के झोंकों की भाँति उड़ती रहती है। खबरों की आँधी कुंभलगढ़ और गोगून्दा भी पहुँची। सम्पूर्ण मेवाड़ रुदन कर उठा। राजकुमार प्रताप महाराणा उदयसिंह, रानियों, सामंतों की स्त्रियों, बच्चों और आम की आँखें बरस पड़ीं। अब इस धरती पर कौन था जो उनके मृत परिजनों को पुनः

दिखा सकता था ? चारण कवि मंदिर की सीढ़ियों पर अकेला बैठकर रो रहा था। कुंवर प्रताप अपने मन में घुमड़ते प्रश्न का उत्तर खोजने में व्यस्त हो गया कि इस नरसंहार का जिम्मेदार कौन था ? महाराणा उदयसिंह मेवाड़ के उपजाऊ मैदानों को खोने के बाद बचे-खुचे पर्वतों की रक्षा को लेकर चिंतित था। अरावली का प्रत्येक शिखर उस दिन रोया था। हाहाकार की गूंज प्रत्येक पेड़ ने सुनी थी। रुदन का शंखनाद प्रत्येक उपत्यका से टकरा-टकरा कर प्रतिध्वनित हो रहा था। अपने कक्ष में बैठे और शून्य में ताकते प्रताप ने एक सेवक को भेजकर हकीम खाँ सूर, नाई और महापंडित को बुलवाया। कक्ष से बाहर आकर उसने आदेश दिया-

"खवास जी।"

"हुकुम करें, अन्नदाता !"

"आप अपनी जाति के सभी पुरुषों को कहें कि वे अपनी पेटियाँ लेकर तालाब पर पहुँचें।"

"क्या किसी की मृत्यु हुई है।"

"हाँ।"

"किसकी मृत्यु, कुंवर जी ?"

"मेरे पूज्य लोगों की। आप शीघ्र पहुँचे, मैं अपने साथियों के साथ पहुँच रहा हूँ। वहीं आपको सब कुछ बता दिया जाएगा।"

"पंडित जी। आप कोठारी जी से कहें कि तर्पण हेतु जो भी आवश्यक सामग्री अपेक्षित हों, लेकर तालाब पर पहुँचे। मैं भी पहुँच रहा हूँ।"

"किसके तर्पण करना चाहते हैं कुंवर जी ? यहाँ तो शहनाई बज रही है।"

"यह शहनाई मेवाड़ के महाराणा के राजप्रासाद के द्वार पर बज रही है।"

"तो फिर आप तर्पण किसका करेंगे। क्षमा करना कुंवर जी, आपके पिताश्री तो जीवित हैं।"

"मेरे असली स्वामी नहीं रहे पंडित जी।"

"कौन....?"

"चित्तौड़गढ़ में बसने वाले नागरिक। वे ही मेरे अन्नदाता थे। मेरे पूज्य थे। मेरे शरीर के अंग थे। बाहरी लुटेरों ने उनके प्राण ले लिए।"

"किन्तु यह काम तो उनके उत्तराधिकारी करेंगे। तर्पण में जो जलांजलि दी जाती है, उसमें तो उनके पिताश्री का नाम बोला जाता है।"

"यह मुझे पता है, पंडित जी। मैं एक मात्र व्यक्ति हूँ, जो उन तीस हजार नागरिकों और आठ हजार सैनिकों का उत्तराधिकारी हूँ। उन सभी के नाम तक मुझे ज्ञात नहीं हैं किन्तु वे अनाम लोग, वे अजान अन्नदाता, मुझे ही तो उत्तराधिकारी के रूप में छोड़ गए हैं। आप शास्त्रों को देखिए और ऐसा प्रयत्न कीजिए कि तर्पण, हवन एवं पिण्डादि क्रिया से उनकी भटकी आत्मा को तृप्ति मिले।"

हस्ताक्षर किए, इसका उन्हें भान तक नहीं था। इन समस्त व्याधियों, पीड़ाओं और वि
का शमन 19 जनवरी, 1572 के दिन हो गया। महाराणा उदयसिंह का शरीर यहीं
गया और उसका हंस उड़ गया।

प्रताप सामान्य जन की भाँति जीने का अभ्यस्त था। परम्परानुसार गो
उपस्थित सैनिकों एवं नागरिकों ने महाराणा की शवयात्रा में भाग लिया। प्रताप भी
बना शवयात्रा में अपने पिताश्री को कंधा दिए चलता रहा।

"देखो, बेचारे का पिता मर गया।" एक नागरिक ने दूसरे से कहा।

"अरे यह तो होना ही था।" दूसरे ने प्रतिक्रिया दी।

"किन्तु यहाँ तो परम्परा टूट रही है।"

"कैसी परम्परा ?"

"सदा से महाराणा का उत्तराधिकारी शवयात्रा में सम्मिलित नहीं हुआ करत

"क्यों...? अपने पिता की शवयात्रा में जाना क्या कोई गुनाह है ?"

"हाँ गुनाह है। महाराणा पद कभी भी रिक्त नहीं रहता है। पिता के म
महाराजकुमार को टीका निकालकर महाराणा घोषित कर दिया जाता है और वह
श्मशान में नहीं जाता है।"

"हाँ...। यह तो सच है किन्तु प्रताप तो अर्थी को कंधा देकर श्मशान च
रहा है।"

"होगा...। हमें क्या लेना देना है। राजाओं की बातें हैं, वे ही ज्यादा समझ
हैं।"

"नहीं...। इतना तो हम भी समझते हैं कि पाटवीपुत्र यहाँ तक नहीं आता है

नागरिकों में कानाफूसी शुरू हो गई। दो चार मनचलों ने सामन्तों से भी
आरम्भ कर दिया। स्वभावतः सामन्त शान्त हुआ करते थे, किन्तु इस नवीन तथ्य पर
करने को उनका मन भी आकुल हो उठा। उधर चिता को चंदन की लकड़ियों से स
गया। प्रताप ने वैदिक मंत्रोच्चारण की ध्वनि के बीच अपने पिताश्री को मुखाग्नि
महाराणा के हितैषी रो पड़े। प्रताप भी बड़ी कठिनाई से स्वयं पर नियंत्रण रख प
मुखाग्नि के बाद वह चुपचाप एक पेड़ की छाया में जाकर बैठ गया।

उधर नागरिकों ने सामन्तों को घेर लिया। परम्परानुसार महाराणा के स
चूण्डा के वंशज सलूम्बर के राव किशनदास चूण्डावत को अधिकार थे कि वह
राज्याज्ञाओं को जारी करता था। एक भद्रपुरुष ने उनसे पूछा–

"किशनदास जी, यह कैसा अन्याय हो रहा है। आपके रहते मेवाड़ की प
ध्वस्त हो रही हैं।"

"कैसी परम्परा ?" किशनदास ने अनभिज्ञ बनने का दिखावा किया।

"महाराजकुंवर प्रताप श्मशान क्यों आए ?" एक ने कहा।

"चहेती रानी धीरजकुंवर का पुत्र जगमाल यहाँ क्यों नहीं आया ?" दूसरे ने

इसके पूर्व कि राव किशनदास कुछ कहते एक भाटी सरदार ने कहा—

"आपको शायद यह जानकारी नहीं है कि स्वर्गीय महाराणा जी प्रताप के बजाए जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बना गए थे। इसलिए जगमाल तो अब महाराणा बन गए हैं।"

"आप कहाँ के सरदार हैं ?" एक नागरिक रोष में पूछ बैठा।

"जैसलमेर का हूँ, भाई।"

"इसीलिए मूर्खता की बातें कह गए।"

"कौनसी बात...?"

"आपको पता होना चाहिए कि महाराणा कभी स्वर्गीय नहीं होता है और... ।"

"और क्या... ?"

"महाराणाओं की आज्ञा को तब तक सही नहीं माना जाता है जब तक कि मेवाड़ की राज्य परिषद के सदस्य श्री किशनदास जी उसे स्वीकृति नहीं दें।" दूसरे नागरिक का क्रोध बढ़ गया था। किशनदास ने लोगों को शान्त रहने की प्रार्थना की किन्तु भीड़ मानने वाली नहीं थी।

कुछ लोगों ने एक दूसरे बड़े सामंत रावत सांगा को घेर कर सवाल पूछना शुरू कर दिया। कहा सुनी के कारण शोरगुल मच गया। उदयसिंह की मृत्यु का शोक, क्रोधाग्नि का रूप लेता जा रहा था। प्रताप से रहा नहीं गया वह भी पेड़ की छाँया छोड़ भीड़ की ओर बढ़ गया। लोगों ने पूछना शुरू कर दिया–

"अन्नदाता, आप श्मशान क्यों आए ?"

"आप शान्त रहें। मैं चाहता था कि पिताजी के शरीर को मुखाग्नि मैं ही दूँ।"

"आप महाराणा हैं। महाराणा जी के न पिता होते हैं न पुत्र। आपको तो महलों में ही रहना था।" एक नागरिक भीड़ में से चिल्लाया।

"जगमाल यहाँ क्यों नहीं आया ?" अन्य व्यक्ति बोल उठा।

"वह तो महलों में महाराणा बन कर बैठ गया है ?"

"रावत जी आप कुछ बोलें। आप यह बताएँ कि सत्य क्या है ?"

नागरिकों का आक्रोश बढ़ता जा रहा था। प्रताप हाथ जोड़े खड़ा था और मात्र यही कह रहा था–

"आप शान्त रहिए, शान्ति रखिए... ।"

किन्तु आम आदमी उत्तर चाहता था। ग्वालियर राज्य छिन जाने पर वहाँ के पूर्व शासक रामसिंह भी वहाँ थे। उन्होंने भी किशनदास जी से पूछा–

"राव जी ! यह क्या बखेड़ा है ? अकबर जैसा शत्रु सिर पर है और घर की यह घटना हमें किस ओर ले जाएगी ?"

किशनदास सोच में पड़ गया। जगमाल महाराणा बन गया, इसकी जानकारी उसको स्वयं को नहीं थी। इसी बीच प्रताप के मामा मानसिंह सोनगरा की आँखें भी लाल-लाल दिखाई देने लगी। उसने भी कह दिया–"क्या यही चूण्डावतों का न्याय है ? क्या भगवान एकलिंगनाथ के दीवाण के पद को लेकर चल रही रस्साकशी को आपका समर्थन प्राप्त है ?"

"नहीं ! इसमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं है । लगता है, इस षड़यंत्र का सम्बन्ध महाराणाजी के अंत:पुर मे है ।" किशनदास ने संक्षिप्त में उत्तर दिया ।

"यह तो समझ में आ रहा है, किन्तु आपका निर्णय क्या है ?" 'भांजगड़' के अधिकार तो केवल आपको ही प्राप्त हैं ।" मामा मानसिंह ने दुबारा पूछा ।

किशनदास इस समय भी मौन रहे । आम आदमी भी अब सलूम्बर के राव जी के पीछे पड़ गया । प्रताप ने आकर पुन: शान्त रहने की प्रार्थना की । प्रकरण गर्मा चुका था । उस महायात्रा में उपस्थित हजारों लोगों को इसकी जानकारी मिल चुकी थी ।

उसी तालाब के एक किनारे पर महारानी धीरजकुंवर का दूसरा पुत्र कुमार सगर लोगों को समझाने लगा-

"आप लोग शान्त रहें । ये राजकीय मामले हैं । आप इनके प्रपंच में नहीं पड़ें ।"

"कुमार, यह प्रकरण राजघराने का नहीं है । जो बात हक की है, वह यह है कि गद्दी के हकदार प्रतापसिंह जी हैं ।" एक युवक कह उठा ।

"पूज्य पिताजी की यही इच्छा थी कि मेरे बड़े भाई जगमाल जी ही महाराणा बनें। इस बात की तो लिखा पढ़ी भी हो गई है ।" सगर ने उत्तर दिया ।

"लिखा-पढ़ी क्या होती है, इसकी हमें जानकारी नहीं है । आप तो यह बतावें कि सलूम्बर के रावजी की इसमें सहमति है या नहीं ?" दूसरे नागरिक ने पूछा ।

"इन सामंतों का क्या है ? ये तो सत्ता के साथ चलते हैं । आज नहीं तो कल, ये लोग भी इस निर्णय को मान लेंगे ।" सगर भोलेपन में कह तो गया, किन्तु उसका यह उद्घोष नागरिकों में चर्चा का विषय बन गया । उधर दाह संस्कार समाप्त हुआ । सभी ने तालाब में स्नान किया । गीली धोतियों को सुखाया गया । धोतियों, गमछों अथवा ऊनी वस्त्रों से अपनी कमर को ढंक, गीले कपड़ों को कंधों पर डालकर लोगों ने राजमहल की राह पकड़ी । सबसे आगे प्रताप और सगर जैसे राजकुमार चल रहे थे । उनके साथ-साथ स्वजनों एवं नागरिकों का समूह चल दिया । परम्परानुसार पुरोहित जी के आवास पर शोक की जाजम बिछाई गई, क्योंकि रोना-धोना पुरोहित जी के घर पर ही होता आया है । पुरोहित जी ने भी एक-एक कर सभी को विदा दी ।

संध्या का समय नजराणें का समय होता था । सामंतों, नागरिकों एवं राजकुल के भाईयों से अपेक्षा की जाती है कि यदि वे राजधानी में हैं तो संध्या समय आम दरबार में उपस्थित होकर अपनी ओर से नए महाराणा को नजराणे पेश करते । आज का दरबार बड़ा ही गहमागहमी का था । मेवाड़ी पगड़ियों में सजा सँवरा दरबार बहुत ही भव्य दिखाई दे रहा था । एक-एक कर सामंतगण आने लगे और उनके लिए नियत स्थान पर बैठने लगे । महाराणा के सिंहासन पर जगमाल आसीन था । उसके सभी भाई ठीक सामने की पंक्ति में बैठे थे । समस्त लोग लगभग आ चुके थे । सबसे अंत में आने वालों में थे महाराजकुंवर प्रताप और सलूम्बर राव किशनदास जी । बिना किशनदास जी के सभा की कार्यवाही प्रारम्भ नहीं हो सकती थी, क्योंकि नजराणें का प्रथम अधिकार उन्हें ही प्राप्त था । ग्वालियर के राजा रामसिंह तंवर, देवगढ़ के रावत सांगा और किशनदास जी उस भव्य पांडाल के बीच में से चलते हुए मंच पर पहुँचे । जगमाल प्रसन्न था । प्रताप इन सामंतों के साथ-साथ चल रहे थे ।

किन्तु यकायक दूसरा ही दृश्य दिखाई देने लगा। सलूम्बर राव किशनदास एवं उसके साथ चढ़े सामंतों ने जगमाल के हाथ पकड़ लिए और विनम्रतापूर्वक कहा-"जगमाल जी आपका आसन इस गद्दी के सामने है। इस सिंहासन पर तो प्रतापसिंह जी का अधिकार है।"

क्षणभर में स्वप्न भंग हो गए। जगमाल के हितैषियों के हाथ यकायक तलवारों की मूठों पर चले गए, किन्तु उन्होंने पाया कि उनकी संख्या नगण्य थी। जगमाल से रहा नहीं गया। बड़े बेमन से वह उठा और सभा से बाहर चला गया। उसके सगे भाई सगर एवं अन्य हितैषी सामंतों की हिम्मत तक नहीं हुई कि वे उसके साथ उठ कर जाते। जगमाल यह सोचकर चला था कि उसके साथ कई लोग बाहर आ जाएँगे, किन्तु बाहर आने वालों में वह अकेला ही था।

उधर मंच पर किशनदास जी ने बाँह पकड़कर प्रतापसिंह को महाराणा के आसन पर बिठा दिया और झुक कर तीन बार प्रणाम निवेदन कर सर्वप्रथम अपनी ओर से नजराणा पेश कर दिया। आम नागरिकों में से एक चिल्लाया-

"भगवान एकलिंगनाथ की जय !"

"महाराणा प्रताप की ... जय !"

❐

(7)

यदि मेवाड़ की स्थिति की ओर हम अपना ध्यान लगाएँ तो पाएँगे कि इसका अधिकांश भाग पथरीला एवं पर्वतीय है। मुख्यतः राजस्थान के उदयपुर, चित्तौड़गढ़, राजसमन्द, भीलवाड़ा एवं मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले के भूभाग मेवाड़ के अन्तर्गत आते थे। किन्तु इन सीमाओं में कमी और वृद्धि होती रही। सत्ता में आने के समय गुहिल वंशी क्षत्रियों का एक छोटा सा राज्य नागह्द (नागदा) के आसपास स्थित था। यहीं एकलिंगनाथ का मंदिर स्थित है। इस वंश के पूर्वज बापारावल ने सर्वप्रथम चित्तौड़गढ़ पर अपना अधिकार जमाया था। इसके बाद मेवाड़ की श्री निरन्तर बढ़ती रही। महाराणा कुंभा के समय नर्मदा नदी मेवाड़ की सीमा बनाती थी। महाराणा सांगा के समय मेवाड़ की सीमा आगरा तक फैली हुई थी। रणथम्भौर, गागरोन, सिवाना, मण्डोर, माउन्टआबू, सिरोही, जालोर, कोटा, जैसलमेर, माण्डू, ईडर जैसे राज्यों में महाराणा सांगा के नाम का जयघोष गूंजा करता था। समय आने पर उक्त राज्यों के शासक सांगा की एक आवाज पर अपने दल बल के साथ युद्ध के मैदानों में एकत्रित होते थे।

किन्तु अब परिस्थितियाँ बदल गई थीं। उसी राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह के जब प्राण पखेरू उड़ गए, तब महाराणा प्रताप को विरासत में मिला था-एक उजड़ा हुआ मेवाड़। वह मेवाड़ जिसमें चित्तौड़गढ़ एवं माण्डलगढ़ के जिले नहीं थे। अजमेर से चित्तौड़गढ़ के बीच का समस्त मैदानी भाग एवं जहाजपुर का पर्वतीय भाग मुगलों के शासन के अन्तर्गत आ चुका था। परम्परा से साथ देने वाले बांसवाड़ा एवं डूंगरपुर के छोटे-छोटे राज्य अपनी भक्ति का प्रदर्शन मुगल दरबार में कर रहे थे। अब जो मेवाड़ प्रताप के हाथ आया था उसकी सीमा कुंभलगढ़ से सलूम्बर तक और गोड़वाड़ से लेकर देबारी के नाके तक थी। कुल मिलाकर लगभग साढ़े चार सौ किलोमीटर की परिधि वाला भूखण्ड ऐसा था, जहाँ महाराणा प्रताप के आदेशों का पालन किया जाता था।

जगमाल मेवाड़ छोड़कर चला गया। जाने को मात्र एक ही स्थान था, वह था-मुगलिया दरबार। अपने भाई प्रताप के स्थान पर स्वयं को महाराणा पद पर आसीन कराए जाने के स्वप्न जब बिखर गए तब उसके लिए मात्र यही एक विकल्प था, जो उसके अहं को पुष्ट कर सकता था। मुगलों की कृपा एवं कूटनीति के कारण उसे जहाजपुर का हाकिम बना दिया गया। मेवाड़ की आँख कहे जाने वाले उस भूभाग पर प्रताप के विरोधी भाई को बिठाकर मुगलों ने मानो एक स्थाई नासूर पैदा कर दिया था।

वर्ष 1568 में चित्तौड़गढ़ पर लड़ा जाने वाला महायुद्ध सर्वनाश कर चुका था। आठ हजार वीरों का बलिदान दिया जा चुका था। रक्तपिपासु चित्तौड़गढ़ की पथरीली पहाड़ी जिसे धरती का एक बिन्दु मात्र गिना जा सकता है, अब तक हजारों युवकों के रक्त से नहा चुकी थी। यहाँ का पत्थर-पत्थर भैरव और दुर्गा बन चुका था। रुण्ड मुण्डों की मालाओं के हारों को यह दुर्ग कई बार धारण कर चुका था। सतियों के अग्नि स्नान की घटना तीसरी बार घट चुकी थी। अब जो कुछ बचा था, वह था अनुभवों से शून्य रणबांकुरों का प्रदेश। सामंतों के बच्चों को अभी बड़ा होने में समय लगना शेष था। गोगुन्दा जैसी सुदूर राजधानी में लोगों को बसने में भी समय लग रहा था।

उधर मेवाड़ का मैदानी भाग उजड़ चुका था। अपने अपने सिर पर सामग्रियों की गांठों को लादे, आम नागरिक इतस्ततः पर्वतों में अपना सिर छिपाने की जुगाड़ बिठा रहे थे। गधों, घोड़ों और बैलगाड़ियों पर लदी सामग्रियों के साथ इन विस्थापितों को निर्जन वनों की ओर जाते देखे जाने के दृश्य सर्वत्र दिखाई देते थे।

वर्ष 1572 के अगस्त का महिना उतार पर था। मेवाड़ का श्रावण भरपूर वर्षा के लिए प्रसिद्ध है। चारों ओर नालों, नदियों एवं तालाबों में पानी छलकता हुआ अपनी छटा बिखेर रहा था। समस्त पर्वतीय भूमि वनों से आच्छादित थी। घने वनों के बीच-बीच में कहीं-कहीं कोई झोंपड़ी दिखाई देती थी। वर्षा के अन्तराल में यदाकदा कोई प्राणी चाहे वह कुत्ता हो या सिंह, गधा हो या दादुर अपनी उपस्थिति का आभास करा देता था। उस काल में लगभग पच्चीस-तीस घुड़सवारों ने मांडलगढ़ से प्रस्थान किया। घोड़ों को लोहे की

लेयों से आच्छादित किया हुआ था। उन पर बैठे घुड़सवार भी शिरस्त्राण एवं लोह ृंखलाओं से निर्मित आच्छादनों से स्वयं को ढाँप कर बैठे थे। इनके जाने की दिशा थी गोगून्दा। राज्याभिषेक के बाद गोगून्दा को राजधानी बनाकर महाराणा प्रताप का अधिकांश समय वहीं बीतता था। घुड़सवारों के दल के आगे आगे एक घुड़सवार सफेद झंडा लेकर चल रहा था।

अभी सुबह का समय ही था। सभी ने नमाज अदा की। खुदा को स्मरण कर आभार जताया कि इस अपरिचित देश में अब तक तो वे सही सलामत यहाँ तक पहुँच गए थे। असली खतरा अब आने वाला था। सभी अपने-अपने सामान के साथ घोड़ों पर आरूढ़ हुए। खुदा के नाम के साथ यात्रा आरम्भ की। कोई तीन-चार किलोमीटर चले होंगे कि सिंहाड़ के जंगलों का क्रम आरम्भ हो गया। यहाँ बनास नदी बड़े मगरे के पास घूमकर अपनी दिशा बदलती है। इसी मोड़ पर इन घुड़सवारों के आगे-आगे चल रहे एक अश्वारोही के कान के पास से एक पत्थर सनसनाता हुआ निकल गया। घोड़ा और सवार चमक उठे।

"क्या हुआ अशरफ ?" पीछे चल रहे सरदार ने पूछा।

"हुजूर, किसी ने गोफण से पत्थर फेंका है।"

"रुक जाओ और पत्थर के आने वाली दिशा में आवाज दो कि हम राणा से मिलने जा रहे हैं।" पुनः रोबीली आवाज गूँजी। अग्रगामी अश्वारोही रुक गया। वह चिल्लाया-

"जो भी हो सामने आओ। हम लड़ने नहीं आए हैं। हम राणा जी से मिलने आए हैं।"

आसपास कोई भी दिखाई नहीं दिया। घने पेड़ों और उनसे लिपटी लताओं के कारण दूर देख पाना भी कठिन था। केवल एक गाड़ी-गडार थी जिसके साथ ये लोग आगे बढ़ रहे थे, किन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। कुछ दूर अधनंगे धनुर्धर दिखाई दिए। पैरों में देशी जूतियाँ, कमर पर कसकर बाँधी गई धोती, सिर पर फेंटा, हाथों में धनुष और पीठ पीछे झूलते हुए तरकश। इन काले और बदसूरत लोगों में से एक चिल्ला कर बोला-

"आगे आने का हुकुम नहीं है। वहीं ठहर जाओ, नहीं तो मारे जाओगे।"

घुड़सवार पशोपेश में पड़ गए। इन जंगलियों का क्या भरोसा ? बंदूकें, तलवारें और भाले इनकी गोफणों से फेंके गए पत्थरों के समक्ष उन्हें बौने नजर आने लगे। काफिला रुक गया। सामने खड़े वनवासियों में से एक व्यक्ति दौड़ता हुआ इस दल के पास आया और पूछने लगा-

"तुम्हारे सरदार का नाम क्या है ?"

"जनाब जलाल खाँ कोर्ची।"

"किसके कहने पर यहाँ आए हो ?"

"बादशाह अकबर ने हमें राणाजी से बात करने भेजा है।"

वह वनवासी युवक पुनः अपने समूह में लौट गया। कुछ समय तक दोनों में मौन छाया रहा। इधर मुगल सैनिकों के समूह में अनिश्चय की भावना घर करने उनमें कानाफूसी आरम्भ हो गई।

"हुजूर ! इन जंगलियों से कैसे निपटा जाए"-एक ने पूछा।

"आप हुकुम दें तो इनको गोलियों से भून दिया जाए ?" दूसरा बोल उठा

"तुम कितने लोगों को उड़ा सकोगे ? ये लोग रक्तबीज हैं।" सरदार गुर्राय

"रक्तबीज के क्या माने हैं ?"

"इन हिन्दुओं की मान्यता है कि एक बार एक राक्षस को ऐसा वरदान मि कि यदि उसके रक्त की एक बूंद भी धरती पर पड़ती तो वहाँ उतना ही बलशाली राक्षस पैदा हो जाता। तुम एक भील को मारोगे, तो यहाँ सैंकड़ों आ जाएँगे। इनक किलकारी, इनके ढोल की एक ध्वनि अथवा सहायता की याचना का एक वाक्य भीलों को एकत्रित कर देगा। इसका नतीजा यह हो सकता है कि न तुम बचोगे न कोई नामलेवा।"

"तब इनसे कैसे निपटें... ?"

"तुम्हें निपटने की इतनी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उतावली करना ठी है। इन्होंने यहाँ ठहरने के लिए कहा है, इसलिए रुक जाना ही उचित है।" अपने अ आदेश मानकर सैनिक चुप हो गए। बढ़ते घोड़ों के कदम रुक गए। वल्गाएँ खींच लीं

लगभग आधे प्रहर तक वह दल वहीं रुका रहा। इसके पश्चात् एक क्षत्रिय युवक का घोड़ा दूर से आता हुआ दिखाई दिया। उसके साथ लगभग पचास घुड़सवारों का दल भी आ रहा था। आगत समूह का नेतृत्व करने वाला युवक कूदकर नीचे उतरा और भील युवक के संकेत पर वह मुगलों के सरदार के पास पहुँ सरदार ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"आपको मार्ग में कोई कठिनाई तो नहीं हुई ?" युवक ने पूछा।

"नहीं ! अल्लाह की मेहर से यहाँ तक हम आराम से पहुँच गए।" महाराणा जी कुशल तो हैं ?" जलाल खाँ ने पूछकर औपचारिकता का निर्वहन किया

"एकलिंगनाथ की कृपा से सब कुछ ठीक है। महाराणा जी का आदेश आपको गोगुन्दा तक पहुँचा आऊँ। आप यदि चलना चाहें तो हमारे सुरक्षाकर्मी आपक में तत्पर हैं।" युवक ने कहा।

"आपका नाम और ओहदा जानना चाहूँगा मित्र !"

"जब आपने मित्र कह दिया तो फिर क्या पूछा जाना शेष है, फिर भी मैं कि मैं यहाँ की सरकार का एक सामान्य सिपाही हूँ और मेरा ओहदा लोगों की सेवा है।"

"फिर भी आपका नाम तो होगा... ?"

"हाँ है । लोग मुझे अमरसिंह कहते हैं । हमारे पूज्य महाराणाजी के पुत्रों में से एक मैं भी हूँ ।"

"क्या आप ही इस देश के शासन के उत्तराधिकारी हैं ?"

"जी नहीं ! यह देश भगवान एकलिंगनाथ का है उन्हीं के नाम से मेरे पिताश्री यहाँ का कामकाज देखते हैं । मैं उन दीवाण जी का उत्तराधिकारी हो सकता हूँ, शासन का नहीं । शासन तो एकलिंग प्रभु का ही है ।"

"राजकुमार ! तुम्हारे उत्तर से हमें प्रसन्नता हुई । हम चाहते हैं कि आज संध्या तक गोगुन्दा पहुँचा जाए । आपने यहाँ आकर हमारा स्वागत किया, इस निमित्त आभार !"

दल चल पड़ा । जलाल खाँ कोर्ची की सतर्क आँखें बार-बार राजकुमार पर जमी थी । चौड़ी छाती, लंबे हाथ, सामान्य से अधिक लम्बाई, कसी हुई कद-काठी और आमंत्रण देते फैले हुए नेत्रयुगल । उसकी शारीरिक दृढ़ता देखते ही बनती थी । संध्या की नमाज भूताला के तालाब के पास पढ़ी गई । वहाँ से चले अश्वों ने अंधेरा होते होते गोगुन्दा में प्रवेश कर लिया ।

नगर के चारों ओर खुले मकान थे । विभिन्न जातियों ने अपने-अपने समूहों में मकान बना लिए थे । गत चार वर्षों में यहाँ राजप्रासाद के अलावा सामंतों की हवेलियाँ भी बन चुकी थीं । आगन्तुकों को राजकीय अतिथिशाला में ठहरा दिया गया । उन्हें बताया गया कि महाराणा प्रताप दो दिनों के पश्चात् ही राजधानी में पहुँचेंगे । अतः सिवाय विश्राम के जलाल खाँ के पास और कोई काम नहीं था ।

जलाल खां कोर्ची जिस गति से आया था, उसी गति से लौट गया । उसे प्रताप की ओर से छोटा सा जवाब दिया गया कि "अभी पिताश्री की मृत्यु की घटना को एक वर्ष की अवधि भी पूरी नहीं हुई है । अतः किसी शुभ समझौते के लिए यह समय उपयुक्त नहीं है ।" जवाब सुनकर सम्राट अकबर का माथा ठनका । उसने मानसिंह कछवाहा को बुलवाकर विचार विमर्श किया । शुभ समझौते के अर्थ को समझा गया । उसे लगा मानो प्रताप शरण में आने के लिए तैयार बैठा था, किन्तु लोक लाज के कारण वह कुछ समय और चाहता था ।

कहते हैं खबरों के पर लग जाते हैं । दूरियों के साथ-साथ खबरों का प्रकार बढ़ जाता है, घट जाता है, या बदल जाता है । कोर्ची की विफलता का संवाद सर्वत्र फैल गया । सामंतों ने आई बला को टालने में प्रताप की कूटनीति की प्रशंसा की, किन्तु प्रताप का चिन्तन किसी और ही दिशा की ओर था । उसने एक-एक कर सभी सामंतों, मेहमान राजाओं एवं परिवार के लोगों से चर्चा की ।

कुछ दिनों के बाद एक रात कुंभलगढ़ के प्रमुख द्वार के सुरक्षा अधिकारी ने रात्रि को महाराणा प्रताप के निजी कक्ष के द्वार पर दस्तक दी । महिला सुरक्षाकर्मियों ने झिझकते हुए प्रताप को जगाया । कारण पूछने पर बताया गया कि "दुर्ग के प्रमुख द्वार के बाहर पुरोहित गोपीनाथ अपने साथ आए चार विद्यार्थियों के साथ खड़े हैं । वे इसी समय आपसे मिलने की स्वीकृति की आशा कर रहे हैं ।"

स्वीकृति दे दी गई। निजी आवास से हटकर महाराणा एक ओर बने कक्ष में चले गए। कुछ समय बाद पुरोहित अपने चेलों के साथ सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ दिखाई दिया। पंडित गोपीनाथ अधेड़ उम्र का व्यक्ति था। घुटे हुए सिर पर बल खाती चुटिया रह रहकर दांये-बाएँ झूलती रहती थी। कक्ष में प्रवेश करते समय पंडित ने चारों चेलों को बाहर ही खड़े रहने का संकेत दे दिया।

"आइये पंडित जी ! इस असमय कष्ट करने का कोई गंभीर कारण रहा होगा।" प्रताप ने बिना किसी भूमिका के पूछ लिया।

"क्षमा करें दीवाण जी ! काम ही ऐसा आ पड़ा कि आपको जगाना पड़ा।"

"आप आज्ञा करें ?"

"बात यह है कि पिछले माह गुजरात के सिद्धपुर नगर में उत्पात हो गया था। वहाँ के पठानों ने बादशाह अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। पठानों ने हथियार उठा लिए। अकबर ने उस विद्रोह को दबाने का दायित्व सौंपा था मानसिंह कछवाहा को। मानसिंह ने आक्रमण कर विद्रोह को दबा दिया है और अब वह आगे बढ़ रहा है।"

"किस ओर ?"

"लगता है उसका रुख सर्वप्रथम ईडर की ओर होगा। इसके बाद उसकी दिशा डूंगरपुर होगी। यदि बादशाह का कथन सही है तो उसका आगे का कदम मेवाड़ भी हो सकता है।"

"बादशाह के कथन से आपका अभिप्राय ?"

"बादशाह ने सेना भेजते समय आदेश दिया था कि जो बादशाह की हकूमत को स्वीकार कर ले उसे बख्श दिया जाए और विरोध करे उसे जमीन में मिला दिया जाए।"

"आपके आकलन का आधार ?"

"यह गुप्तचरों से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण है।" पंडित की भारी भरकम आवाज के साथ ही प्रताप के चेहरे पर चिंता की लकीरें उभर आई। उसने कहा-

"इसका अर्थ है कि हमें युद्ध की तैयारी करनी चाहिए।"

"इसी निमित्त आपसे आदेश लेने आया हूँ।"

"कौनसे आदेश ?"

"मैं चाहता हूँ कि यदि आप अनुमति दें तो गुजरात के सिन्धी घोड़ों के व्यापारियों से चर्चा कर घोड़ों की खरीददारी की बात चलाई जाए। अश्वपाल एवं उसके कर्मचारियों के दल को उस ओर भेजा जाए।"

"ठीक है आप पाँच सौ अरबी घोड़ों को खरीदने की बात प्रधानमंत्री जी से कह दें और दल को भिजवा दें।"

"दूसरा निवेदन है कि समस्त छोटे-बड़े किलों में खाद्यान्न जमा करने हेतु गोड़वाड़, अहमदाबाद एवं सिरोही के बनजारों से सम्पर्क किया जाए ताकि समुचित व्यवस्थाएँ की जा सकें।"

"समय कम है। क्या व्यवस्था हो जाएगी ?"

"सब कुछ हो जाएगा, अन्नदाता। आपकी स्वीकृति आवश्यक है। कक्ष के बाहर ि अनुचर बैठे हैं। आप आज्ञा दें तो एक महिने में संपूर्ण व्यवस्था पूरी की जा सकती है।" ंडित ने चुटिया पर हाथ फिराते हुए कहा।

"पंडित जी ! मुझे आप जैसे शुभचिंतकों पर गर्व है। आपने मेवाड़ के हित में तना कुछ सोच लिया !"

"इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। यह सब प्रभु कृपा से ही संभव हुआ है।"

"ठीक है आप व्यवस्था करें। मानसिंह के चरणों पर निगाह रखें। उसकी तिविधियों की दैनिक सूचना गोगुन्दा भिजवा दें। मैं कल प्रातः यहाँ से निकल जाऊँगा। नसिंह के आने तक मैं उसकी वहीं प्रतीक्षा करूँगा।"

"अब आज्ञा लूँ।"

"अवश्य प्रस्थान करें। जाते-जाते प्रधानमंत्री जी, रामशाह जी तंवर, कृष्णदास जी ण्डावत, रावत सांगा, डोडिया भीम जैसे लोगों को सूचित कर दें कि वे जहाँ भी हों कल ध्या तक गोगुन्दा पहुँच जाएँ। आज रात को ही समाचार पहुँच जाएँ तो ठीक है।"

"आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन होगा। आप पर प्रभु कृपा बनी रहे। अब लता हूँ।"

बिना यह देखे कि महाराणा ने उसकी ओर ध्यान दिया या नहीं, पंडित अपनी ती में चल दिया। प्रताप एकटक सहसा प्रकट हुए तूफान को जाते हुए देखता रहा। नका मन भावों में डूब गया। एक अल्प वेतनभोगी अधिकारी एवं छोटी सी जमीन का ामी यह पंडित कितना देशभक्त है ? ये लोग न रात देखते हैं न दिन। दिन रात दौड़ते ना ही मानो इनकी नियति है। ऐसे लोगों पर मेवाड़ का शासन निर्भर है। मेवाड़ का आम दमी ऐसे कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मचारियों के बलबूते पर ही तो चैन की नींद सोता है।

कुंभलगढ़ के कुछ भवनों पर अपने सेवकों को भेजकर पंडित ने शिव मंदिर की ढ़ियों पर अपना अंगोछा बिछाया और खर्राटे भरने लगा। एक सेवक पास ही बैठा सारा श्य देखता रह गया। कुछ क्षणों पूर्व तक अत्यधिक व्यस्त रहने वाला मेवाड़ का यह गूढ़ रुप एकदम सो गया। लगभग आधी घड़ी के बाद कुछ लोग एकत्रित हुए। उन्हें सूचनाएँ कर वह गुप्तचर प्रमुख दुर्ग के बाहर खड़े अश्व पर आरूढ़ होकर अपने सहयोगियों के ाथ विलीन हो गया।

उधर मानसिंह ने गुजरात के विद्रोह को दबाकर ईडर होते हुए डूंगरपुर की ओर स्थान किया। मेवाड़ के दक्षिण-पश्चिम की ओर की पर्वतश्रेणियों को पार करता हुआ वह सैन्य डूंगरपुर राज्य में घुस गया। उसने अपना पड़ाव माही, सोम और जाखम नदियों के ंगम पर डाला। तीन नदियों की संगम स्थली के रूप में प्रसिद्ध यह स्थल वेणेश्वर महादेव े नाम से जाना जाता है। नदियों का बहाव कुछ इस प्रकार बन गया है कि एक छोटा सा भरा हुआ भू-भाग टापू जैसा दिखाई देता है। इस उभरे हुए भाग के शीर्ष पर भगवान शिव

का अति प्राचीन मंदिर स्थित है। मानसिंह संध्या के समय इस मंदिर में दर्शनार्थ गय आरती के बाद वह कुछ समय तक मंदिर की सीढ़ियों पर बैठकर पूर्णिमा की रात चमकते माही के प्रवाह को निहारने में व्यस्त हो गया।

इसी समय पता नहीं कहीं से एक संन्यासी सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ दिखाई दि गेरुए वस्त्रों से आवृत्त यह संन्यासी हाथ में दंड लिए हुए था। शिष्टाचारवश मानसिंह ने होकर संन्यासी को प्रणाम निवेदन किया।

"तेरा कल्याण हो, राजकुमार।" उसने शुभाशीष दिया और वहीं सीढ़ियों के के चबूतरे पर बैठ गया। उसने बैठते-बैठते मानसिंह को लक्ष्य कर कहा-"कुछ पसंद करोगे?"

"यदि आप कोई आज्ञा करना चाहें तो अवश्य ही सुनना चाहूँगा।" मानसिं संन्यासी के सामने बैठते हुए कहा।

"तुम्हें यदि मुझसे डर नहीं लगता हो तो, तुम्हारे सेवकों को दूर खड़े रहने आदेश दें ताकि तुम्हें कुछ स्पष्ट कह सकूं।" संन्यासी का कथन इतना प्रभावी था कि व नहीं कर सका। सेवकगण दूर हट गए। अब निश्चिन्त होकर उसने अपनी बात आरम्भ किया।

"संभवतया डूंगरपुर की ओर जाना चाहते हो।"

"ऐसा ही विचार है, स्वामी जी।"

"तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, राजकुमार। तुम शाही दरबार के श्रेष्ठ सामंत गिने जाओगे। सब कुछ ठीक-ठाक होते हुए भी तुम्हारा मन खिन्न क्यों रहता है?"

"ऐसा मुझे तो नहीं लगता है।"

"असत्य मत कहो, कुमार। जब भी तुम्हारी सेना किसी हिन्दू, पठान या जाति के स्थानीय राज्य पर हमला करती है, क्या तुम्हारा मन दुःखी नहीं होता है?"

"नहीं, महाराज! सैनिकों का मन तो सदा एड़ियों में दब कर रह जाता है। भी इतना कह सकता हूँ कि यदाकदा मन पर निराशा अवश्य छा जाती है।"

"ऐसा ही होता है। आप जैसे बलवान सेनानायकों का मन भी कसैला हो जात हजारों लोगों के सिर उड़ते हैं। किसान घर-बार छोड़कर भाग जाते हैं। सैनिक लूटपाट करते हैं और आपको मिलता है एक शब्द..., जिसे विजय कहा जाता है।"

"यह तो हमारी नियति है, स्वामी जी।"

"क्या युद्ध के पूर्व आप उस राजा को समझाते नहीं हो? अच्छा तो यह हो युद्ध को आप अंतिम हथियार के रूप में ही काम में लें।"

"ऐसा ही करते हैं। जब समझाने पर कोई नहीं मानें, तो फिर हथियार उठान एकमात्र लक्ष्य रह जाता है।"

"क्या मेवाड़ के साथ भी आप यही करेंगे?"

मानसिंह चुप रहा। उसे लगा जैसे संपूर्ण रहस्य संन्यासी की जिह्वा पर आ गया हो। सूझ ही नहीं रहा था कि वह क्या उत्तर दे। संन्यासी तत्काल बोल पड़ा-

"मेरा प्रश्न बड़ा बेतुका है। मैं तो यह जानना चाहता था कि जिस मेवाड़ अधिपति सेना में आपके पूर्वज एक सैनिक की भाँति खड़े रहे, उसके एक संकेत पर आपकी सेना नवा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध खड़ी हो गई, जिस चित्तौड़गढ़ को आप श्रद्धा से देखते ए, उसी के विरुद्ध आप जब खड़े हो गए तो आपके मन पर क्या बीती होगी ?"

"छोड़ें संन्यासी जी ! ये सब राजनीति की बातें हैं आप मुझे आज्ञा दें, अब चलना हूँगा।"

"आप अवश्य जाएँ, कुमार। वैसे भी हम संन्यासियों को ऐसे पचड़ों में नहीं ना चाहिए, फिर भी तुम्हें जाते-जाते इतना कहना चाहूँगा कि मेवाड़ जैसे श्रद्धा के केन्द्र के द्ध तलवार उठाने के पहले दस बार सोचना। इसी में तुम्हारा भला है। अब आप जाएँ। नको व्यस्तताओं को मैं समझ सकता हूँ। प्रभु आपको सद्बुद्धि दे।" संन्यासी स्वयं उठ और मंदिर में प्रवेश कर गया। मानसिंह सोचता रह गया।

उसे लगा जैसे वह संन्यासी नहीं था, किन्तु एक शाश्वत प्रश्न था, जिसका उत्तर ना कठिन था। यह सत्य था कि पिछले पचास साठ वर्षों के पूर्व उनके पूर्वजों के लिए ड़ ही सब कुछ था और अब उसी मेवाड़ से टकराने हेतु वह आगे बढ़ रहा था। मन का भाग मेवाड़ के प्रति श्रद्धा, विश्वास और गौरव से अभिभूत होता था तो दूसरा भाग बर महान की नजरों में उठने की महत्त्वाकांक्षा को संजोए रखता था। वह अंतर्द्वन्द्व की ति में आ गया। अपने मन और भविष्य की आशाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। एक ओर पूर्व इतिहास और दूसरी ओर था भविष्य का स्वप्न। यह संन्यासी पता नहीं यहाँ किस से आया और एक बोझ छोड़कर चला गया। वह बड़ी देर तक सोचता रहा।

अगले दिन डूंगरपुर पर आक्रमण हुआ और मानसिंह को उपहार में मिला एक द, जिसे विजय कहा जाता है। इस विजय के क्षणों में भी वह संन्यासी गूंजता रहा। वह कुछ कर रहा था, क्या वह जाति, धर्म और देश के लिए उचित था ? उसके कदम दियों से चली आई मान्यता एवं भावनाओं को कहीं कुचल तो नहीं रहे थे। कल ही तौड़गढ़ टूटा था। अब गोगुन्दा की बारी थी। क्या उसका काम छोटी-मोटी रियासतों को बर की झोली में डालना ही रह गया था ? क्या सम्राट की इच्छाओं के समक्ष उसकी यं की कोई इच्छा नहीं थी ? एक विदेशी शासक के हाथ में खिलौना बनकर रह जाना उचित है ? मानसिंह विजय प्राप्त करके भी प्रश्नों की सेना के समक्ष स्वयं को पराभूत मझने लगा था।

लगभग एक सप्ताह तक उसे डूंगरपुर रुकना पड़ा, ताकि युद्ध के बाद की वस्थाओं को दिशा दी जा सके। सप्ताह भर की शान्ति में उसके मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। ने अपनी समस्त सेना डूंगरपुर से बादशाह के पास भिजवादी और स्वयं ने अपने विश्वस्त निकों के छोटे से दल के साथ मेवाड़ की ओर कदम बढ़ा दिए।

मानसिंह के कदमों की ध्वनि वेणेश्वर के संन्यासी के पास भी पहुँच गई। तत्काल महाराणा जी को अपना संदेश भिजवाया। पंडित गोपीनाथ कई दिनों से अपने के साथ मानसिंह की सेना के साथ मंडरा रहे थे। पंडित गोपीनाथ का शरीर भगवा वस्त्र बहुत ही आकर्षक लगता था। संस्कृत भाषा की व्याकरण, कर्मकाण्ड एवं दर्शन पर अच्छा अधिकार था। वाक्पटुता एवं सामंती गुण, मेवाड़ के राजपुरोहित होने के कारण विरासत में मिले थे। महाराणा प्रताप का यह विश्वस्त गूढ़ पुरुष कई अभियानों की सूचनाएँ एकत्रित करने में सिद्धहस्त प्रमाणित हो चुका था।

मानसिंह के आगमन की सूचना मेवाड़ में पहुँच गई थी। यह सूचना भी पहुँच कि मानसिंह ने अपनी सेना के बल पर गुजरात, ईडर और डूंगरपुर को पराभूत कर दिया मेवाड़ के सामंतों ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। राजमहलों में महाराणा की अनौपचारिक विचार मंथन के समय कई लोगों ने कई फब्तियाँ कसीं।

"कल तक आमेर के राजा राणा सांगा के अधीन अपनी सेना लेकर आते थे मेवाड़ का सहयोग करते थे। वही राजा अकबर की गोद में बैठकर आज मानसिंह के माध्यम से हमें सीख देने आया है।" ग्वालियर के रामसिंह का मुँह पहले खुला।

"आमेर के शासकों को उस समय लज्जा नहीं आई जब अकबर की चित्तौड़गढ़ के बच्चों, औरतों और बूढ़ों की हत्या करवाई। यदि और कोई व्यक्ति शर्म से डूब मरता। उन मृतकों की आहें सुनने वाले राजा भगवंतदास और मानसिंह ने तो चापलूसी की हद कर दी। अब हमें उपदेश देने मानसिंह जी पधार रहे हैं" सलूम्बर राव कृष्णदास भी पीछे नहीं रहा।

"अपनी नाक कटवाकर अब वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के समस्त क्षत्रियों नाक कटवाई जाए। मुगलों की झोली में बैठकर, अपनी बेटियों के डोले मुगल हरम भेजकर अब रहे सहे क्षत्रियों को भी अकबर की दासता का मंत्र पढ़ाने के लिए मानसिंह का आगमन हो रहा है।" स्पष्ट एवं कटुक्तियाँ सुनाने में दक्ष डोडिया भीम भी चुप नहीं

"क्षत्रियों की आन-मान, लोक-लज्जा छोड़कर अब वह किस नाते से आ रहा है?" रावत सांगा भी चुप नहीं रहे।

"बाहर से आने वाले इन मुगलों ने पूरे हिन्दुस्तान की नींद हराम कर दी है। लोग शांतिपूर्वक रह रहे थे। इन्हीं लोगों ने आकर हमारी फूट में अपने पांव फंसाए एक-एक कर देशी राजा-महाराजाओं को अपनी ओर मिलाकर पूरे हिन्दुस्तान को का इंतजाम पक्का किया जा रहा है।" पूर्व दिल्लीपति शेरशाह सूर के संबंधी हकीम सूर ने भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"वह लड़ने के इरादे से नहीं आ रहा है, यह स्पष्ट है, क्योंकि उसने अपनी पहले से ही आगरा भिजवा दी है। सुना है अपने पाँच-पचास विश्वस्त सैनिकों के साथ महाराणा जी से बात करने आ रहा है।" पंडित गिरधारीदास भी बिना कहे नहीं रह सका

"पुरोहित जी, ये ही तो तरीके हैं इन शिकारी कुत्तों के। अकबर चाहता है कि शिकार को यदि कुत्तों से घेर कर सामने लाया जाए तो सारे ताम-झाम के साथ शिकार करने की क्या आवश्यकता है ? खुद शेर चलकर पिंजड़े में बैठ जाए, यही चाल चलने मानसिंह जी पधार रहे हैं।" डोडिया भीम का स्वर सर्वाधिक मुखर था।

"देखना यह है कि महाराणा जी को मानसिंह जी का आना कैसा लगता है ?" सलूम्बर राव कृष्णदास ने कहा।

"देखना क्या है ? अब क्या शेष रहा है उनमें ? अपनी इज्जत बेचकर राजपूतों की जाजम पर बैठने का अधिकार भी उन्होंने खो दिया है।" डोडिया भीम तनिक आवेश में आ गए थे।

इतने में पंडित गोपीनाथ उस बैठक में उपस्थित हुए। पंडित जी का पधारना ही अपने आप में एक विशेष कथन माना जाता था। दूर-दराज की खबरों के इस पिटारे का मुंह प्रायः बंद रहता था। दो चार मुँह लगे सामंतों ने पंडित जी को घेर कर पूछना शुरू कर दिया-

"मानसिंह जी क्यों आ रहे हैं, पंडित जी ?" एक ने पूछा।

"गुजरात, ईडर और डूंगरपुर के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करके उसका यहाँ आना क्या हमें आँख बताने का अर्थ रखता है ?" दूसरा सामंत पूछ बैठा।

"उसने मेवाड़ में सेना के साथ प्रवेश नहीं किया इसका क्या अर्थ है, पंडित जी ?" तीसरा सामंत पूछ बैठा।

किन्तु पंडित जी भी अरावली की चट्टानों जैसे कठोर और चिकने घड़े की तरह अप्रभावित रहने वाले स्वभाव के थे। वह मात्र हाथ जोड़कर मुस्कराता रहा। अपने उत्तरीय को इस कंधे से उस कंधे पर डालते हुए वह सभा कक्ष के सामने पहुँच गया। सभी का ध्यान पंडित के मुंह की ओर था। पंडित के एक-एक शब्द का कोई विशेष अर्थ होता था। उसने सभी को प्रणाम निवेदन कर, मात्र इतना सा कहा—

"दीवाण जी का आदेश है कि आप सभी उदयपुर पधारने की तैयारी करें। वहीं दरबार का आयोजन किया जाएगा।"

"दीवाण जी का आदेश है तो हम मानेंगे, किन्तु क्षत्रियों की इज्जत घटाने वाले मानसिंह के साथ बात करना भी मानों निम्न स्तर के आचरण के समान है।" क्रुद्ध डोडिया भीम अपनी मस्ती में कहे जा रहा था।

"डोडिया जी," इस बार सलूम्बर राव ने टोंका।

"हुकुम", डोडियाजी को लगा जैसे उसने कोई गलत बात कह दी हो, अतः चौंक उठा।

"राजकुमार मानसिंह क्षत्रिय के नाते आपसे मिलने नहीं आ रहे हैं न ही उनकी बेटी के विवाह का निमंत्रण देने वे पधार रहे हैं। आपसे भोजन करने का आग्रह भी वे नहीं कर रहे हैं।"

"तो फिर उनका मेवाड़ में आने का प्रयोजन....?" डोडिया भीम इस बार थोड़ा नरम हुआ।

''वे आ रहे हैं दिल्ली सम्राट के दूत बनकर। एक शक्तिशाली राजा का संदेश लेकर वे मेवाड़ पधार रहे हैं अतः दूत का सम्मान करने हेतु दरबार का आयोजन किया जा रहा है। ऐसी परम्परा कोई नई तो है नहीं। जब भी कोई दूत आता है, उसका परिचय भरे दरबार में किए जाने का रिवाज सदियों से चला आया है।'' सलूम्बर राव कृष्णदास जी ने पुनः समझाया।

जिस गति से डोडिया भीम ने उबाल खाया था, उसी गति से उनकी गर्मी शांत होने लगी थी। अनौपचारिक चर्चाएँ समाप्त हुईं। सभी को उदयपुर जाने की तैयारी करनी थी अतः एक-एक करके सभी सामंत एवं अधिकारी विदा लेकर चल दिए।

पंडित गोपीनाथ अगले दिन दरबार में नहीं गए। समस्त व्यवस्थाओं को पूरा कर पंडित जी आगरा की ओर प्रस्थान कर गए। उदयपुर के प्रासाद के बाहर कुंवर मानसिंह का स्वागत किया गया। प्रासाद के नाम पर दो कमरे और एक दालान था। वहीं पिछोला झील की पाल पर बैठक व्यवस्था की गई थी। महाराणा जी के आसन के ऊपर एक विशिष्ट स्थान पर भगवान एकलिंगनाथ का चित्र सज्जित था। चित्र के ठीक नीचे महाराणा का आसन था। आसन के दोनों ओर कुर्सियों पर विशिष्ठ सामंतगण बैठे थे। मेवाड़ी पगड़ियों, कमर पर बंधी तलवारों एवं स्तरानुसार स्वर्ण कांठलों से सजे क्षत्रियों की शोभा ही विचित्र थी। सभी सामंतों के आने के पश्चात् मानसिंह जी पधारे। उनके साथ आए अनुचरों में से चार अनुचर नंगी तलवारें लिए आगे पीछे चल रहे थे। मानसिंह जी ने भगवान एकलिंग नाथ के तैलचित्र को प्रणाम कर, सभी सामंतों को प्रणाम किया और स्वयं के लिए निर्धारित आसन पर अपना स्थान ग्रहण किया। कुछ ही पलों के पश्चात् महाराणा प्रताप के आगमन की घोषणा हुई। अपने भाइयों, प्रधानमंत्री, पंडित गिरधारी एवं पुत्र अमरसिंह के साथ महाराणा प्रताप सधे कदमों से सिंहासन की ओर बढ़े।

सिंहासन के पास जाकर उन्होंने जूते उतारे और प्रभु एकलिंगनाथ के चित्र की ओर हाथ जोड़ विनती की। तत्पश्चात् समस्त सामंतों और मानसिंह जी का अभिवादन किया। आपसी परिचय एवं भेंटों के आदान-प्रदान का सिलसिला आरम्भ हुआ। सभी सामंतों का एक-एक कर परिचय दिया गया। परिचय हेतु एक राव नियत था। यह व्यक्ति, प्रत्येक सामंत के पूर्वजों द्वारा मेवाड़ के हित में किए गए कार्यों का ब्यौरा देकर सामंत के नाम और ठिकाने का परिचय दे रहा था। जब भी किसी सामंत का नाम पुकारा जाता वह बड़ी शान से खड़ा होकर महाराणा जी एवं मानसिंह जी के आसन की ओर हाथ जोड़ता और स्वयं की विरुदावली पूरी होने तक खड़ा रहता। परिचय की परम्परा में ही पर्याप्त समय निकल गया। इसके पश्चात् महाराणा प्रताप द्वारा मानसिंह जी के सम्मान में छोटा सा भाषण दिया गया। इसके उत्तर में मानसिंह जी ने बादशाह अकबर की ओर से दोस्ती का हाथ बढ़ाए जाने की बात की। मानसिंह जी ने यह भी कहा कि बादशाह से दोस्ती करने के क्या-क्या अच्छे प्रभाव हो सकते थे। सभा के अंत में पंडित गिरधारी के शांतिपाठ के साथ दरबार समाप्त हुआ।

उसी रात अकबर के दो प्रस्तावों पर चर्चा हुई । पहला प्रस्ताव था कि महाराणा प-अकबर के दरबार में उपस्थिति दें तथा दूसरा प्रस्ताव था कि संबंधों को स्थाई बनाने दिशा में रक्त संबंध स्थिर किए जाएँ । इसके एवज में मुगल बादशाह की ओर से दिए ने वाले पद, उपहारों, जागीर एवं सम्मान की बड़ी-बड़ी सूचियाँ पढ़ी गईं । इस गोपनीय क में सलूम्बर राव, प्रधानमंत्री रामाजी, रावत सांगा एवं महाराणा प्रताप ने भाग लिया । कबर के प्रस्तावों को सुनकर महाराणा प्रताप ने कोई उत्तर नहीं दिया । अगले दिन मात्र ना सा कह दिया कि मैं अपने सलाहकारों के साथ चर्चा कर आपको निर्णय की सूचना दे ।

मानसिंह असमंजस में पड़ गया । उसे उम्मीद थी कि अकबर का नाम सुनकर ाड़ वालों की धरती खिसकेगी, प्रताप अकबर के दरबार में उपस्थित होने हेतु तैयार हो एगा और उसे इस बात का श्रेय मिल जाएगा कि बाबर के समय के सर्वप्रमुख क्षत्रिय वंश वंशज दरबार में लाया गया, किन्तु... यहाँ तो मौन था । प्रताप के चेहरे से सामंतों की ों में अथवा अधिकारियों के तेवर में कहीं भी यह पता नहीं लग सका कि महाराणा ाखिर चाहता क्या था ?

तीन दिन तक ऊहापोह की स्थिति बनी रही । इस बीच शिकार का कार्यक्रम योजित किया गया । सामंतों से उसका परिचय भी हो गया था । सलूम्बर राव कृष्णदास सिंह के साथ का साथ लगा रहा । मानसिंह के साथ आए मुगल सैनिकों के साथ भी त गोपीनाथ के चेले लगे रहे । इसी बीच महाराणा की ओर से मानसिंह के सम्मान में जाने वाले भोज की भी घोषणा कर दी गई । भोज का आयोजन उदयसागर की पाल पर ा गया ।

वर्तमान में उदयपुर से उदयसागर की पाल लगभग पन्द्रह किलोमीटर दूर है । यड़ नदी के पानी को बाँधकर एक सुरम्य झील का निर्माण महाराणा प्रताप के पिता यसिंह जी ने कराया था । सभी सामंतों को कहा गया कि वे उदयसागर पहुँचे । रसोइयों, करों, तंबू गाड़ने वाले कर्मचारियों, अधिकारियों एवं व्यवस्थापकों के दल के दल यसागर की पाल पर पहुँच गए । सभी प्रकार की तैयारियाँ चल रही थीं, किन्तु मानसिंह मन में यह अन्तर्द्वन्द्व मच रहा था कि आखिर प्रताप चाहता क्या था ? न कोई उत्तर, न ई संवाद, न और किसी प्रकार की शर्तें... बस केवल खाना-पीना, शिकार करना और मंतों से इधर उधर की चर्चा करना । उसे यह सूझ ही नहीं रहा था कि प्रताप का रुख कबर के प्रति क्या हो सकता था ?

उधर प्रताप अपने कक्ष में बैठा मानसिंह के साथ रह रहे सामंतों से उसकी प्रत्येक तिविधियों की सूक्ष्म जानकारी कर रहा था । कृष्णदास जी ने उसे बताया कि-"यह व्यक्ति त्यन्त महत्वाकांक्षी है । अपने स्वार्थ हेतु, अपने वर्चस्व को बढ़ाने हेतु मानसिंह किसी भी ीमा तक जा सकता है । कुल मिलाकर इस व्यक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता है ।"

पंडित गोपीनाथ की सूचना तो और भी कष्टदायी थी । उसने कहा था-"दीवाण ी, मानसिंह के व्यवहार को लेकर उसके साथ आए मुगल सैनिक अधिकारी खिन्न हैं । इन

सैनिकों का विचार था कि सीधे डूंगरपुर से सेना के साथ मेवाड़ में आते और मेवाड़
सबक सिखा कर चले जाते किन्तु मानसिंह जी ने सेना को आगरा भेजकर उचित कार्य
किया। उनमें से एक अधिकारी के विचार से ऐसा लगा मानो मानसिंह महाराणा जी से
गया है।"

पंडित गोपीनाथ के अनुसार मेवाड़ी सामंत दिनभर तो मानसिंह के
किन्तु उसके साथ भोजन करने में संकोच का अनुभव कर रहे थे। प्रताप को यह भी
गया कि मानसिंह जी के अकबर के साथ जो रक्त संबंध स्थिर हुए हैं, इस घटना को
डोडिया भीम खुले आम मानसिंह जी की आलोचना कर रहा था। प्रताप सब कुछ
रहा। अपनी ओर से उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

अगले दिन संध्या समय राजकीय भोज का आयोजन था। सभी सामंतगण
मानसिंह उदयसागर की पाल पर पहुँच गए। रसोई तैयार हो गई थी। पंक्तियाँ सज गई
बाजोटों पर चाँदी की थालियाँ जमा दी गई थीं। सभी लोग महाराणा प्रताप के आगम
प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीक्षा करते-करते कुछ ही क्षण बीते थे कि घुड़सवारों का एक
उदयपुर की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। इस दल का अगुआ था राजकुमार अमर
उसने तुरंत आकर मानसिंह को हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदन कर प्रार्थना की कि वे
प्रारम्भ करावें। सामंतगण बैठ चुके थे। भोजन परोसा जाने लगा। मानसिंह से आखि
नहीं गया। उसे लगा जैसे महाराणा उसे छल रहा था। उसने बादशाह अकबर के प्र
पर कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इतना ही नहीं, भोजन का निमंत्रण देकर वह
अब तक उपस्थित नहीं हुआ। उसने कुंवर अमरसिंह से पूछा-

"कुंवर जी, प्रतापसिंह जी कहाँ हैं ?"

"वे उदयपुर में ही हैं, महाराजकुंवर जी।" चौदह वर्षीय अमरसिंह ने विन
पूर्वक उत्तर दिया।

"क्या वे इस आयोजन में सम्मिलित नहीं हो रहे हैं ?"

"वे नहीं आ सकेंगे। सुबह से ही उनके पेट में दर्द हो रहा है। उन्हें बार
शौच भी जाना होता है अतः आपसे क्षमायाचना करने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।
बिराजें। मैं आपके साथ बैठूंगा।"

मानसिंह का माथा ठनका। प्रताप के मौन का अर्थ अब समझ में आया।
तपाक से उत्तर दिया-

"क्या महाराणा जी मेरे साथ भोजन करने में स्वयं को अपमानित अनुभव
हैं ?"

"ऐसी कोई बात नहीं है, कुंवर जी। उनके पुत्र और मेवाड़ के उत्तराधि
अमरसिंह जी आपकी सेवा में उपस्थित हैं ही। हम सभी आपके साथ बैठ ही रहे
सलूम्बर रावत ने उत्तर दिया।

"भोज का आयोजन महाराणा जी की ओर से था, कुंवर जी या सामंतों की ओर नहीं। मुझे लग रहा है कि महाराणा जी मुझसे परहेज कर रहे हैं।" मानसिंह की इस बात पर डोडिया भीम खिलखिला उठा। महाराणा जी के आज के व्यवहार को लेकर सबसे अधिक प्रसन्नता व्यक्त करने वाला डोडिया भीमसिंह ही था। कई और सामंतों के अधरों पर भी हँसी खेल गई। मानसिंह को लगा जैसे पूरा क्षत्रिय समाज उस पर हँस रहा था। कुछ सामंत कानाफूंसी भी कर रहे थे। उसका राजकीय अहं जाग्रत हो गया। अकबर जैसा शक्तिशाली शासक जिसकी पीठ पर हो, वह कैसे चुप रहता। वह खीजकर कह उठा-"कुंवर जी, मुझे पता है कि महाराणा जी के पेट में दर्द किस बात का है। अब मुझे यहाँ और प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। महाराणा जी से कहना कि मैं उनके पेट की दवा लेने आगरा जा रहा हूँ और बहुत शीघ्र लौट आऊँगा।" मानसिंह बिना किसी की चिन्ता किए जाने की ओर उद्यत हुए।

सर्वाधिक मुँहफट डोडिया भीम से भी नहीं रहा गया-"मानसिंह जी! आप यदि अपनी ताकत से मेवाड़ में आने की सोचते हों तो हम मेवाड़ से लगे आपके राज्य के मालपुरा परगने में आपसे मिलेंगे और यदि अपने फूफा अकबर के साथ आने का विचार हो तो जहाँ ईश्वर चाहेगा वहीं आपसे मिलेंगे।"

"क्या मतलब?" मानसिंह ने तमतमाकर पूछा।

"मतलब यह कि तेरे हाथी पर मैंने अपना घोड़ा नहीं चढ़ाया तो मेरा नाम भी डोडिया भीमसिंह नहीं। तू अपने फूंफा को भी साथ लेकर आना ताकि वह भी अरावली का पानी देख सके।" डोडिया भीम ने मूँछों पर ताव देते हुए कह दिया। कई क्षत्रिय डोडिया भीम के समर्थन में मुस्करा उठे।

क्रुद्ध सर्प फुंफकार उठा। अपने मन में व्याप्त क्रोध को दबाकर मानसिंह चल दिया। उसके साथ आए सैनिक भी भोजन की सजी थालियों को छोड़कर उठ गए। सभी लपक कर अपने-अपने घोड़ों पर बैठे और समूह चल दिया। घोड़ों के खुरों से उड़ी धूल दूर-दूर तक दिखाई दे रही थी।

इधर समस्त भोजन सामग्रियों को उदयसागर में फेंक दिया गया। मानसिंह जहाँ खड़ा था उस भूमि को खोदकर उस मिट्टी को भी पानी में फिंकवा दिया और सभी क्षत्रियों ने एक-एक कर उदयपुर का मार्ग पकड़ा। आहत सिंह चला गया। उसके क्रोध भरे बोल जो कुछ समय पूर्व गुंजारित हुए थे, अब भी प्रतिध्वनित हो रहे थे। डोडिया भीम का अट्टहास उदयसागर पाल के समीप की पहाड़ी से,मानो बार-बार टकराकर,लौट रहा था। डोडिया भीम ने मन ही मन कहा-"वाह रे, प्रताप, तूने तो आज क्षत्रियों की लाज ही रख ली। बेटियाँ देकर सुख खरीदने वाले क्षत्रिय का तूने आज किस कुशलता से तिरस्कार किया। धन्य है-तू।"

की उस विद्रूप हंसी को लहू की धाराओं से नहीं धोया तो मेरा वंश भी कछवाहा नहीं । मैं भी क्षत्रिय हूँ । हमने मुगलों को बेटी दी है । मुगलों की बेटी लेकर अपने वंश को तो नहीं बिगाड़ा है ? हमें किस कारण यह व्यक्ति हेय समझता है ? बादशाह सलामत को समस्त वृत्तांत सुनाऊँगा और आग्रह करूँगा कि यदि प्रताप के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की ही जानी हो तो उसका नेतृत्व उसे सौंपा जाए ताकि उन हंसने वाले तमाशबीनों को सबक सिखा सकूं ।''

इसी प्रकार के मनसूबे बाँधता हुआ वह मांडलगढ़ के मार्ग से अजमेर पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने पुष्कर की यात्रा की । तीर्थ के पंडे ने उसे स्नान कराया और दान-दक्षिणा का संकल्प कराया । पुष्कर आकर उसे लगा जैसे उसके क्रोध का कुछ शमन हुआ है । मन में छाई धुंध कुछ-कुछ हटने लगी थी । उसने अपनी धोती और उत्तरीय को बदल कर सीढ़ियाँ चढ़ना आरम्भ किया । अभी दो-चार सीढ़ियाँ चढ़ा ही था कि सामने से उतरते संन्यासी की खड़ाऊ की खट्-खट् से उसका ध्यान बंट गया । उसने संन्यासी जी को पहचान लिया । वह कह उठा-''स्वामी जी, प्रणाम ।''

स्वामी जी भी यकायक रुक गए । उनका दाहिना हाथ शुभाशीष देने की मुद्रा में उठ गया ।

''आपको बेणेश्वर तीर्थ पर देखा था और आज आप यहाँ ?'' मानसिंह ने पूछा ।

''हाँ, राजकुमार ! हम जोगियों का क्या ठिकाना ? अब आप सुनाओ । मेवाड़ वालों के साथ क्या किया ? उन्हें युद्ध में परास्त किया या समझा-बुझाकर ठीक किया ?''

मानसिंह को आशा नहीं थी कि यह संन्यासी ऐसा सीधा और चुभता हुआ प्रश्न पूछ लेगा । अब इसका क्या उत्तर दिया जाए ? वह कुछ क्षण मौन रहा ।

''शायद यहाँ उत्तर देने में आपको कठिनाई अनुभव हो रही है । आइये इस छोटे से मंदिर के पास बैठ जाते हैं । पता नहीं क्यों, आपको देखकर लगता है कि इस देश में तुम्हारे हाथों से बहुत कुछ होना है । समय हो तो बैठ लें, पता नहीं इस जन्म में फिर से मिलना हो या नहीं हो ।''

बिना यह देखे कि मानसिंह पर उसके कथन की क्या प्रतिक्रिया हुई है, संन्यासी मंदिर की ओर चल दिया ।

इधर मानसिंह भी खिंचता चला गया । उसके अंग प्रत्यंग में छाई महत्वाकांक्षा को यह संन्यासी अपनी गरिमामय वाणी से हवा दे चुका था । अब सिवाय संन्यासी के भाषण को सुनने के उसके पास कुछ भी शेष नहीं था । उसने अपने परिकरों को इधर-उधर हटने को कह दिया और स्वयं मंदिर के बाहर की छाया में संन्यासी जी के सामने शिष्य की भांति बैठ गया ।

संन्यासी भी चुप नहीं रहा । उसने पुनः कुरेदा-

''राजकुमार ?''

''जी महाराज !''

''मैंने आपको मेवाड़ के विषय में कुछ पूछा था ?''

"हाँ महाराज । आपकी सलाह के अनुसार मैंने उन्हें समझाया किन्तु उन लोगों ने मेरा अपमान किया । मेरे साथ बैठकर भोजन करने में भी उन्हें कष्ट हुआ ।"

"इसका अर्थ है कि मेवाड़ विपत्तियों को आमंत्रण दे चुका है ।"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है," मानसिंह को मानो संन्यासी के शब्दों में स्वयं विचार प्रकट होते दिखाई दिए ।

"फिर भी एक सलाह देना चाहूँगा । बिना माँगी सलाह है, बुरा लगे तो स्वीकारना मत ।"

"आप आदेश करें ।"

"आप क्षत्रियों में से वे प्रमुख व्यक्ति हैं जिनके स्वर मुगल साम्राज्य में भी मुख होते हैं । आप इसी धरती के हैं और मुगल लोग बाहरी धरती के । इस देश के क्षत्रि आपके भी संबंध हैं और मुगलों की तुलना में अधिक स्पष्ट संबंध हैं । आपको क्षत्रि आप ऐसे प्रयासों से बचने का यत्न करें, जहाँ देशी राजाओं के विरुद्ध आपको नियो किया जाए । हो सकता है मुगल नीति कांटे से कांटे को निकालने की हो, किन्तु आप को कांटे के स्थान पर रखे जाने से बचें यह मेरा आग्रह रहेगा ।"

"क्यों... ? देशी राजे-महाराजे मुझे अपमानित करते रहें और मैं मूक बन सहता रहूँ ? क्या आप यह राय दे रहे हैं कि मैं उनसे बदला नहीं लूँ ।"

"मैंने नीति की बात कही है । यह स्मरण रखना कि प्रताप, सांगा का पोता तुम्हारे पूर्वज सांगा को अपना पूज्य मानते आए हैं ।"

"इस तथ्य को स्वीकारते हुए भी मेरा मन अपमान की अग्नि में जल रहा है ।"

"अपमान, क्या महाराणा ने किया था ?"

"नहीं... ! वे तो आए ही नहीं । उनका न आना भी तो अपमान की श्रेणी में गिना जाएगा । उनके सामंतों के वे कथन भी तो उन्हीं के कथन कहे जाएँगे ।"

"प्रताप, ऐसा नहीं है ।"

"क्या आप उन्हें जानते हैं ?" मानसिंह के प्रश्न पर संन्यासी चौंक गया ।

"उससे भी मिला हूँ । इस देश के निवासियों के लिए भी उनके मन में सद्‌ है । वे तो आपके प्रति भी अच्छे भाव ही रखते हैं ।"

"आपको कैसे पता है कि उनके भाव हमारे प्रति आदर के हैं ?"

"उसने एक बार मुझे कहा था कि इस देश के हिन्दू नरेश विवशता के का मुगलों से संबंध रख रहे हैं । आज यदि आपसी फूट की विवशता उनके सामने नहीं हो तो एक दिन भी अकबर के दरबार में रहना स्वीकार नहीं करेंगे ।"

"आप सच कह रहे हैं, संन्यासी जी ?"

"संन्यासी होकर क्या मैं आपको झूठ-मूठ ही कहूँगा ? वे तो अब भी चाहते कि हिन्दू नरेश मिलकर अपना एक संगठन बना लें ताकि क्षत्रियों की शक्ति बढ़ सके ।"

"यह तो सर्वथा नया विचार है । क्या ऐसा किया जाना संभव होगा ?"

"प्रताप ने तो एक बार यह भी कहा था कि क्षत्रियों की भांति आम आदमी को भी शिक्षित कर अपने पैरों पर खड़ा किया जाए। आज की प्रजा को जब राजा पर अवलंबित होता हुआ अनुभव करते हैं तो उनके मन में कष्ट होता है। वे तो चाहते हैं कि यदि राजा भी अन्याय करे तो प्रजा उसके विरुद्ध खड़ी हो जाए।"

"ये विचार तो पहली बार सुन रहा हूँ। यदि ऐसा ही उनका सोच है तो वास्तव में प्रतापसिंह अद्वितीय है।"

"किन्तु उन्हीं के एक भाई के विचार दूसरी किस्म के हैं।"

"कौन भाई....?"

"उनका भाई शक्तिसिंह।"

"अरे वही तो नहीं जो चार वर्ष पूर्व धौलपुर से भाग गया था? बादशाह उस पर बहुत खफा हुए थे। उसके क्या विचार हैं?"

"वह चाहता है कि आप बादशाह से कहकर उसके अपराध को क्षमा करा दें और उसे बादशाह की सेवा में पुनः नियोजित कर दें।"

"वे हैं कहाँ?"

"यहीं पुष्कर में। वे आपसे मिल लेंगे। मैं उनको संकेत कर दूँगा।"

"अब आज्ञा लूँ।"

"ठीक है आप जाएँ। आप जैसे व्यस्त व्यक्ति को रोके रखना भी तो उचित नहीं है।"

आपसी अभिवादन के बाद पुष्कर स्नान की प्रक्रिया समाप्त हुई। कुछ देर तक वहीं बैठकर संन्यासी ने आँख बंद कर ध्यान किया। ध्यान के बाद संन्यासी स्वयं को हल्का अनुभव कर रहा था। कुंभलगढ़, गोगुन्दा, डूंगरपुर और पुष्कर के बीच फैले शिष्यों का यह एकमात्र गुरु था। इसके शिष्यों में हिंजड़े, पंडित, नाई, मोची, कलाल और वेश्याएँ हुआ करती थीं। मेवाड़ के पुरोहित के रूप में विख्यात पंडित गोपीनाथ को संन्यासी वेश बहुत ही प्रिय था। रात-दिन की भागदौड़ में जीवन का आधा भाग यों ही बीत गया था। वह धीरे-धीरे पुष्कर सरोवर के घाट की सीढ़ियाँ उतरने लगा।

शक्तिसिंह मानसिंह से मिल गया। उसने अपने अपराध के लिए मानसिंह से क्षमा याचना की। मानसिंह भी आखिर पिघल गया। आगरा जाते समय उसने शक्तिसिंह को अपने साथ हाथी पर बिठा दिया। पुष्कर से चलने के बाद अगला विश्रामस्थल किशनगढ़ के पास वाले जोगी तालाब पर था। इस बीच की दूरी को हाथी पर बैठकर तय करते समय मानसिंह ने कहा-"भाई शक्तिसिंह जी, आपका भाई राणा भले ही बन गया हो, है तो अड़ियल ही।"

शक्तिसिंह ने कहा-"आप यह सब कुछ किस आधार पर कह रहे हैं?"

"अच्छा...? आपको शायद पता नहीं है कि उन्होंने मेरा अपमान किया है।"

"अपमान करने जैसा उनका स्वभाव तो नहीं है।"

"शक्तिसिंह जी, अपमान तो हो चुका है मेरे सेवकों के समक्ष मुझे उन लोगों ने अपमानित किया। खैर, छोड़ों इन चर्चाओं को। अब आप बताओ कि क्या आप मुझसे घृ करते हो ?"

"क्यों .. ? घृणा क्यों करूँगा ?"

"यही कि हमारे जैसे कई क्षत्रियों ने अपनी बेटियाँ मुगलों को दी हैं। शायद उ उज्जड़ लोगों की तरह आप भी मानते हो कि हम लोग द्वितीय श्रेणी के क्षत्रिय हो गए हैं।"

"नहीं... । आपका यह कदम, आम प्रजा पर कहर ढाए जाने की स्थितियों से बचाने के लिए उठाया गया है। संभव है आप लोगों की और कोई विवशता रही होगी अन्यथा कौन अपनी बेटियों को विधर्मियों को देता है ?"

"बात यह नहीं है, शक्तिसिंह जी। हम देशी नरेशों का यही तो एक कष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अकेला मानता है। समय पर कोई उसका साथ देगा, ऐसा मान मूर्खता की बात समझी जाती है। हम लोगों में फूट है। दूसरे की दरार से हम अप रोटियाँ सेंकना जानते हैं। इन्हीं कष्टों से तंग आकर हमें मुगलों से समझौता करना पड़ा।"

"फिर भी आप यह तो मानेंगे कि मुगल विदेशी हैं ?"

"यह सच है। जो भी समाज कम संख्या में होता है, वह संगठित रहता है। य ऐसा समाज विदेशी धरती पर हो तो और अधिक संगठित रहेगा। उनके हित संगठित र पर ही सध सकते हैं। यही कारण है कि विदेशों से आने वाला प्रत्येक समूह यहाँ आ अपना वर्चस्व जमा लेता है और हम देशी लोग आपस के अहं में ही अपने कर्तव्य इतिश्री समझ लेते हैं।"

"क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि स्थानीय नरेश कुछ मूलभूत आधारों को ले एक हो जाएँ और विदेशी शक्तियों को उखाड़ फेंके।"

"हमारे और आपके भाई प्रताप के बीच इसी बात को लेकर मतभेद हैं। वे यही चाहते हैं कि सभी नरेश मिल जाएँ। यह बात उन्होंने मुझसे कही भी थी। नरेशों एक संगठन बन जाए, यह भी वे चाहते हैं किन्तु यह संगठन कैसे बने, इस पर मतभेद है इस बिन्दु पर स्पष्ट नहीं हैं। अकबर जैसी शक्ति से टकराना असंभव कार्य है अतः टकरा की अपेक्षा समझौते को आधार बनाकर हम अपना वर्चस्व बढ़ाएँ तो अधिक उपयुक्त होगा मानसिंह के इस कथन पर शक्तिसिंह कुछ क्षण मौन रहा। उसका मन कह रहा था कि अभी मानसिंह को कह दे कि उसका सोच गलत है, किन्तु वह गले तक आई बात अन्दर ही अन्दर निगल गया।

मानसिंह ने पूछा-"क्या हुआ शक्तिसिंह जी ? आप तो चुप हो गए ?"

शक्तिसिंह तुरंत संभल गया। वह कहने लगा-"मानसिंह जी आप रहते हैं अ के दरबार में। नीतियों को समझना, उनका विश्लेषण करना और उन्हें क्रियान्विति सीढ़ियों तक ले जाना आपके बलबूते की ही बात है। हमारी स्थिति तो विस्थापितों जैसी कल तक चित्तौड़गढ़ हमारा था, आज हम वहाँ से हटा दिए गए हैं, हमें जंगलों की श लेनी पड़ी है। क्या पता अब हमें जंगलों से भी भगा दिया जाए।"

"इसीलिए तो मैं आपके भाई प्रतापसिंह जी को समझाने गया था, कि वे अकबर के दरबार में आ जाएँ। न केवल जंगल अपितु खोया हुआ चितौड़गढ़ भी उनका होगा।" मानसिंह के विचारों को सुनकर शक्तिसिंह ने तत्काल पूछा–

"आपके विचार सुनकर महाराणा जी ने क्या कहा ?"

"वे कहने लगे कि सुझावों पर विचार करेंगे। मेरे साथ प्रेमपूर्वक चर्चा करते रहे। इसके बाद सामंतों के साथ शिकार का आयोजन किया गया और अन्त में भोज के समय वे स्वयं उपस्थित नहीं हुए। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आखिर वे चाहते क्या हैं ?"

"यह तो मुझे भी ज्ञात नहीं है। महाराणाजी की चुप्पी ही सबसे बड़ा रहस्य है। मुझसे भी वे नाराज हैं, इसीलिए हमारे लिए हमारे ही वतन में कोई भी स्थान नहीं है।"

"आप इसकी चिन्ता नहीं करें। आप शूरवीर हैं। आप जैसे योग्य व्यक्ति को देखकर बादशाह अकबर को प्रसन्न ही होना चाहिए। वे आपसे किसी कारण से नाराजगी व्यक्त भी करें तो आप सहन कर लें। इस पर भी वे आपकी सेवाएँ नहीं चाहें तो आप चिंतित नहीं हों। आमेर रियासत को आप अपना वतन ही समझें।"

"आपकी कृपा के कारण ही आपके पास आया हूँ। मुगल दरबार में आए सभी क्षत्रियों को आपसे ही आशा है।" शक्तिसिंह का कथन पूरा भी नहीं हुआ था कि सघन वनों से आवृत्त जोगी तालाब दिखाई देने लगा।

□

(9)

उस युग का सबसे शक्तिशाली सम्राट था-अकबर। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर का यह पौत्र राजपूतों से सम्बन्ध बढ़ा रहा था। वह समझ चुका था कि देशी क्षत्रियों की आपसी फूट ही उसके साम्राज्य का आधार बन सकता था। इस नीति के कारण ही उसने आमेर रियासत से संबंध बढ़ाकर राजपूतों के वतन की मानो कुंजी पर अपना हाथ रख दिया था। मानसिंह आमेर रियासत का महाराजकुंवर था। उसे ही यह अधिकार दिया गया था कि वह मेवाड़ के राणा को पटाकर दरबार में खड़ा करे। मानसिंह ने आगरा पहुँचने की खबर अकबर के दरबार में पहुँचवा दी। चतुर अकबर ने लवाजमा भेजकर मानसिंह की अगवानी कराई। लोगों ने देखा कि मेवाड़ी पगड़ी बाँधे एक युवक मानसिंह के साथ था। इस खबर की जानकारी आगरा के प्रत्येक गली-कूचे तक पहुँच गई कि मानसिंह महाराणा प्रताप को साथ लेकर अकबर के दरबार में उपस्थित हो गए हैं।

अकबर को इन खबरों पर आश्चर्य हुआ । वह सोच ही नहीं सकता था कि महाराणा सांगा का पौत्र उसकी राजधानी पहुँच रहा था । जब मानसिंह को साथ आने वाले व्यक्ति के बारे में अकबर के निजी-दूत ने पूछा, तब जाकर सत्य उजागर हुआ । दूत के माध्यम से मानसिंह को कहा गया कि वह औपचारिकताएँ पूरी कर तत्काल बादशाह के मंत्रणा कक्ष में पहुँचे । बादशाह सलामत मानसिंह के मुँह से सब कुछ सुनने को आतुर थे।

उस समय के प्रचलित नियमानुसार मानसिंह ने तीन बार झुककर आदाब अ किया और कक्ष में घुस गया । सामने के मखमली आस्तरण के सुखासन पर बादशाह बैठे और उसके सामने बैठा था आमेर का महाराजकुमार मानसिंह । अकबर ने ही सर्वप्र अपना मुँह खोला-

"आपको यात्रा में कोई कठिनाई तो नहीं आई ?"

"आपकी कृपा और भगवान के आशीर्वाद से कहीं भी कोई विघ्न उपस्थित हुआ ।"

"गुजरात की क्या स्थिति है ?"

"अहमदाबाद के आसपास के पठानों के विद्रोह को दबा दिया गया । समझाया गया किन्तु जब आवश्यक हो गया, तो सैनिक कार्यवाही करके मामले को द गया ।"

"और ईडर का क्या हुआ ?"

"ईडर महाराणा प्रताप का ससुराल है अतः उस पर सीधी सैनिक कार्य करके वश में किया गया । उसने माफीनामा लिख दिया है । वह आपकी शर्तों पर अ करने पर राजी भी हो गया है ।"

"उसे कहते कि वह अपने दामाद महाराणा प्रताप को समझाता ?"

"उसे कहा था, हुजूर ! उसे प्रलोभन भी दिया गया कि यदि वह समझा बुझ अपने दामाद को आपके दरबार में खड़ा कर दे तो उसे बड़ी जागीर दी जाएगी । आगर दरबार में उसकी इज्जत भी बढ़ा दी जाएगी ।"

"इस पर उसका क्या रुख था ?"

"उसने सकारात्मक उत्तर ही दिया, किन्तु जो कुछ किया जाना है, वह आगे बात है, अतः कुछ कहा नहीं जा सकता कि उसका प्रताप पर कितना प्रभाव है । फिर हमें आशा करनी चाहिए ।"

"डूँगरपुर के समाचार मुझे मिल चुके हैं । अब यह बताओ कि प्रताप का हुआ ?"

"हुजूर, मैंने उसे खूब समझाया । वह मेरी बातों को गटर-गटर सुनता रहा । यही कहता रहा कि बड़े-बूढ़ों और सामंतों से सलाह लेकर अपना निश्चय बताएगा

उसके निश्चय को सुनने के लिए सप्ताह भर रुका रहा, किन्तु उसका अहंकार उसके सिर पर चढ़कर बोलता है।"

"क्या उसने मना कर दिया ?"

"उसने न केवल मना किया, अपितु मुझे अपमानित भी किया। आपके सम्मान में भी लोगों ने बहुत कुछ कहा, किन्तु जो कुछ कहा गया उसका अर्थ अपमान ही था।"

"इसका अर्थ है, वह सजा दिए जाने योग्य है। उसने किस प्रकार का अपमान किया ? मुझे पूरा विवरण सुनाओ।"

मानसिंह ने पूरी कहानी कह दी और यह भी बता दिया कि जब भी कभी मेवाड़ पर सैनिक कार्यवाही करने का समय आए, उसे भी अवसर दिया जाए ताकि वह अपना हिसाब चुकता कर सके।

"तुम यह कहते हो कि वह तुम्हें दूसरे दर्जे का क्षत्रिय समझता है ?"

"हाँ हुजूर।"

"यही तुम्हारी भूल है। उसने जो कुछ किया वह ठीक ही किया इसमें अपमान जैसी कोई बात दिखाई नहीं देती है।"

मानसिंह हतोत्साहित सा एकटक बादशाह का चेहरा पढ़ने लगा। उसने कुछ क्षणों के बाद पूछा-"हुजूर, इसमें आपको अपमान की कुछ भी गंध नहीं आती है ?"

"मानसिंह जी, सामंतों ने जो कुछ व्यंग्य में कहा वह तो अपमान की ही श्रेणी में आता है, किन्तु प्रताप का भोज में सम्मिलित न होना किसी भी प्रकार का अपराध नहीं है। इस घटना से तो मेरे मन में प्रताप के चातुर्य एवं उसकी बुद्धि की विलक्षणता के प्रति सम्मान का भाव बढ़ गया है।"

"यह कैसे हुजूर ?" मानसिंह के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। वह सोच रहा था कि मेरे अपमान की बात सुनकर बादशाह सलामत उबल पड़ेंगे और सैनिक कार्यवाही करने के आदेश दे देंगे, किन्तु यहाँ तो आशा के विपरीत प्रतिक्रियाएँ दिखाई दे रही थीं।

"क्या आप वहाँ जाति समाज की बैठक में गए थे ?"

"यह सच नहीं है, हुजूर।"

"तब तुम्हारी उनके दरबार में क्या हैसियत थी ?"

"मैं आपका दूत बनकर मेवाड़ में गया था।"

"वह भोज किसके सम्मान में दिया गया था ?"

"मेरे सम्मान में, हुजूर।"

"यही तुम्हारी भूल है। उस भोज का आयोजन बादशाही दूत के सम्मान में था ताकि वह दूत उन मेवाड़ के सामंतों के साथ मिल सके। आपके सम्मान में जो शिकार के आयोजन किए गए थे, उसका लक्ष्य भी यही था। आप सामंतों से मिलकर उनके विचारों

को समझ सकें । उनके अन्तर्विरोधों को समझ सकें, यही उद्देश्य था । ऐसा करके वा आपको एक संदेश देना चाहता था कि उनके सामंतगण बादशाह से संधि करना चाहते हैं व नहीं । आपके साथ जिस अपमानजनक भाषा का प्रयोग सामंतों ने किया, उसका सीधा स्प अर्थ यह है कि सामंतगण हमारे विरोध में हैं, इस कारण उसका हमारे साथ संधि करन संभव नहीं है।''

''यह तो मेरी भूल हुई, हुजूर ।''

''यह आपकी भूल ही थी । होना तो यह चाहिए था कि आप सामंतों के मन प अपने व्यवहार की छाप छोड़ते । आपने तो उन पर क्रोध किया । क्रोध करना, आवेश आना और कटु संभाषण करना दूत का लक्षण तो नहीं है ।''

''और भोज में प्रताप का उपस्थित नहीं होना क्या दर्शाता है ?''

''उसका इसमें यह संदेश है कि वह आपको आपकी हैसियत बताना था ।''

''कैसी हैसियत, हुजूर ?''

''यही कि आप एक दूसरे देश के दूत थे और वह था एक देश का राजा । च वह राज्य कितना ही छोटा क्यों न हो, है तो वह राजा ही ।''

''यह तो सही है हुजूर ।''

''क्या एक राजा किसी दूत के सम्मान में हाथ बाँधे खड़ा रहेगा ? प्रताप ने कुछ किया उचित ही किया है ।''

मानसिंह मौन हो गया । अन्दर में दबी ज्वाला भीतर में ही शांत हो गई ।

''और सुनो... । यदि आप समझते हैं कि आप क्षत्रिय हैं तो एक क्षत्रिय के उसने सम्मान नहीं किया, तब भी आपका आकलन गलत है । आप लोगों का अहंकार कम नहीं है । ऐसे प्रसंगों में व्यक्ति को गलत निष्कर्ष नहीं निकालने चाहिए ?''

''जरा खुलासा करके बताएँ, हुजूर ?''

''आप आमेर के महाराजकुमार हैं । मेवाड़ के महाराजकुमार अमरसिंह हैं । महाराजकुमार के सम्मान में यदि दूसरे देश का महाराजकुमार उपस्थित होता है, तो यह सम्मान की ही बात है । एक महाराजकुमार सामने वाले देश के राजा की उपस्थिति किस आधार पर अनिवार्य समझता है ? उसने भोज में न आने का जो बहाना बनाया था भी राज्योचित व्यवहार था । आप उन्हें उज्जड़ कह रहे हैं । यदि वे वास्तव में उज्जड़ तो यह भी कहला सकते थे कि मानसिंह नाम के दूत से कहें कि मेवाड़ का राणा उस सम्मान में उपस्थित नहीं होगा अथवा एक राजकुमार के साथ भोजन करने का उसका इ नहीं था । मेरी समझ में तो उसने जो कुछ किया वह बिल्कुल ठीक था ।''

अब मानसिंह क्या उत्तर देता ? वह चुपचाप बैठा रहा ।

"इसमें एक तर्क और भी समझा जाना चाहिए।"

"हुकुम करें, हुज़ूर।"

"आप स्वयं को मुगल दरबार का एक उच्च अधिकारी मानकर उससे अच्छे व्यवहार की उम्मीद लगाए बैठे थे। संभवतया आपके मन में यह भाव था कि अकबर बादशाह का नाम सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा आएगा और आपका सम्मान करेगा। यह आकलन भी गलत था। हमारे पूज्य बाबरशाह ने सांगा को हराया, हमने उनका चित्तौड़गढ़ जीता, किन्तु मेवाड़ के राणा ने आत्मसमर्पण नहीं किया। यह वह राणा नहीं था जिसे हमारे सेनापति ने जीत लिया हो। इस प्रकार एक विजेता सेनापति का दंभ पालकर सामने वाले विद्रोही राणा से यह उम्मीद करना कि वह आपके साथ आकर बैठता, मेरी समझ में गलत आकलन है। अच्छा तो यह होता कि आप उस पर हमला करते। हमले में वह पकड़ा जाता, इसके बाद यदि आप उसे भोज में शामिल करते तो वह अवश्य ही उपस्थित होता। न केवल उपस्थित होता अपितु आपकी सेवा में हाथ बांधे खड़ा रहता।"

मानसिंह को यह पता नहीं था कि उसका फूफा अकबर कितनी गहराई पर जाकर व्यवहारों को पढ़ लेता है। वह मायूस होकर चुप रहा। अकबर की सतर्क निगाहें मानसिंह के मनोभावों को पढ़ चुकी थी। अकबर ने पुनः कहा-

"आप मायूस न हों। आप अपने अपमान को स्मरण रखें। जब भी हमारा इरादा मेवाड़ पर फौज भेजने का होगा, हम आपको याद करेंगे। अब एक काम और करें। आप अपने वालिद भगवंतदास जी से कहें कि वे कल ही गुजरात की ओर चले जाएँ। जिस दंगे-फसाद को आप निपटा कर आए हैं, वह पुनः भड़क उठा है। उनसे यह भी कह दें कि वे ईडर और मेवाड़ होते हुए आएँ।"

"जो हुकुम, हुज़ूर।"

"आप मन छोटा मत करना। यहाँ आपका कुसूर नहीं है।"

"कैसे ?"

"आप युवा हैं आवेश आना, कटु उत्तर देना और भी जो न हो सके वह कर गुजरना, जवानी के लक्षण हैं। मैं आपके कथन पर नाराज नहीं हूँ। एक अवसर और देना चाहता हूँ, अतः आप आपके बुजुर्ग वालिद भगवंतदास जी को सारी बात समझा दें। गुजरात का काम निपटाकर वे मेवाड़ होते हुए आएँ, यह उन्हें बता दें। यह बात गुप्त रहे, इसका खयाल रखना।"

"जो हुकुम हुज़ूर।"

तीन बार लंबा सलाम निवेदन कर मानसिंह अपने आवास की ओर बढ़ गया।

□

(10)

मानसिंह का प्रस्थान, युद्ध के आमंत्रण का पूर्वाभास था। मेवाड़ समझ कि आहत सर्प का दंश उसे निकट भविष्य में झेलना ही पड़ेगा। सामंतों, सहायक एवं गुप्त रूप से मदद कर सकने वालों को सामान्य सूचनाएँ भिजवा दी गईं। सोचा जा रहा था कि दो-चार महिनों में आगरा की सेना का पड़ाव अरावली की घाटियों में होगा। भीलों के प्रधान भीलूराजा पूंजा को सतर्क कर दिया। उन्हें, उनके सहयोगियों के किन-किन कर्तव्यों का पालन करना था, इसकी पूरी जानकारी दे दी गई। सलूम्बर, देवगढ़, कोठारिया, बड़ी सादड़ी जैसे प्रमुख ठिकानेदारों को अन्न, वस्त्र, घास, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र एवं आवश्यक युद्ध संबंधी सामग्रियाँ एकत्रित करने का स्पष्ट निर्देश दे दिया गया था। चित्तौड़ विध्वंस के बाद बचे खुचे लुहारों ने अब प्रण कर लिया था कि वे स्थाई रूप से नहीं बसेंगे। अपनी धौंकनी, चिमटा, संडासी, एरण, अनाज, चोरी-बिस्तर आदि आवश्यकता वाली वस्तुओं को गाड़ियों पर लादकर गाँव-गाँव घूम-घूम कर शस्त्र निर्माण एवं खेती के सामग्रियाँ यथा-कुल्हाड़ी, हल का फाल, दांतली, तलवारें, भाले, बाण की नोंकें, कटारें, फरसे आदि तैयार करने का निश्चय भी उन लुहारों ने कर लिया था। इनके लिए इनकी गाड़ियाँ ही इनका घर था। ये घूमते-फिरते छोटे-छोटे कारखाने थे, जो जन-जन तक पहुँच कर लुहारी सामग्रियाँ निर्मित कर रहे थे। लोगों की भाषा में इन्हें गाड़िया लोहार कहा जाने लगा। इनका प्रण था कि जब तक महाराणा प्रताप चित्तौड़गढ़ को पुनः हस्तगत नहीं कर लेते, वे इस प्रकार घुमन्तू जीवन व्यतीत करते रहेंगे। उस घटना के लगभग साढ़े चार सौ वर्ष बाद भी इन लुहारों का निश्चय वही का वही है। आज भी इन लोगों की गाड़ियाँ को मेवाड़ एवं आसपास के क्षेत्रों में अपनी गतिविधियाँ चलाते हुए उसी क्रम में देखा जा सकता है।

किन्तु मेवाड़ में आगरा की सेना नहीं आई। अपेक्षाओं के विपरीत मानसिंह के पिता राजा भगवंतदास के दल की मेवाड़ में पहुँचने की खबर गोगुन्दा पहुँची। प्रताप को भी आश्चर्य हुआ। वह अपने सहयोगियों के साथ राजधानी के बाहर जाकर राजा भगवन्तदास की अगवानी में खड़ा रहा। दोनों नरेश गले मिले। प्रताप ने अपने विश्वस्त हाथी रामप्रसाद की पीठ पर राजा भगवंतदास के साथ बैठकर शोभायात्रा के रूप में राजप्रासाद में प्रवेश

या। राजा भगवंतदास के आग्रह पर चर्चा केवल प्रताप के साथ ही हुई। चर्चा हेतु समीपस्थ वन में शिकार हेतु निर्मित "औदी" (शिकारगाह) को चुना गया। औदी एक गोलाकार तीन मंजिल का भवन होता है। इसके सबसे नीचे वाले भाग में आवश्यक वस्तुओं का संग्रह रहता है। दूसरी एवं तीसरी मंजिल निवास के उपयोग में आती है और सबसे ऊपर वाली छत पर मखमली मसनद पर प्रताप और भगवंतदास ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। इस बार पहल प्रताप ने ही की। वे कहने लगे-

"आप हमारे बुजुर्ग हैं। आपने मेरे पितामह, पिता एवं वर्तमान की पीढ़ियों को देखा है। चाहूँगा कि आपका स्नेह मुझे उसी प्रकार मिलेगा, जिस प्रकार एक पुत्र को मिलता है। मेरे सामंतों ने आपके सुपुत्र मानसिंह के प्रति अशिष्ट भाषा का प्रयोग किया, इसके लिए मैं मेवाड़ की ओर से खेद व्यक्त करता हूँ।"

"आप निर्भय होकर अपनी बात कहें। मानसिंह, अवश्य ही क्रुद्ध हुआ था, किन्तु अब उसके मन में भी कुछ नहीं है।"

"आपके बादशाह की हमसे क्या अपेक्षाएँ हैं?" प्रताप सीधी बात करने की इच्छा से कह उठा।

"वे चाहते हैं कि आप समय की संवेदनशीलता को समझें। आपको यह समझ भी जाना चाहिए कि खानवा और चित्तौड़गढ़ की पराजय के बाद आपकी शक्ति घटी है। चट्टानों से टकराने का ही मानस आप लोगों का बना हुआ हो तो बात अलग है।"

"यह सत्य है कि हम पितामह सांगाजी की तुलना में आज कमजोर स्थिति में हैं, का अर्थ यह भी नहीं है कि हम ऐसी शर्तों को मान लें जिसे हमारा मन स्वीकार नहीं।"

"बात मन की नहीं है। प्रजा को रंजन की सुविधाएँ देने वाला राजा होता है। अकबर बादशाह से मित्रता का अर्थ है-वैभवपूर्ण जीवन, प्रजा की खुशहाली और निश्चिंतता। दूसरा मार्ग है विरोध का। उस मार्ग पर चलने का अर्थ है आत्महत्या का प्रयास, मित्रों को कष्ट देना, परिवार को विपत्तियों के सागर में फेंकना और प्रजा को दर-दर का भिखारी बनाना। निर्णय आपको करना है।"

"पूज्यवर, आपका सुझाव लुभावना है। इस लोभ के झांसे में अधिकांश नरेश आ चुके हैं। सुख एक मृगमरीचिका है, जिसके पीछे दौड़कर कई लोगों ने अपने जीवन की कहानियाँ खो दी हैं। आपने जो दोनों मार्ग सुझाए हैं उनमें से किसका चुनाव किया जाना उचित होगा, यह तो व्यक्ति के मन में बैठा वह मूल्य है जिसकी कसौटी पर व्यक्ति निर्णय करता है। फिर भी आपका सुझाव विचारणीय अवश्य है।"

"प्रतापसिंह जी, आपकी उम्र अभी छोटी है। मैंने दुनिया देखी है। आज सारा हिन्दुस्तान बादशाह के कदमों में अपना सिर झुकाता है। आप जैसे दो-चार नरेश ही होंगे, जिन्हें समय की चाल समझ में नहीं आती है।"

"निश्चय ही अकबर का मायाजाल महान है । उसके साम्राज्य रूपी महासागर में अधिकांश अपना अस्तित्व खो चुके हैं । आपका कथन सत्य है ।"

"तो क्या मैं यह उम्मीद करूं कि आप भी, अब हमारा अनुकरण करना पसंद करेंगे ?"

"उम्मीदें रखना बुरा नहीं है, किन्तु अपनी अस्मिता खोकर केवल नौकर जैसा जीवन बिताना क्या हमारे पूर्वजों ने हमें सिखाया है ?"

"उनकी परिस्थितियों में और आजकल की हवा में बहुत अन्तर है, अतः जो कुछ हमें सिखाया गया वह आज का सत्य नहीं है । आप समझौता कर लें तो बादशाह के दरबार में आपको बड़ा पद दिया जाएगा । आप स्वयं को नौकर जैसा कभी भी अनुभव नहीं करेंगे ।"

"मुझे इतनी समझ तो नहीं है कि मैं बड़े पद पर आसीन और छोटे पद पर कार्य कर रहे व्यक्ति में अन्तर कर सकूं, क्योंकि मेरे मत में दोनों ही व्यक्ति नौकर हैं, चाहे एक बड़ा नौकर हो या दूसरा छोटा नौकर । रही आज की हवा की बात, तो मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि हवाएँ चाहे कैसी ही चलें, मन तो वही रहता है । व्यक्ति की इज्जत, उसकी आन और उसकी चाल वही रहनी चाहिए । जो चीज मन की होती है, उस पर बाहरी हवा का कोई असर नहीं होता है ।"

"क्या आप नहीं चाहेंगे कि यह देश एक सूत्र में बंध जाए । यदि आपका उत्तर हां में है तो आपको भी चाहिए कि आप भी एक प्रकार की राष्ट्रीय एकता में सम्मिलित हों ।"

"यह तो मैं मन से चाहूँगा कि सभी में एकता हो और भारत को एक ही सूत्र में बांधा जाए, किन्तु इस व्यवस्था का सूत्रधार कौन होगा ?"

"बादशाह अकबर... । और कौन ?"

"आप क्यों नहीं ? सभी राज्य समान हितों के आधार पर एक हो जाएँ और उनमें से किसी एक को सूत्रधार के रूप में चुन लिया जाए ।"

"यदि यह सूत्रधार अकबर हो तो आपको क्या एतराज है ?"

"पूज्यवर, जिसे आप एकता कह रहे हैं वह एक छल है । वह छली राजघरानों की बेटियों को अपने हरम में डालता है । अपनी बेटियों को क्या वह क्षत्रियों को देना पसंद करेगा ? वह नरेशों पर हमले करके उन्हें अपने अधीन बनाता है । आप जिसे एकता कह रहे हैं, वह उनके जूतों के नीचे दबे-कुचले नरकंकालों की एकता है । इस एकता में किसी भी प्रकार की आपसी मैत्री नहीं है । मैत्री समान धरातल पर होती है । वह बैठेगा ऊँचे गवाक्ष में और उसके नीचे खड़े होंगे उनके द्वारा प्रताड़ित किए गए नरेशगण । मुझे तो आपकी एकता पर विश्वास ही नहीं है ।"

"प्रताप ! समय की नजाकत को समझो और समझौता कर लो । लाभ में रहोगे ।"

"जो लोग लाभ के मंसूबे बांधकर बादशाह की शरण में गए हैं उनकी संख्या अकबर के हमधर्मी लोगों एवं अधिकारियों की तुलना में नगण्य सी है। फिर भरे दरबार में बात-बात पर बादशाह उन्हें झिड़कियाँ सुनाता है, उन्हें अपमानित करता है और वे नरेश जो स्वयं को ईश्वर के बाद इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ मानने का स्वांग रचते हैं, अकबर के दरबार में गिड़गिड़ाते रहते हैं। यदि मित्रता ही करनी है तो समान धरातल पर होनी चाहिए।"

"इस मित्रता में आपके राज्य की सुरक्षा की जिम्मेदारी तो बादशाह ही निभाएँगे। आपको तो केवल एक बार चलकर बादशाह के सामने खड़ा रहना है।"

"यदि मित्रता का यही आधार है कि मैं उसके दरबार में खड़ा रहूँ तो क्या वे भी अवसर आने पर मेरे दरबार में खड़े रहेंगे? संभव है मेरा कथन जरा कटु हो गया है।"

"क्या इसका अर्थ मैं यह समझूं कि आप दरबार में उपस्थित नहीं होना चाहते हैं?"

"आप बुजुर्ग हैं। आप जो कुछ कह रहे हैं मेरे भले के लिए ही कह रहे हैं, किन्तु मेरे भी कुछ सुझाव हैं।"

"आप निस्संकोच कहें।"

"क्या इस देश की सभी रियासतों को मिलाकर एक संगठन नहीं बनाया जा सकता है, जिसका आधार अनाक्रमण हो। कोई भी रियासत दूसरी रियासत पर हमला नहीं करे।"

"इन सभी रियासतों का प्रमुख कौन होगा?"

"न कोई प्रमुख होगा, न कोई पिछलग्गू। इसे केवल अनाक्रमण संधि की संज्ञा दी जा सकती है। फिर भी यदि प्रमुख बनाना आवश्यक ही हो तो मैं आपका नाम सुझाऊँगा। आप अनुभवी है, बुजुर्ग हैं और देश की राजनीति में दखल रखते हैं।"

"शायद आप कल्पना में सोच रहे हैं। बाहर से आने वाले आपको शांति से रहने देंगे, यह मात्र कल्पना के और कुछ भी नहीं है।"

"यदि ऐसा करना संभव नहीं हो तो ऐसा संगठन बनाया जाए, जैसा कि मेरे दादाजी ने बनाया था। उन्होंने देशी नरेशों की रियासतों का संगठन बनाया था। जो भी उस संगठन में सम्मिलित होता, उसे सुरक्षित रखने का वचन संगठन देता था। किसी भी एक रियासत पर आक्रमण, संगठन में आई सभी रियासतों पर आक्रमण माना जाता था और सभी मिलकर उसका प्रतिरोध भी करते थे।"

"आप ऐसा करें कि एक बार अकबर के दरबार में आ जाएँ और वहाँ अन्य रियासतों के प्रमुखों से संपर्क कर आपके विचारों को क्रियान्वित करें। मेरी समझ में आगरा ही इस सोच का मंच बने तो ठीक होगा।"

"इसका अर्थ है कि मैं पहले गुलाम बनूं और फिर गुलामों का संगठन क और इसके बाद अन्दर ही अन्दर अपना संघ बनाऊं अर्थात् अकबर से विद्रोह करूं।"

"कमजोर लोग तो ऐसा ही करते हैं।"

"यह ठीक है कि हम लोग कमजोर हैं तथापि अरावली का पानी अपे नहीं है। आप बादशाह को समझावें कि प्रताप न तो दरबार में उपस्थित होगा न ब बहिन बेटी के डोले किसी के यहाँ भेजेगा। इन दो शर्तों के बाद जो भी उनकी शर्तें होंग स्वीकार कर लूँगा। यदि वे सालाना कोई राशि लेना चाहें तो भी मैं दे सकता हूँ किन्तु को उस सीमा तक नहीं गिरा सकूंगा, जिसकी अपेक्षा आप कर रहे हैं।"

"आप एक बार और सोच लें। अपने परिवार के भविष्य को सोचकर भी निश्चय करें।"

"मेरे देखते-देखते हजारों सैनिकों एवं निरपराध नागरिक चित्तौड़गढ़ में मारे यदि आज मैं स्वयं को गिरा दूं तो उनकी भटकती आत्माओं को क्या उत्तर दूंगा? भी अमर होकर नहीं आया है। सभी को एक न एक दिन मरना ही है। यदि हमारी उत्तराधिकार में मिले मूल्यों की रक्षा के लिए होती है तो इसे मैं शुभ समझूँगा। रही वैभव की तो इसमें कुछ भी अन्तर नहीं आता है। आप सोने के पलंग पर सो सकते हैं मैं धरती को किसी चट्टान पर, मुझे नींद उतनी ही आएगी। आप स्वर्ण पात्रों में भोजन सकते हैं, किन्तु यदि मेरा स्वाभिमान सुरक्षित रहता है तो पलाश के पत्तों पर परोसा भोजन भी मेरे लिए उतना ही स्वादु होगा।"

"मुझे लगता है आप आत्महत्या पर ही उतारू हैं, तो अब हमारा कोई दोष है। क्षत्रिय होने के कारण, मेरा धर्म था कि आपको समझाऊं। मैंने अपने धर्म का प किया। अब आप आज्ञा दें तो मैं कल ही प्रस्थान करना चाहूँगा।"

"आप कुछ दिन यहाँ विराजें। इस धरती के मालिक प्रभु एकलिंगनाथ हैं, य वे मुझे आपके सुझावों को मानने की अनुमति देंगे तो मुझे उन्हें मानना ही है।"

"तो क्या भगवान आपको सलाह देंगे?"

"मैं उनका चाकर हूँ। चाकर से क्या काम लिया जाना है, यह निश्चय तो वे करेंगे, किन्तु इतना मेरी तरफ से तय है कि मैंने एक बार उनकी चाकरी कर ली है, किसी और के सामने सिर झुकाने की इच्छा नहीं है।"

"मैं जाना चाहूँगा और आशा करूँगा कि प्रभु एकलिंगनाथ आपको सद्बु दे।"

"आप मुझे अपना समझकर यहाँ पधारे, इसके लिए मैं आपका बहुत-ब आभारी हूँ। बादशाह को आप समझावें कि मेरी उपस्थिति एवं बहिन बेटी को छोड़कर वे और कोई भी शर्त रखें, मुझे स्वीकार्य होगी।"

"मैं प्रयत्न करूँगा ।" कहकर राजा भगवंतदास उठ खड़े हुए । वार्ता का दौर
प्त हुआ । राणा प्रताप ने अगले दिन राजा भगवंतदास को भेंट आदि देकर ससम्मान विदाई
।

इतिहास गवाह है कि जलाल खाँ कोर्ची, मानसिंह एवं राजा भगवंतदास के समझौता
यास असफल हो गए । सितम्बर, 1573 में भगवंतदास उपस्थित हुए थे । इसके बाद
कबर के नवरत्नों में से एक श्री टोडरमल ने भी दिसम्बर, 1573 में समझौते के प्रयास
ए, किन्तु राणा प्रताप अपने निश्चय पर अडिग रहा ।

अब यह स्पष्ट हो गया था कि महाराणा प्रताप समझौता करने के लिए तत्पर नहीं
। इसका दूसरा पहलू अब युद्ध ही था । अकबर जैसी हस्ती को एक पिद्दी जैसा राजा
ख बताए, यह असह्य था । बादशाह की आँख में मेवाड़ एक कंकड़ की भांति खटकने
गा । सर्वसत्तावादी लौलुपता धरती के उस क्षुद्र भाग को भी हड़पना चाहती थी, जिसे
वाड़ कहा जाता था । अब युद्ध किसी भी समय हो सकता था । अकबर का अहं आहत हो
का था । क्षत्रियों में अब प्रताप ही ऐसा था जिसने आगरा के दरबार में अपनी उपस्थिति देने
मना कर दिया था ।

उधर मेवाड़ में युद्ध के प्रभाव से बचने के पूरे प्रयत्न किए जा रहे थे । आम
ागरिकों को अरावली पर्वतों के बीच-बीच में फैले मैदानों में बसाना शुरू कर दिया । गाड़ी
ोहारों ने गाँव-गाँव घूम-घूमकर हथियारों का निर्माण आरम्भ कर दिया । सामंतों के
िकानों पर युवकों की भर्तियां, उनके प्रशिक्षण एवं घोड़ों की खरीद संबंधी प्रक्रियाएँ देखी
सकती थी । युद्ध के समय कौन क्या करेगा, इसकी सूचनाएँ प्रतिदिन पहुँच रही थी । अन्न
वं घास का संग्रह सर्वत्र किया जा रहा था । पर्वतों की घाटियों, गुफाओं एवं सघन वनों का
िर्धारण कर लिया गया था जहाँ राजपरिवार के सदस्यों को विपत्तिकाल में रखा जाना था ।
ोगुन्दा नगर की गलियों में सैनिक गतिविधियाँ बढ़ चुकी थी ।

दूसरी ओर गोपीनाथ के दूत, जालौर के ताजखाँ पठान, बूंदी, सिरोही एवं ईडर के
रेशों को सन्देश देने और उनके संदेशों को गोगुन्दा तक पहुँचाने के क्रम में दौड़ लगा रहे
। जोधपुर के उत्तराधिकारी चन्द्रसेन को भी समस्त समाचार पहुँचा दिए गए थे । कुल
िलाकर मेवाड़ की हवा में युद्ध की मादक गंध व्याप्त हो गई थी । युवकों का जोश वृद्धों में
ी जोश फूंक रहा था । आम नागरिकों तक में युद्ध के समय क्या किया जाना है, पर चर्चाएँ
ोने लगी थी । कोई भी नागरिक ऐसा नहीं था जिसके पास कुल्हाड़ी, फरसा, भाला,
लवार, तीर-कमाण, हँसिया नहीं हो । प्रत्येक घर में अस्त्र सामग्री देखी जा सकती थी ।
्रत्येक परिवार ने मन ही मन सूचियाँ भी बना ली थी, कि कौनसा सामान विपत्ति के समय
छोड़ा जाएगा और कौनसा सामान साथ ले जाया जाएगा ।

अब युद्ध अवश्यंभावी था ।

(11)

बादशाह अकबर अब समझ चुका था कि महाराणा प्रताप एक उड़ता पंछी यह पंछी भारत भर में लहलहाती फसल को नष्ट करे, इसके पूर्व ही उसे पिंजड़े में जाना आवश्यक था। पंछियों के पर कतरना इसलिए भी आवश्यक था कि वह दूसरे को साथ लेकर अपनी उड़ान न भर सके। प्रताप को मदद करने वाले राज्यों में थे ईडर, सिरोही, जालोर के शासनाध्यक्ष और उसके विचारों को हवा देने वाला था जोध निर्वासित राजकुमार चन्द्रसेन। सबसे पहले अपना जाला बुनने वाली मकड़ी के फैले जाल को ध्वस्त करना आवश्यक था।

सन् 1573 में महाराणा प्रताप को वश में करने के प्रयास में गए चार प्र मंडल असफल होकर लौट आए। अनुभव तो यह किया गया था कि तत्काल सेना उद्दण्ड प्रताप को गिरफ्तार कर लिया जाता, किन्तु अकबर के समक्ष विवशता अ बिहार और बंगाल से विद्रोहों की खबरें आने लगी थीं। मेवाड़ जैसे पहाड़ी क्षेत्र की में बिहार और बंगाल पर ध्यान दिया जाना आवश्यक था। हिन्दुस्तान की सल्तनत सेना देश के पूर्वी दौरे पर चल दी। मेवाड़ का कांटा पैरों में चुभा ही रह गया। इसी एक छोटी सी सेना द्वारा अरावली के पश्चिमी भाग का मार्ग साफ किया जाना भी अ था। सिरोही, जालोर एवं सिवाणा के प्रसिद्ध दुर्ग अरावली के पश्चिमी भाग से लगे तथा ऐसी स्थिति में थे कि मेवाड़ को सहायता पहुँचाई जा सके। वर्ष 1575 में इस साफ किया गया। सिवाणा के दुर्ग पर मुगलों की सेना ने अपना झंडा फहराकर चन्द्रसेन के अति उत्साह को ठंडा कर दिया। अब प्रतीक्षा थी मेवाड़ की।

सम्राट अकबर की प्रतिदिन की घटनाओं का उल्लेख करने वाला अबुल फ़ज़ल अकबरनामा में लिखता है-"अपने पूर्वजों के गौरवमय इतिहास, अपने बड़े राज्य उसकी शक्ति तथा स्वाभिमान की रक्षा हेतु बलिदान करने के लिए उद्यत राजपूत सैनिकों की बड़ी संख्या के कारण घमंड में चूर प्रताप की अवज्ञा, ढिठाई, धोखाधड़ी और कपट सभी सीमाएँ लाँघ चुके थे, अतएव उसको नष्ट करना आवश्यक हो गया था। नजरों में प्रताप धोखेबाज था, अभिमानी था और कपटाचार में डूबा हुआ था। अपनी मूँछ ऊँची रखता हो, उसे नष्ट करना आवश्यक था।

उन दिनों अकबर की सेना के घोड़ों की पीठ पर अथवा पिछले पांवों की सपेशियों पर राजकीय चिह्न बनाने को दागना कहा जाता था। पूरे देश के घोड़ों को दाग या गया था, किन्तु अब मेवाड़ी घोड़ों की बारी थी। मुगल फौजों के हाथियों ने गंगा से कर कावेरी तक का पानी पिया था, किन्तु बनास के पानी का स्वाद चखा जाना शेष था। श्मीर की उपत्यकाओं में घोड़ों के टापों की ध्वनियाँ प्रतिध्वनित हो चुकी थीं। किन्तु रावली की घाटियों में घोड़ों की खुरों की धूल उड़ना अभी शेष था।

तोपों की गर्जना खानवा एवं चित्तौड़गढ़ में गूंज चुकी थी, किन्तु उनका रुख अब गुन्दा की ओर हुआ चाहता था। बादशाह अकबर ने अजमेर की दरगाह में मेवाड़ विजय लिए अपना मत्था टेका। उस युग के सर्वश्रेष्ठ सेनानायकों को एक-एक कर बुलवाया गया। इनमें से प्रमुख थे-गाजी खां बदख्शी, आसफ खां, सैयद अहमद, हाशिम बरहा, जगन्नाथ छवाहा, सैय्यद राजू, मिहतर खां, मार्धोसिंह, राय लूणकरण, मुजाहिद बेग, खंगार आदि। ो को खंजर भेंट कर अकबर ने खुदा एवं इस्लाम के नाम पर मेवाड़ के घमण्डी राणा ाप को सबक सिखाने का काम सौंपा। इन समस्त सेनापतियों का प्रमुख बनाया गया, सिंह को। मानसिंह को विदा करते समय शहंशाह ने याद दिलाया कि उसके पुराने बैर हिसाब चुकता करने का अवसर दिया जा रहा था। मानसिंह के मन में डोडिया भीम की क्ति अब भी निनाद कर रही थी। मानसिंह का मन उन दुष्ट सामंतों को सजा देने हेतु -बार बुदबुदा रहा था, जिन्होंने राजकीय भोज के अवसर पर खिल-खिलाकर फब्तियां ी थीं। पहली अप्रेल सन् 1576 के दिन मानसिंह ने अजमेर के किले से विदा ली। वहां वह मांडलगढ़ आकर रुका। दो महिनों तक मांडलगढ़ के मुकाम पर ठहर गया। मुगल ापतियों ने मानसिंह की आलोचना करनी शुरू कर दी। उन्हें विलंब करना ठीक नहीं ा रहा था, किन्तु मानसिंह फूंक-फूंक कर कदम रखना चाहता था। एक बार एकान्त में लूणकरण ने पूछ ही लिया-

"मानसिंह जी आपको कैसा लग रहा है ?"

"कैसा लग रहा के माने... ?" मानसिंह ने पलट कर कहा।

"यही- मेवाड़ के विरुद्ध अपनी फौज को ले जाते हुए, आप कैसा अनुभव कर है ?"

"आपका मन क्या कहता है ?"

"सच मानों तो मेरा मन कहता है कि ईश्वर मुझे मौत दे दे तो ठीक रहेगा। च्चाई के लिए लड़ने वाले के विरुद्ध खड़ा रहने की ताकत ही मानो समाप्त हो गई है, ऐसा झे कई बार लगता है। क्षत्रियों का धर्म है कि हक की बात का समर्थन करें, किन्तु आज मारी स्थिति गले में पट्टा बांधे हुए कुत्ते जैसी है। हम टुकड़े देने वाले मालिक के संकेतों कहाँ जा रहे हैं ? मुझे अपने आप पर ग्लानि होती है।"

"ये भाव मेरे लिए भी नए नहीं हैं। कई बार मैं भी अनासक्ति की इन गहराई खो जाता हूँ किन्तु इसका समाधान क्या है ? आप नहीं देख रहे हैं कि कुछ समय मांडलगढ़ में रुका रहना भी इन मुगल सेनापतियों को बुरा लग रहा है।" मानसिंह ने निःश्वास डाली।

"इसका समाधान हो सकता है।"

"क्या .. ?"

"कि हम प्रताप को सचेत कर दें कि हम ... करके भाग जाए। इससे दोनों ही कार्य पूरे हो जाएँगे ... कहानी लिख भेजेंगे और प्रताप के प्राण भी बच जाएँगे।"

"लूणकरण जी ! क्या आप प्रताप को इतना सहज समझते हैं ? मुझे तो बार-भय लगता है कि कहीं यह युद्ध हमारे कलंक का कारण नहीं बन जाए।"

"क्यों ?"

"आपको पता है कि हमारे हाथियों का काम मात्र बोझा ढोना रह जाएगा। प की पगडंडियों पर हाथियों का दौड़ना संभव नहीं होगा। तोपों का कोई भी असर घाटियों में होगा नहीं। तोपों को लाना-ले जाना कठिन है और इनका उपयोग तो और कठिन है। पर्वतों में गोले दाग कर हम सिवाय गोला-बारूद फूंकने के और कुछ भी कर सकेंगे। अब रही बात घोड़ों पर चढ़ने की, तो हमारी सेना मैदानी भागों में तो सकती है किन्तु पर्वतों से भीलों की गोफण से छूटे पत्थरों से स्वयं को कितना बचा पाए इस पर संशय है। हम जहाँ जा रहे हैं, वह उनकी गलियाँ हैं जहाँ कुत्ता भी शेर होता अब आप ही बताएँ, मेरी चिन्ता उचित है या नहीं ?"

"आपका आकलन सर्वथा सत्य है, किन्तु यह भी सत्य है कि हमारे हाथ ह ही भाईयों की गर्दन काटते समय कांपेंगे अवश्य।"

"यह भी सत्य है, किन्तु मैं तो सदा यह स्मरण रखता हूँ कि भावुकता और साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। कर्त्तव्य का स्थान सदा ऊँचा होता है, इसलिए हम युद्ध ओर बढ़ रहे हैं। नियति में जो भी होगा उसे देखा जाएगा। आप तैयारी करें कल ही यहां से प्रस्थान करेंगे।" मानसिंह का कथन समाप्त हुआ और लूणकरण चुपचाप खोया सा चल दिया।

मानसिंह का मन भी लूणकरण की बात पर बैठ गया। अपनी ही जाति के लो के विरुद्ध नौकरी के कारण लड़ना होगा ? दूसरे के हाथ का मोहरा बन कर उसे जाना प रहा था, इसे जानते हुए भी उसे चुप रहना था। नियति की जंजीर क्या कभी उसे मुक्त क पाएगी ? क्या कभी वह अन्तरात्मा में उठे अंतर्द्वन्द्व को शांत कर पाएगा ? शायद नहीं।

उन दिनों प्रताप ने अपना अधिकांश ध्यान कुंभलगढ़ पर केन्द्रित कर लिया था गोगुन्दा की तुलना में कुंभलगढ़ अजेय दुर्ग था। अरावली की शीर्षस्थ चोटियों को इस प्रक

घेरा गया है कि इसके चारों ओर शत्रुओं की सेना का जमाव किया जाना ही कठिन होता है। जल के पर्याप्त भंडार, घास-लकड़ी की प्रचुरता तथा गुप्त मार्गों के मायाजाल से युक्त इस दुर्ग का निर्माण महाराणा प्रताप के कार्यकाल से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व किया गया था। प्रताप ने गत दो वर्षों में प्रचुर मात्रा में खाद्यान्न इस दुर्ग में जमा कर लिया था।

इसी प्रकार का एक अतिविकट किन्तु छोटा दुर्ग आवरगढ़ का है। इस दुर्ग में प्रवेश करने का मार्ग अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ और संकरा है। इस दुर्ग का जीर्णोद्धार भी महाराणा कुंभा द्वारा कराया गया था। प्रताप ने गोगुन्दा में जमा कोष को आवरगढ़ एवं कुंभलगढ़ में स्थानान्तरित कर दिया। उसका अनुमान था कि मुगल सेना राजधानी की ओर ही बढ़ेगी, अतः गोगुन्दा के आम नागरिकों को भी उसने स्थानान्तरित करा दिया था। इसी बीच उसे पता लगा कि मानसिंह मुगलवाहिनी को लेकर मेवाड़ पर विजय स्थापित करने निकल पड़े हैं।

पिछले दो-तीन वर्षों की तैयारी इतनी अधिक थी कि महाराजकुमार अमरसिंह ने अपने जैसे युवकों की बात महाराणा जी तक पहुँचाई। उसने अपने पिताश्री से निवेदन किया-"दाजीराज ! आप यदि आज्ञा दें तो कुछ निवेदन करूँ।"

"अवश्य कहें, महाराजकुमार !" प्रताप की निगाहें एक साथ सामने खड़े युवापुत्र को सिर से पांव तक परख गई।

"हमारे युवकों का विचार है कि इस बार हरावल में रहने का अवसर हमें दिया जाए।"

"क्यों ? ऐसी क्या बात हुई कि आज का युवावर्ग आगे आना चाहता है।"

"ऐसा तो कुछ नहीं है, परन्तु सात-आठ वर्ष पूर्व इन युवकों के पिता, बड़े भाई, बहनोई, मामा आदि चित्तौड़गढ़ के युद्ध में काम आए थे। अब ये युवक चाहते हैं कि उनके पूर्वजों के रक्त का बदला लिया जाए।"

"तो यह बात है। आप किस जगह लड़ना पसंद करेंगे ?" प्रताप का प्रश्न भी अभी पूरा नहीं हुआ था कि ग्वालियर नरेश रामसिंह पवार ने कक्ष में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने पूछा-

"बाप-बेटों में क्या सलाह-मशवरा हो रहा है ?"

"वैसे ही, महाराजकुमार एक प्रस्ताव लेकर आए हैं कि उन्हें मुगलों की सेना से दो-दो हाथ करने का अवसर दिया जाए।" प्रताप ने रामसिंह की प्रतिक्रिया जानने की इच्छा से कहा।

"यह तो शुभ संकेत है। जिस देश का युवा वर्ग सत्य के लिए देश के शत्रुओं से लोहा लेने में इतना आतुर हो, वह देश धन्य है। आपने इन्हें क्या उत्तर दिया ?" रामसिंह ने पूछा।

"मैंने यह जानना चाहा है कि ये युवक युद्ध का मोर्चा किस स्थान पर खोलना पसंद करेंगे ?" प्रताप ने कहा।

"हम लोगों का विचार है कि जैसे ही मुगल सेना मांडलगढ़ से बाहर निकले, हम उनके सामने हो जाएँ।" अमरसिंह ने उत्तर दिया।

"आपका अति उत्साह ही यह बात कह रहा है।" रामसिंह ने टिप्पणी की।

"मुझे अभी यह भी सोचना शेष है कि युवकों को युद्ध में झोंका जाए या नहीं। दूसरा प्रश्न यह भी विचारणीय है कि युद्धस्थल कौनसा चुना जाए, क्योंकि उनकी सेना मैदानों में लड़ने को अभ्यस्त है अतः मांडलगढ़ के बाहर का क्षेत्र मैदानी होने के कारण उनके अनुकूल होगा।" प्रताप ने युवक अमरसिंह का उत्साह ढीला कर दिया, फिर भी अमरसिंह ने दूसरा प्रस्ताव किया-

"आप यदि इससे सहमत नहीं हों तो हम जहाजपुर की पहाड़ियों का सहारा लेकर आमेर रियासत के मालपुरा को ही लूट लें ताकि मानसिंह जी हमें गोगुन्दा में ढूंढें और हम उनके राज्य को लूट कर युद्ध की क्षतिपूर्ति करेंगे।"

"युद्ध का निर्णय युद्ध समिति की बैठक में लिया जाएगा। आपके विचारों को निर्णय लेते समय ध्यान में रखा जाएगा। आपने युद्ध में भाग लेने के विचार बताकर हमें उत्साहित किया है। मैं आपके सुझाव सुनकर बहुत प्रसन्न हूँ।" प्रताप ने वार्तासूत्र का समापन करते हुए कहा।

अमरसिंह प्रणाम कर कक्ष से बाहर हो गया। प्रौढ़ रामसिंह का हृदय भी भर आया था। युवकों के विचार से वह बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने कहा-

"प्रतापसिंह जी ! इसी को संस्कार कहते हैं। आप लोगों का संघर्ष इन युवकों में किस प्रकार का जोश भर रहा है, यह आपने देख भी लिया। ये युवक स्वयं के लिए भोग, राग, संगीत, नृत्य आदि की माँग नहीं कर रहे हैं। इनका लक्ष्य है धरती के शत्रुओं का विरोध करना। आने वाली संतति में यदि ये भाव स्थाई रह सके तो हमारा जीवन सार्थक कहा जाएगा। यदि स्वाभिमान बेचकर हम सुख-सुविधा के साधन एकत्रित कर अपने बच्चों को दे जाएँ, इससे न इन बच्चों का भला होगा न हमारा। यदि बच्चों में सद्‌गुणों के भाव बने रहें तो वैभव उनके लिए किसी कीमत का नहीं होगा।" रामसिंह आज वास्तव में बहुत प्रसन्न थे।

"रामसिंह जी ! हमारे पूर्वजों ने मूल्यों की ही तो लड़ाई लड़ी है। मूल्यों के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को स्वयं से ही लड़ना होता है। व्यक्ति के मन में बैठा लोभ, सुख सुविधा का भाव, आलस्य की वृत्ति, कामोपभोग के दुर्भाव उसे अंदर ही अंदर खोखला करते रहते हैं। अतः मूल्य स्थापना का पहला अर्थ होता है स्वयं से युद्ध। यही युद्ध कालान्तर में सद्‌वृत्तियों एवं असद्‌वृत्तियों वाले लोगों के बीच होने लगता है। हमारा और मुगलों का मनमुटाव इसी पर आधारित है। हम कहते हैं कि हम आप पर आक्रमण नहीं करेंगे और ये चाहते हैं कि हमारा राज्य उनके राज्य में मिला लिया जाए। हम चाहते हैं मैत्री

वे चाहते हैं स्वामी और दास का संबंध। हम कहते हैं कि आप अपनी उपासना पद्धति श्वर की आराधना करो और हमें हमारी मान्यता के अनुसार चलने दो किन्तु उनका दबा भाव यह रहता है कि हम लोग उनकी आस्थाओं को भी स्वीकार कर लें। वे चाहते में बलपूर्वक दास बनाना और हम चाहते हैं आपस का समभाव।" प्रताप भी आज क हो गया था।

"प्रतापसिंह जी ! यह सब ताकत का खेल है। उनके पास सेना है, पैसा है, सत्ता सलिए जो कुछ वे कहते हैं वहीं सत्य है और हम जो कुछ सोचते हैं, वह गलत है। लोगों ने आपस में लड़-लड़कर अपनी शक्ति क्षीण कर ली है। वे लोग संगठित हैं, हम बिखरे हुए हैं। इससे बड़ा हमारा दुर्भाग्य और क्या होगा कि आज विदेशी लोगों की का नेतृत्व हमारा ही भाई मानसिंह कर रहा है। जिन राजाओं को विदेशियों को खदेड़ना ए था, वे ही उनके सहायक बने हुए हैं।"

"आपका कथन भी सत्य है, रामसिंह जी ! किन्तु अब समय आ गया है कि हम सम्बन्धी सोच को गति दें। शत्रु द्वार पर दस्तक देना चाहता है। आप क्या सलाह देंगे ?" ने विषय बदला।

"युवकों का सुझाव बहुत अच्छा है फिर भी मेरा सुझाव है कि मुगलों को पर्वतों ने दें ताकि उनकी तोपें और हाथी बेकार हो जाएँ।"

"इन बच्चों के दूसरे सुझाव पर आप क्या कहेंगे ?"

"यदि आप जहाजपुर में लड़ने की बात कहते हैं तो विचार बुरा नहीं है, किन्तु ही कमी मुझे इसमें दिखाई देती है कि हमें दो मोर्चे खोलने पड़ेंगे। इन मोर्चों की सी दूरी भी बहुत अधिक है। क्या हम इतनी साधन-सुविधाएँ जुटा पाएँगे ?"

"साधन सुविधाओं की दृष्टि से हम उतने सक्षम नहीं है कि दो मोर्चे खोल सकें उचित यही होगा कि हम सभी समीप ही रहें। वैसे भी मेरा विचार इन युवकों को में भेजने का नहीं है। मुगल सेना से हमें पता नहीं कब तक लड़ना पड़ेगा ? मुझे भी तौड़गढ़ के युद्ध में भाग लेने से मना किया था और यह निर्णय उचित भी था क्योंकि मैं महाराणा सांगा के समय से चले आए युद्ध को जीवित तो रखे हुए हूँ।"

"आप तीसरी पीढ़ी में हैं, जिन्हें यह संघर्ष करना पड़ रहा है। मैं तो मेवाड़ के कों की हिम्मत की दाद देता हूँ।"

"यह तो आपका बड़प्पन है, रामसिंह जी।"

दूर मंदिर से घंटियों की आवाज सुनाई देने लगी थी। नगाड़ों एवं ढोल की धमक वातावरण में मुखरित होने लगी। दोनों वीरों ने प्रभु का स्मरण किया और आसन कर उठ खड़े हुए।

□

(12)

गोगुन्दा, उदयपुर से सड़क मार्ग से लगभग 35 किलोमीटर दूर है। उदयपु यदि प्राचीन मार्ग, बड़ी-मदार होकर जाया जाए तो यह दूरी 25 किलोमीटर से अधिक है। उस समय उदयपुर के नाम पर दो कमरे बने थे जिसे राजप्रासाद कहा जा सकता गोगुन्दा चूंकि राजधानी थी, अतः उदयपुर का उपयोग अग्रिम चौकी के रूप में लिया था। गोगुन्दा से उदयपुर उत्तर-पूर्व दिशा में है। यहाँ से दक्षिण दिशा की ओर कोल्या आवरगढ़ का दुर्ग स्थित है। गोगुन्दा से इन स्थानों की सीधी दूरी लगभग 30 किलोमीट है। इसके अलावा गोगुन्दा से लगभग पश्चिम दिशा की ओर रणकपुर की प्रसिद्ध प जिसकी दूरी भी 30-35 किमी. है। गोगुन्दा से भूताला-लोसिंग होकर हल्दीघाटी त दूरी भी 30-35 किलोमीटर है। कहने का अर्थ यह है कि गोगुन्दा तक जाने के प्रमुख मार्ग उस समय में थे। इन सभी मार्गों को तंग घाटियों से होकर गुजरना हो गोगुन्दा से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग 35 किलोमीटर दूर कुंभलगढ़ का दुर्ग है मार्ग आज भी दुर्गम है, तो उस युग में इसकी दुर्गमता कितनी रही होगी, इसका अ सहज में ही लगाया जा सकता है।

आइये, हम उस युग के गोगुन्दा में रामसिंह तंवर के आवास पर चलते हैं। सा सी मोटी दरी बिछी हुई थी। सामने गद्दों पर मखमली चादर बिछी थी जिस पर महा प्रताप आसीन थे। महाराणा कल ही कुंभलगढ़ से यहाँ आए थे। राज्य परिषद की बै चल रही थी। इस बैठक में सम्मिलित थे-रामसिंह एवं उसका ज्येष्ठ पुत्र शालिवाहन, संग्रामसिंह, बीदा झाला, मानसिंह झाला, भीमसिंह डोडिया, डूंगरसिंह पंवार, शेरखान चौ पत्ता का पुत्र चूण्डावत कल्याणसिंह, दुर्गादास, हरिदास चौहान, नाथा चौहान, प्रधान भारमल, आलम राठौड़, नंदा प्रतिहार, सेदू महमूद खान, महाराणा का मामा मान सोनगरा, कुंभा पुत्र जयमल, भामाशाह, हकीम खां सूर एवं गोपीनाथ पुरोहित आदि।

सर्वप्रथम महाराणा ने ही बोलना प्रारम्भ किया-

"प्रभु एकलिंगनाथ के शासन की ओर से आप सभी उपस्थित बंधुओं का स्वागत करता हूँ। आज की बैठक का विषय आपसे छिपा नहीं है, तथापि मैं अपने मुंह कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आपको विदित ही है कि हमें घृत में मिला देने का प्र

ागरा की सल्तनत कर रहा है। ऐसा प्रयास पूर्व में भी खानवा एवं चित्तौड़गढ़ में हो चुका । इन दोनों महायुद्धों में हमने बहुत कुछ खो दिया । वीरों, वनिताओं एवं सामान्य जन । बहुत बड़ा भाग अकाल मृत्यु का वरण कर गया । अब पुनः उसी अध्याय को दोहराया एगा, ऐसा अनुमान है । शत्रु द्वार की ओर बढ़ रहा है । हमारे समक्ष इस युद्ध को टालने का विकल्प अब भी शेष है । वह यह कि प्रभु एकलिंगनाथ का यह चाकर उनकी सेवा ड़कर आगरा की सीढ़ियों पर अपनी एड़ियाँ रगड़े । अपनी बेटियों के डोले उनके हरम भेजे । यदि हमें यही करना था तो चित्तौड़गढ़ में तीस हजार नागरिकों और आठ हजार रों का बलिदान हमने क्यों कराया ? निश्चित ही हमारा ध्येय अपनी शान एवं आन-बान रक्षा सुनिश्चित करना रहा है ।

इस संकट की वेला में मेरा निवेदन है कि आप उचित निर्णय लेकर आगे की रेखा तैयार करें । समय की पुकार है कि आप सभी एकजुट होकर मेवाड़ के समक्ष आई ातियों को स्वीकार करें । प्रभु एकलिंगनाथ की धरती को आपके रक्त की पुनः वश्यकता पड़ी है । आप सदियों से इस धरा की माटी को अपने रक्त से सिंचित करते आए आपके पूर्वजों के शौर्य और अदम्य साहस के चिह्न आज भी आगरा के पास पीलिया ल, गागरोन, मांडू, ईडर, उज्जैन आदि दूरस्थ स्थलों पर देखे जा सकते हैं । उन्हीं पूर्वजों आन, परम्परा एवं विरासत को अक्षुण्ण बनाने के निमित्त आपसे सहयोग माँगा जा रहा । हमारे विकल्प, योग अथवा भोग, सर्वस्व बलिदान अथवा दुम हिलाकर रोटी माँगने, तंत्रता अथवा दासता, जैसे जीवन मूल्यों में से एक की ओर खड़े होने के हैं । यह सत्य है सत्य-मूल्यों को धारण करने में बहुत कुछ खोना पड़ता है । ये मूल्य पीढ़ियों के त्याग र बलिदान की बदौलत हमें मिले हैं । इनका रक्षण किया जाना आवश्यक है, ऐसा वचन प मुझे कई बार दे चुके हैं । इसके पूर्व कि आपके विचारों को सुनूँ, आपको मोटी-मोटी नकारी देना चाहता हूँ ।

आपको पता है कि मुगलों की सेना मानसिंह जी के नेतृत्व में मेवाड़ की ओर ा चुकी है । हमारी सूचनाओं के अनुसार उनकी संख्या लगभग पाँच हजार है । ये लोग इन ों मांडलगढ़ में पड़ाव डाले पड़े हैं । वहाँ बैठकर मुगलवाहिनी का प्रमुख संभवतया नी तैयारी एवं हमारी हलचल की जानकारी की प्रतीक्षा में लगा हुआ है । दुर्भाग्य से ाट अकबर ने काँटे से कांटा निकालने की नीति अपनाई हुई है । वह चाहता है कि हिन्दू रा जाएं । अब इन प्रश्नों पर आपकी सहमति आवश्यक है-

पहला प्रश्न यह है कि उस सेना से युद्ध किया जाए अथवा नहीं किया जाए । मेरे ा माफी माँग लेने पर इस युद्ध को टाला जा सकता है । आप सभी के परिवार आनंद में रह कते हैं । आम प्रजा को भी अपने माल-असबाब को लाद कर इधर-उधर भागने की वश्यकता नहीं होगी । आप इस पर अपनी प्रतिक्रिया दें ।

सभी सरदारों ने तलवारें खींचकर कहा कि युद्ध किया जाना चाहिए । एक भी ार इसके विपरीत नहीं गया ।

"अब दूसरा प्रश्न है–युद्ध कहाँ लड़ा जाए ? हमारे युवकों का सुझाव है कि जैसे ही मुगल सेना मांडलगढ़ के बाहर निकले हम उस पर टूट पड़ें । इस पर आपका क्या मत है ?" प्रताप ने पूछा ।

इस प्रश्न पर युवकों ने अपनी तलवारें खींचकर सहमति दे दी, किन्तु प्रौढ़ रामसिंह तंवर ने अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा–"युवकों ! आपके उत्साह की मैं प्रशंसा करता हूँ तथापि इस प्रस्ताव के विरोध में मेरे तर्क हैं । प्रथम तो यह कि मुगल सेना मैदानों में लड़ने की अभ्यस्त है । दूसरी बात यह कि उनकी संख्या अधिक है, तीसरी बात यह कि मैदानों में तोपों के प्रयोग की सुविधा भी उनके पक्ष में रहेगी । अतः मेरा सुझाव है कि उन्हें पर्वतों में आने दिया जाए और यहीं कोई उपयुक्त स्थान देखकर उनसे लड़ा जाए।"

"ऐसी कायरता की बात संभवतया ग्वालियर के रक्त में होगी । एकलिंग महाराज के इस राज्य में आपकी इस सलाह को माना जाना ठीक नहीं है ।" एक युवक कह गया। प्रताप ने एकदम स्थिति संभाली । उसने कहा–

"मैं युवक मित्र से कहूँगा कि व्यंग्य में बात नहीं करें । जिस प्रकार आदरणीय रामसिंह जी ने तर्क दिए हैं, उनका उत्तर शुद्ध तर्कों के आधार पर दिया जाए ।"

सभा में सन्नाटा छा गया । सभा में छाए कुहांसे को हटाने का प्रयत्न करते हुए पंडित गोपीनाथ जी ने कहा–"अन्नदाता ! ग्वालियर नरेश रामसिंह जी के तर्कों में वजन है।" इस कथन का समर्थन सलूम्बर राव ने भी कर दिया । सलूम्बर राव के इस सुझाव पर भी विचार किया गया कि गोगुन्दा मार्ग में आने वाली हल्दीघाटी को युद्ध स्थल के लिए निश्चित किया जाए । उनका सुझाव भी मान लिया गया ।

"मेरा अगला सवाल युद्ध नीति को लेकर है । आप यह बताएँ कि उनसे खुला युद्ध किया जाए या छापामार युद्ध ?" प्रताप निर्णय लिए जाने की आतुरता में था ।

"हम क्षत्रिय हैं, छापामार युद्ध कायरों का युद्ध होता है ।" भीमसिंह डोडिया सबसे पहले बोला ।

"आप इस पर भी पुनः विचार करें । हमारी संख्या कम है, इसका ध्यान अवश्य रखा जाए ।" रामसिंह ने उत्साह के प्रवाह को रोकने की चेष्टा की ।

"जिन लोगों को अपने प्राणों का मोह हो वे छापामार प्रणाली को ही पसंद करेंगे, अन्नदाता !" भीमसिंह दुबारा कह उठा ।

"जिन्हें युद्ध में तलवार चलाना आता है, वे तो प्रत्यक्ष युद्ध ही पसंद करेंगे । जिन्हें कमरों में बैठकर राजनीति पर चर्चा करने का अभ्यास हो वे छापामार प्रणाली के पक्ष में होंगे ।" इस बार देवगढ़ के रावत सांगा ने व्यंग्य बाण छोड़ा । मेवाड़ के कुछ सामंतों में ग्वालियर से आए रामसिंह के प्रति कुछ ईर्ष्या भाव पैदा हो गया था, क्योंकि महाराणा अन्य सामंतों की अपेक्षा रामसिंह से सलाह लेना ज्यादा पसंद करते थे । रावत सांगा की बात का कई युवकों ने इतना जोर से समर्थन किया कि बेचारे रामसिंह की आवाज तूती बनकर रह गई । कुल मिलाकर प्रत्यक्ष युद्ध लड़े जाने की स्वीकृति दे दी गई ।

"सामंतों के इकलौते पुत्रों, छोटे बच्चों एवं समस्त राजपरिवार की महिलाओं को कुंभलगढ़ और आवरगढ़ के दुर्गों में भिजवाने की व्यवस्था प्रधानमंत्री जी कल ही करेंगे। शेष सभी पुरुष वर्ग के वृद्धों को भी यथासंभव सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिया जाए। इसी प्रकार चाहूँगा कि मेवाड़ के महाराजकुंवर अमरसिंह जी को भी युद्ध से दूर रखा जाए।" प्रताप ने अभी बोलना समाप्त भी नहीं किया था कि कुंवर अमरसिंह खड़े हो गए। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा- "अन्नदाता ! मैं चाहता हूँ कि हल्दीघाटी के युद्ध में जाने की मुझे भी इजाजत दी जाए।"

"नहीं, नहीं" के स्वर चारों ओर से उछल पड़े। सलूम्बर राव ने भी अमरसिंह की बात को ठुकरा दिया। भावी महाराणा को युद्ध में भेजा जाना नीतिसंगत नहीं माना गया।

"यदि अमरसिंह जी की यही इच्छा है तो मैं इन्हें युद्ध स्थल के पीछे रखी जाने वाली आरक्षित खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र एवं कोष का संरक्षक नियुक्त करता हूँ और चाहूँगा कि आपका दल किशोरों और कुछ युवकों को लेकर निर्धारित स्थान पर पहुँच जाएँ और वहाँ संदेश की प्रतीक्षा करें।" प्रताप ने निर्णय दे दिया। इसके बाद हरावल, चंदावल, सेना के मध्य, दक्षिण और वाम पार्श्वों में किसको रखा जाना है, उस पर चर्चा हुई।

प्रत्येक व्यक्ति शब्दों की राजनीति को न्यूनतम करने पर उतारू था। बात करना, भूमिका बांधना, विश्लेषण करना मेवाड़ के सैनिकों के गुण नहीं थे। वे चाहते थे त्वरित निर्णय, निर्भय आचरण और आग में कूद पड़ने के आदेश। उत्साह अतिरेक पर था। घर-बार, बच्चों-बूढ़ों, माँ-बहनों, पत्नि-प्रेयसियों की ओर से सबका ध्यान हट चुका था। उनके रक्त की प्रत्येक बूंद युद्ध की ललकार से गतिमान थी। सोते-जागते दिवास्वप्न देखने लगे कि वे किस शस्त्र का प्रयोग शत्रु के कौनसे मर्मस्थल पर करेंगे। धनुष-बाण का प्रयोग, भाले के प्रयोग एवं तलवार की पैंतरेबाजियों के अभ्यास घर-घर में दिए जा रहे थे। जिन लोगों ने युद्ध नहीं देखा था उन्होंने भी प्रताप से आरक्षित सेना में जाने की स्वीकृति चाही थी। रणभेरियों, रणकंकणों, नगाड़ों, घोसों एवं बाँक्यों की ध्वनियाँ वातावरण में व्याप्त थीं। आम आदमी भी अपनी लाठी को इस प्रकार तान कर चलता था मानो उसने भाला या तलवार पकड़ रखी हो। बच्चों के खेलों में भी युद्ध का खेल प्रमुख होता था। कुछ बच्चे टोपे ओढ़कर मुगल सेना बन जाते तो दूसरे बच्चे हर-हर महादेव के नारे बोलकर कंटीले पथरीले मार्गों पर दौड़ लगाते थे। कुछ बच्चों ने गधों और कुत्तों को ही मुगलों का प्रतीक समझ, उनके पीछे लाठियाँ लेकर दौड़ लगाना शुरू कर दिया था। युद्ध के अलावा कोई भी राग सुनाई नहीं देता था।

ऐसे ही समय में चारण कवि अपनी नई कविता गा-गाकर युवकों में उत्साह बढ़ा रहा था। पूर्वजों के इतिवृत्त को अपनी ओजमयी भाषा में सजाकर वह आम चौराहों पर गाकर सुनाता था। कवि ने लगभग एक हाथ लम्बे डंडे पर घुंघरू बांध दिए थे। गीत के साथ डंडे को दूसरे हाथ पर फटकार-फटकार कर छम-छम की टेक भी लगाता रहता था। कई युवकों को कवि के गीत याद हो गए थे। वे उन गीतों को मस्ती में गाते-नाचते अपने उत्साह को प्रकट कर रहे थे। महिलाओं का यह कथन सर्वत्र सुना जाता था कि "आज के लिए ही तो पुत्रों को जन्म दिया था।" विजय की कामना से कई महिलाओं ने व्रत-अनुष्ठान

एवं मनोतियाँ करना शुरू कर दी थी । बड़ी-बूढ़ी औरतें युद्ध परक कहानियों से परिवार के मनोबल को साधे हुए थी । सामान्य से सामान्य व्यक्ति के मन में भी घर-बार उजाड़ने के आगरा के सैनिकों के प्रति दुर्भाव भरा हुआ था ।

महाराणा प्रताप का प्रत्येक शब्द न केवल सैनिकों अपितु प्रजा के लिए वेद-वाक्य के समान आदरणीय था । उसका एक-एक संकेत हृदय की गहराई तक असर करता था उसकी क्रियाओं की नकल करने में युवकों को गर्व का अनुभव होता था । गलियों में खेलने वाले बच्चे तक प्रताप की भाँति अकड़कर चलते थे । उनकी वाणी तक में प्रताप के लहजे की नकल की जाती थी । प्रताप जहाँ भी जाता, महिलाएँ पल्लू बिछाकर उसे प्रणाम करती दिखाई देती थी । बुजुर्गों के हाथ उसके मस्तक पर फिरा करते थे । इन दिनों प्रताप ने भी अपने बचपन को दोहराना आरम्भ कर दिया । वह धरती पर सोता था, पत्तल-दोनों में भोजन करता था । जो भी उसके साथ होते उन्हें साथ बिठाकर भोजन किया जाता था । वह इस बात के लिए चिंतित रहता था कि जो भी व्यक्ति जिस किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा करे, वह उसे तत्काल सुलभ करा दी जाए ।

चारण कवि ने गोगुन्दा के एक चौराहे पर अपना गीत समाप्त किया ही था कि एक सैनिक ने उसके कान में कुछ कहा । कवि अपने हाथ में डंडे को पकड़ कर सैनिक के पीछे-पीछे चल दिया । गोगुन्दा की गलियों को पार करते हुए वह गाँव के एक छोर में बसी ब्रह्मपुरी में पहुँच गया । वहाँ जाकर एक आवासीय भवन का द्वार खटखटाया ।

"द्वार खुला है, कविराज ! भीतर आ जाइए ।" भवन के भीतर से आवाज गूँजी ।

"प्रणाम विप्रवर ।"

"स्वागत है, कविराज ! कई दिनों से आपकी टोह में था । आज मेरी आकांक्षा पूरी हुई ।" भवन के स्वामी ने कहा ।

"आप भूमिका नहीं बनाएँ । मुझे आज्ञा दें कि मेरे लिए क्या करणीय है ?" चारण कवि को एक क्षण भी व्यर्थ खोना पसंद नहीं था ।

"आपको बधाई देकर कांटों का ताज आपके सिर पर रखना चाहता हूँ ।"

"पंडित जी पहेलियाँ नहीं बुझाएँ । जो कुछ कहना हो स्पष्ट एवं सरल भाषा में कहें ।"

"कविराज, आपके घुमक्कड़ जीवन का अंत हुआ चाहता है । आपने खूब कविताएँ सुनाईं । लोगों में जोश भरने का पूरा प्रयत्न रहा । अब मेरे दो चार प्रश्नों का उत्तर दें ।"

"पूछें ।"

"आपने विवाह क्यों नहीं किया ?"

"यह मेरा निजी मामला है । संभवतया आप सीमा का अतिक्रमण कर रहे हैं ।"

"फिर भी मुझ प्रौढ़ का यह आग्रह है कि आप जो कुछ हो सत्य-सत्य कह दें ।"

"मेवाड़ के गूढ़ पुरुष को मेरा सत्य समझकर क्या मिलेगा ?"

"आप केवल प्रश्न का उत्तर दें। समय की कमी मेरे लिए भी वैसी ही है, जैसी आपके लिए।"

घारण कवि चुप रहा। वह नहीं चाहता था कि मन के भीतर दबा कोई भाव चेहरा पर आ जाए।

"चलिए मैं ही बता देता हूँ। आपने अपने पिता को वचन दिया था कि जीवन के अंतिम क्षण तक आप महाराणा जी की सेवा करेंगे। सेवा में कमी नहीं आ जाए, इस कारण आपने विवाह न करने का भी निश्चय किया था।"

"नहीं.... । मैंने किसी महाराणा के लिए कोई कसम नहीं खाई थी।"

"फिर आपने वर्षों तक प्रतापसिंह जी के अंगरक्षक पद का भार वहन क्यों किया ?"

"मुझे प्रतापसिंह जी से प्रेम था, प्रेम है और प्रेम रहेगा। मेरा प्रेम किसी राज्य के महाराणा के प्रति नहीं है। यह प्रेम प्रवाह मात्र प्रताप के लिए है। यही कारण है कि मैं आजन्म उनकी सेवा में रहना चाहता हूँ।"

"पिछले तीन वर्षों से तो आप कुछ नहीं कर रहे हैं। आपने अंगरक्षक का काम क्यों छोड़ा ?"

"अब वे महाराणा हैं। महाराणा की सुरक्षा करना आप जैसे गूढ़ पुरुषों का काम है अतः मैं स्वेच्छा से अपने पद से हट गया।"

"प्रतापसिंह जी ने बहुत कुछ देना चाहा, किन्तु आपने कुछ लिया नहीं। इसका कोई विशेष प्रयोजन ?"

"इसके दो प्रयोजन हैं। पहली बात तो यह कि मेरे आश्रयदाता मानसिंह जी सोनगरा ने इतना दिया हुआ है कि मेरा जीवन आराम से निकल सकता है। मैंने परिवार बसाया नहीं, अतः आगे के लिए मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। दूसरी बात यह है कि मेरे आश्रयदाता के प्रतापसिंह जी के साथ मामा-भाणेज के सम्बन्ध हैं। जिस प्रकार वे मानसिंह जी के भाणेज हैं, उसी प्रकार वे मेरे भी भाणेज हुए। क्या कोई मामा अपने भाणेज की सहायता के बदले में कुछ लेना चाहेगा ?"

"आप धन्य हैं !"

"पंडित जी आप इतनी व्यर्थ की बातें क्यों पूछ रहे हैं ?"

"इसलिए कि फांसी के पूर्व व्यक्ति से कुछ तो पूछना ही चाहिए।"

"क्या मुझे फांसी दी जा रही है ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"आप बहुत बोल चुके। गली-चौराहों पर बहुत गा चुके। अब आपकी वाणी को विराम दिया जा रहा है। क्या कविता को विराम देना फांसी से किसी कदर कम है ?"

"पंडित जी, मेरा दम घुटा जा रहा है। आप जो कुछ कहना है साफ-साफ कहें।"

"तो पढ़ लीजिए यह आदेश । यह आदेश प्रतापसिंह जी के हस्ताक्षर एवं मुद्रा से अंकित है । यदि मुझसे कुछ पूछना हो तो आज की संध्या तक आपके लिए मैं सेवा देने के निमित्त तत्पर हूँ । कल से मुझे राज्य के अन्य कार्यों के संपादन हेतु प्रस्थान करना है।" पंडित जी के कथन को सुनकर उसने पत्र खोला । उसे पढ़कर उसका चेहरा लाल हो गया।

"पंडित जी, आपने यह क्या किया ? क्या यह सब अब मुझसे हो पाएगा ?"

"क्यों नहीं ? जब मुझे यह पद दिया गया था तब मेरी भी यही स्थिति थी।"

"परन्तु मैं और मेवाड़ के प्रमुख गूढ़ पुरुष का दायित्व ?"

"अब आपको ही यह पद संभालना है । आप चाहें तो मैं आपको भारत में फैले दूतों, सहयोगियों और शत्रुओं के बारे में कुछ बता दूँ ।"

"आज ही सब कुछ करना है ? मुझे कुछ समय तो देते ?"

"अब मुझे समय नहीं है । जो आज करना है, वह अभी से प्रारम्भ करें। कल का सूर्य आपको और मुझे कितना दूर कर दे, इसका कोई अनुमान नहीं है ।" पंडित जी के इस कथन के साथ ही चारण कवि की वाणी को मानो विराम लग गया । कुछ समय पूर्व तक वह गलियों का गायक था और अब बन गया था, मेवाड़ राज्य का गुप्तचर

(13)

गोगुन्दा-भूताला-लोसिंग-हल्दीघाटी-खमनोर-मोलेला-मोही, यह मार्ग है गोगुन्दा पहुँचने का । अरावली की उपत्यकाओं में पहुँचने का प्रमुख द्वार मोही ग्राम है। यह गाँव बनास नदी के तट पर बसा हुआ है । आज बनास नदी सूखी पड़ी रहती है किन्तु इन पंक्तियों के लेखक ने बचपन में इसको सदानीरा के रूप में देखा था । आज से सवा चार सौ वर्ष पूर्व इसमें वर्ष भर पानी रहता होगा, यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। यही कारण है कि जब भी मुगल सेना अरावली में आती, बनास नदी की घाटी के साथ-साथ चलती रहती थी । मोही गाँव से मोलेला गाँव लगभग पच्चीस किलोमीटर दूर है । मोलेला से लोसिंग गाँव तेईस किलोमीटर दूर है । इसी प्रकार लोसिंग और गोगुन्दा के बीच की दूरी भी लगभग इतनी ही है । मोलेला और खमनोर के बीच में बनास नदी का बहाव क्षेत्र है। मोलेला गाँव से लगभग आधे किलोमीटर पर बनास नदी है । इस नदी से कोई दो किलोमीटर दूर खमनोर गाँव है । खमनोर से लगा हुआ हल्दीघाटी का मुहाना

किलोमीटर दूर है । हल्दीघाटी एक संकरा दर्रा है । इस घाटी से आरम्भ होता है दो हाड़ियों के बीच का तंग रास्ता । यह तंग रास्ता लगभग तीन किलोमीटर लंबा है ।

मुगल सेना ने मांडलगढ़ छोड़ दिया । जून का महिना आरम्भ हो गया था । मेवाड़ में जून का महिना भीषणतम गर्मी का हुआ करता है । सुबह और सायंकाल के समय मुगल सेना चलती रहती थी । दोपहर में घोड़ों, हाथियों एवं सेवकों को विश्राम दिया जाता था । सेवकों के अग्रिम दल सुविधाजनक स्थान पर अपना पड़ाव डाल दिया करते थे । इस प्रकार कई पड़ावों पर अपने डेरे डालते हुए मानसिंह के नेतृत्व वाली सेना मोही गाँव में पहुँची । यहाँ की भूमि फूंकी जा चुकी थी । भूमि फूंकना प्राचीन युद्ध शैली थी । जब भी कोई शत्रु ना आती थी तब आदेशों की अनुपालना में नागरिक गाँव के गाँव खाली कर जाते थे । जब ये लोग अपना गाँव खाली करते, खेतों में आग लगा देते थे । वनों में भी आग लगा देते । पेड़ काट-काटकर मार्ग अवरुद्ध कर देते थे । जलस्रोतों में जहर मिला देते थे । शत्रु को सुविधाएँ न मिल सकें, ऐसा प्रयास किया जाता था । इस प्रक्रिया को भूमि फूंकना कहा जाता था । मोही गाँव भूमि फूंक प्रक्रिया से गुजर चुका था । मानसिंह ने अरावली के सिंह द्वार के रूप में प्रसिद्ध मोही गाँव में अपना डेरा डाला । इसके बाद अगला पड़ाव मोलेला का तय किया । जब भी मुगल सेना आगे बढ़ती, पीछे वाले पड़ाव पर अपनी चौकी स्थापित करके आगे बढ़ती थी, ताकि संचार व्यवस्था ठीक से बनी रह सके । मोही में चौकी स्थापित कर दी गई । सेना का अब पड़ाव था, मोलेला गाँव में । इस गाँव के आगे बनास नदी का बहाव था । नदी का एक पतला सा रेला स्थाई रूप से बह रहा था । हाथियों और घोड़ों को नदी के तट पर ही रखा गया । खेमे गाड़े जा चुके थे ।

उधर प्रताप ने भी गोगुन्दा छोड़ दिया । हल्दीघाटी के दर्रे सहित तीन किलोमीटर की दूरी वाले स्थल को युद्ध क्षेत्र के रूप में चुना गया । प्रताप, मुगल सेना की गतिविधियों को परख रहे थे । प्रति प्रहर कोई न कोई आकर मुगलों की तैयारी की खबरें दे जाता था । अभी ठीक से जम ही नहीं पाए थे कि एक दिन प्रातः एक अनुचर दौड़ता हुआ आया । लगता था जैसे बड़ी दूर से दौड़कर आ रहा हो । प्रताप अपने सेनानायकों के साथ चर्चा में संलग्न थे । उसे दौड़ते हुए देख प्रताप ने चर्चा स्थगित कर दी । वे एकटक उस भील युवक की ओर देखते रहे । वह सीधा प्रताप के पास आ गया । वर्षों से प्रताप ने आदेश दिया हुआ था कि कोई भी नागरिक कभी भी किसी भी समय महाराणा से मिल सकता था, मिलने वाले को किसी भी प्रकार की तलाशी या पूछताछ के दौर से नहीं गुजरना पड़ता था । वह सीधा आकर प्रताप के चरणों में गिर पड़ा–

"क्या हुआ किशना...? क्या खबर है ?" प्रताप ने प्रेमपूर्वक भील युवक को उठाया । भील युवक का सांस फूला हुआ था, वह मात्र इतना ही बोल सका–"अन्नदाता ! अकेले में... ।" प्रताप ने अपने सामंतों को संकेत से थोड़ा दूर जाने का आदेश दिया । अब तक वह थोड़ा स्वस्थ हो चुका था ।

"बोल, क्या कहना चाहता है ?"

"अच्छी खबर है ।" किशना अब संयमित हो चुका था ।

"क्या खबर है ?"

"अन्नदाता ! मानसिंह जी पास में ही शिकार खेल रहे हैं । उसके साथ लगभग पचास आदमी होंगे ।"

"किस स्थान पर है ?"

"हल्दीघाटी और खमनोर गाँव के बीच के जंगलों में । आप हुकुम दें तो गोफणों से पत्थर फेंक कर उनके माथे लाल कर दें ।"

"किशना... । वास्तव में तू बढ़िया खबर लाया ।" महाराणा ने अपने गले की स्वर्ण कंठी उतार कर उसके गले में पहना दी ।

"अन्नदाता, मुझे इनाम नहीं, आदेश चाहिए । आप हुकुम दें । मुझे जल्दी जाना है ।"

"ऐसी भी क्या जल्दी है ?"

"जल्दी है अन्नदाता । मेरे साथी सूरज के सिर पर आने तक प्रतीक्षा करेंगे । यदि मैं देर से पहुँचा तो वे लोग मानसिंह का सिर फोड़ देंगे ।"

"अच्छा... । ऐसा करो उन्हें जाकर रोक दो । हम लोग ही कुछ इन्तजाम करते हैं । और कोई खबर ... ?"

"बस अन्नदाता, अभी तो इतना ही ।" किशना ने जल्दी में धोक लगाई और उल्टे पांव दौड़ पड़ा । गले में पड़ी सोने की कंठी उछल-उछल कर उसकी गति को आनंदमयी बना रही थी । प्रताप ने कुछ दूर खड़े लोगों को बुलाकर खबर सुनाई । सबसे पहले हकीम खां सूर बोला-"हुजूर मुझे हुकुम दें । राजा मान का सिर लाकर आपके कदमों में नहीं रख दूं तो मुझे पठान मत कहना ।"

"हुजूर, हरावल तो हमारा है । यह आदेश मुझे मिले तो ठीक होगा ।" सलूम्बर के राव कृष्णदास की रोबीली मूंछों में छिपे मुंह से शब्द फूटे ।

"रामसिंह के होते हुए आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । आप यह आदेश मुझे दें । जवानी बीत जाने पर भी हाथ-पांवों में अभी खून बाकी है ।" इस बार रामसिंह ने कहा ।

भीमसिंह डोडिया कब चुप रहता । वह उमग पड़ा-"अन्नदाता मैंने ही मानसिंह को वचन दिया था कि उसके हाथी पर अपना घोड़ा नहीं चढ़ाया तो मुझे क्षत्रिय नहीं समझें जाए । मेरी प्रतिज्ञा पूरी करने का यही अवसर है ।"

"आपकी राय अच्छी होते हुए भी मुझे उचित नहीं लगती है ।" झाला बीदा ने कहा ।

"क्यों ?" एक साथ कई लोग पूछ बैठे ।

"आपका सुझाव धोखे पर आधारित है । हमें तो अन्नदाता ने यही सिखाया है कि शेर का भी शिकार करना हो तो पहले उसे सावधान किया जाए ।" झाला बीदा का तर्क वजनी था । उसके वाक्य का यह असर हुआ कि कई लोग जो बोल कर अपनी उपस्थिति बताना चाहते थे, चुप हो गए । प्रश्न नीति का था । धोखाधड़ी और शुद्धता के बीच चुनाव था । सबकी सुनकर प्रताप ने कहा-

"मित्रों, लोगों का यह मानना है कि युद्ध और प्रेम में सब कुछ जायज होता है किन्तु यह उन लोगों का विचार है जिनका इस धरती से कुछ भी लेना-देना नहीं है। हम लोगों की मान्यता है कि असुरक्षित, असहाय अथवा निर्बल पर हाथ उठाना पाप कर्म कहा जाता है। उचित होगा कि हम उन्हें सावधान कर दें। वैसे भी मानसिंह जी कोई पराए तो हैं नहीं। आज वे शत्रु सेना के सेनापति हैं। कल उनके दादाजी मेरे दादाजी के झंडे के नीचे खड़े रहते थे। आने वाले कल का भी क्या भरोसा है ? उनकी बुद्धि यदि कल बदल जाए तो पूरे भारतवर्ष का कल्याण हो सकता है।"

"आपके आदेश की पालना को मैं तत्पर हूँ।" हकीम खां सूर ने कहा।

"कौनसा आदेश ?" प्रताप स्वयं आश्चर्य में पड़ गए।

"अभी आपने कहा कि उन्हें सावधान करना आवश्यक है।"

"हाँ, कहा तो है ?" प्रताप ने स्वीकारा।

"तो मुझे आदेश दें कि मैं उन्हें सावधान कर दूँ।" हकीम खां की रोबीली आवाज गूंज उठी।

"आप उन पर शस्त्र नहीं चलाएँगे ?"

"मुझे मंजूर है। अब चलता हूँ, हुजूर।" के स्वर के साथ ही पठानों का सरदार घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा।

हल्दीघाटी के मुहाने पर एक छोटा सा समतल भाग है, जिसे इन दिनों बादशाही बाग कहा जाता है। उस युग में यह एक ऊबड़-खाबड़ स्थल था। मानसिंह जी वहीं शिकार अथवा प्रताप की सेना की टोह में अग्रिम मोर्चे पर अपने चहेते सैनिकों के साथ घोड़ों पर विचरण कर रहे थे। कुछ ही क्षणों के बाद चारों ओर फैले पर्वत शिखरों के छोरों से पत्थरों की बरसात शुरू हुई। सैनिक घबरा गए।

मानसिंह के पांवों तले धरती खिसक गई। आज के इस बियाबान में प्राणों पर बन आई। उसने आँख उठाकर देखा कि पर्वत शिखरों पर फैले भीलों के युवक गोफण में पत्थर भरे खड़े थे। कुछ ही दूरी पर हकीम खां सूर अपने साथियों के साथ चुपचाप खड़ा हुआ दिखाई दिया।

मानसिंह और उसके साथी भाग छूटे। किसी ने भी भागते सैनिकों पर आक्रमण नहीं किया। प्रताप की नैतिकता का पहला पाठ उन्होंने देख लिया। यदि इसके विपरीत स्थिति होती तो क्या मानसिंह प्रताप को छोड़ता ? मानसिंह का मन किसी गहरे सोच में अतृप्त हो गया। सम्राट अकबर का सेनापति होकर भी प्रताप जैसे छोटे से भूमिपति के समक्ष मानो वह बौना साबित हो गया। ऊपर का ऐश्वर्य यदाकदा व्यक्ति को बहुत बड़ा समझने का छलावा देता है। व्यक्ति स्वयं एवं उसके प्रशंसक, बाहरी ठाट-बाट के प्रभामंडल में स्वयं को देखकर नियन्ता बनने के स्वप्न देखने लगते हैं। इन स्वप्नों को ऐसे ही अवसरों पर झटका लगता है, जब स्वयं की क्षुद्रता की अनुभूति भीतर ही भीतर घुन की भांति खाती चली जाती है। प्रताप ने हकीम खां को भिजवाकर न केवल मित्रों के समक्ष उसे सीख दी, अपितु भोजन के समय दिए गए अपमान से भी एक बड़ा नैतिक प्रहार किया था। इस घाव

को वह कब चुका पाएगा, इसकी जानकारी उसका मन नहीं दे पा रहा था। मानसिंह सोचता-सोचता मोलेला स्थित अपने शिविर में लौट आया। मानसिंह को लगा मानों वह दृश्य नहीं एक स्वप्न था। हो सकता है, पर्वत शिखरों पर फैली भीलों की टोलियों को देखकर उसका मन बैठ गया हो।

प्रताप मन ही मन देख रहा था कि ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। महिलाएँ मनौतियाँ ले रही थी। देवरों पर भोपा लोग देव प्रतिमाओं के समक्ष प्रताप के जीवन की मंगल कामना कर रहे थे। भीख माँगने वालों से लेकर ऊँचे से ऊँचे सामंत के घर में मेवाड़ के विजय की कामना की जा रही थी। आखिर प्रभु ने इतना मोह, इतना प्रेम इन लोगों के साथ कैसे स्थापित करा दिया ? हमने इस प्रजा को क्या दिया ? हमारी जिद्द के कारण ये विस्थापित हुए, हमारे कारण इनकी आजीविका अस्थिर हो गई। हम लोग ही इसके दोषी हैं कि इनके बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पा रही है, फिर भी ये लोग मुझे क्यों चाहते हैं ? निरक्षर होते हुए भी मूल्यों के प्रति इनका समर्पण क्यों है ? लगता है, यह निश्चित रूप से दैवी प्रभाव है। भगवान एकलिंगनाथ के इस राज्य में केवल लंगोटी लगाकर विचरण करने वाला भील भी प्रभु के मूल्यों के प्रति समर्पित है। सत्ता, वैभव, ऐश्वर्य, शारीरिक सुखों जैसे शब्दों को भूलकर यहाँ का आम आदमी भूख, बेकारी और मृत्यु जैसे संकट की ओर क्यों बढ़ रहा है ? प्रताप उत्तर की तह में जाना चाहता था, किन्तु सलूम्बर राव कृष्णदास के निवेदन पर अन्तर्यात्रा बंद सी हो गई।

"अन्नदाता, अब चलना चाहिए। युद्ध की नीतियां, व्यूह रचना एवं कुछ विषयों पर आपसे चर्चा की जानी है।"

सभी सामंतगण चल दिए। देर रात तक मंत्रणा होती रही। युवक लोगों का आग्रह था कि हल्दीघाटी को पार कर शत्रुसेना पर आक्रमण किया जाए। रामसिंह का मत था कि मुगलों को हल्दीघाटी में घुसने दिया जाए और उन्हें संकरे में घेरा जाए। युवकों ने प्रौढ़ रामसिंह को कायर कह दिया। रामसिंह चुप हो गए। भीमसिंह डोडिया अपनी मूँछें तान कर सबसे आगे जाने वाले दल में अपना नाम लिखवाना चाहता था। रामसिंह असहाय हो गया। युवकों के समक्ष उसकी एक भी नहीं चली। प्रताप भी युवकों के साथ हो गए। रामसिंह ने अंतिम बार कहा-

"अन्नदाता, आप दुबारा सोच लीजिए। मैदानी युद्ध में उनका पलड़ा भारी हो सकता है। उन्हें घाटी में आने दीजिए।"

किन्तु उसकी आवाज किसी ने नहीं सुनी, डोडिया भीम की गर्जना सभी को सुनाई दी कि "आप लोग कोई भी जायें या न जायें। डोडिया भीम कल घाटी पार करेगा और अकेला ही मानसिंह पर झपटेगा।"

"आप अपना आवेश संयमित करें भीमसिंह जी" प्रताप के टोकने पर वह चुप हुआ। □

(14)

अट्ठारह जून, सन् 1576 का प्रातःकालीन सूर्य अभूतपूर्व ऊष्मा के साथ अपनी दैनिक यात्रा पर निकला। मेवाड़ी सेना के रणवाद्य बजने लगे। सेना युद्ध के निमित्त प्रस्थान करने को थी। अश्वों को गुड़ मिश्रित दलिया खिलाया गया। हाथियों की उदरपूर्ति घास-पूस एवं पत्तियों से सम्पन्न की गई। वीरों ने प्रातःकालीन आहार पूरा किया। मुहूर्तानुसार पंडितों ने स्वस्तिवाचन कर मांगलिक टीके आदि लगाकर वीरों का सम्मान किया। प्रथानुसार अफीम का घोल पिलाया गया। रणवाद्यों की धमक बढ़ने लगी। धौंसा की धमक, नगाड़ों की कड़िंग-धींग, थालियों एवं मृदंग की गतिमान ध्वनि, वांक्यों के आरोह के बीच की मादक अनुगूंज, रणकंकण की क्वणन्-क्वणन् की पुकार एवं ढोल की धम-धम वातावरण को एक अपूर्व उत्साह प्रदान कर रही थी। उत्साह का अतिरेक वीरों की नस-नस में व्याप्त था।

सूर्योदय से लगभग तीन घंटे बाद मेवाड़ी सेना का निशान का हाथी, मेवाड़ी ध्वज के साथ हल्दीघाटी से बाहर निकला। उसके ठीक पीछे था हरावल प्रमुख हकीम खां सूर एवं सलूम्बर राव कृष्णदास। सेना का प्रयाण अपने यौवन पर था। अग्रिम पंक्ति के सैन्य समूह ने आक्रमण कर युद्ध आरम्भ किया। सेना के दाएँ भाग का नेतृत्व कर रहे थे रामसिंह तंवर, उसके तीन पुत्र, भामाशाह और उसका भाई ताराचंद। बायां भाग झाला बीदा, झालामान के संरक्षण में था। प्रताप स्वयं चेतक घोड़े पर सवार होकर मध्य भाग में स्थित था। डोडिया भीम, देवगढ़ के रावत सांगा एवं जयमल राठौड़ का पुत्र रामदास मेड़तिया, हकीम खां के साथ अग्रिम पंक्ति में थे।

आक्रमण इतना तीव्र था कि मानसिंह की अग्रिम रक्षापंक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। देखते-देखते मुगलवाहिनी भाग निकली। मुगल सेना के साथ आए सैय्यद खदेड़ दिए गए। सैय्यद हाशिम घोड़े से गिर गया। आसफ खां पीछे हट गया। राणा के दोनों पार्श्व भारी पड़ रहे थे। मुगल सेना के साथ आए प्रसिद्ध लेखक बदायुनी ने लिखा है कि-"हमारी जो फौज पहले हमले में भाग निकली थी, नदी (बनास) को पार कर पाँच-छः कोस तक भागती रही। उसी समय मानसिंह की सेना के चंदावल (पीछे के भाग) की सुरक्षित सेना के संरक्षक मेहतर खां ने ढोल बजवा कर शोर मचवा दिया कि "बादशाह अकबर सेना लेकर आ गए हैं।" इसका प्रभाव यह पड़ा कि भागती हुई सेना के पांव जम गए। अब मेवाड़ी सेना घेरे में आ गई।

डोडिया भीम अपने घोड़े को लेकर सेना को चीरते हुए मानसिंह के हाथी पर झपटते हुए मारा गया। महाराणा प्रताप दोनों हाथ से तलवार एवं भाले को चलाता हुआ मानसिंह के हाथी के पास पहुँचा। चेतक ने अगले दो पांव हाथी के मस्तक पर टिका दिए। प्रताप ने भाले का वार किया किन्तु मानसिंह झुक कर वार बचा गया। भाला मानसिंह के सामने होदे पर लगकर रह गया, किन्तु इसी समय एक दुर्घटना हो गई। हाथी की सूंड मे तलवार बंधी थी। इसके वार से चेतक की एक टांग कट गई। चेतक लड़खड़ा कर अपने अगले पांवों को धरती पर ले आया। महाराणा प्रताप शत्रु से घिर गया। झाला मान, झाला बीदा और हकीम खां सूर तुरन्त प्रताप के पास पहुँचे। झाला बीदा ने राणा प्रताप का छत्र झपट कर अपने सिर पर रख लिया और स्वयं को राणा कहकर लड़ने लगा। इससे प्रताप पर दबाव कम पड़ गया। हकीम खां प्रताप को बचाता हुआ सेना के पीछे ले गया और प्रताप को लौट जाने की सलाह देकर पुनः युद्ध में उलझ पड़ा। इस बार हकीम खां के सामने था शक्तिसिंह। हकीम ने मुड़कर देखा कि महाराणा प्रताप के लड़खड़ाते घोड़े के पीछे दो मुगल सैनिक पीछा कर रहे थे। उसने तुरन्त सामने लड़ रहे शक्तिसिंह को ललकार कर कहा-"शक्ति! तेरा भाई संकट में है।"

"कहाँ... ?" शक्ति ने पूछा।

"वह देख... । घोड़ा घायल है। दो मुगल उसका पीछा कर रहे हैं।" हकीम का वाक्य अभी पूरा भी नहीं हुआ था कि शक्तिसिंह का घोड़ा वेग के साथ प्रताप के भागने की दिशा में दौड़ पड़ा।

चेतक महान अपना दम साधे दौड़ रहा था। उसकी एक टांग लटक रही थी किन्तु उसका स्वामी उस पर सवार था। स्वामीभक्त पशु अंतिम सांस तक दौड़ता रहा। यहाँ तक कि एक पहाड़ी नाले को भी कूदकर पार कर गया किन्तु अत्यधिक रक्तस्राव होने के कारण वह गिर गया। उस पशु ने अपना कार्य पूरा किया। प्रताप की आँखे डबडबा आईं। उन्होंने उसके मुँह को अपनी गोद में लिया। दोनों की आँखें मिली और चेतक का चैतन्य समाप्त हो गया। प्रताप की आँखों से सावन-भादों बरस पड़ा।

इतने में दूर से आवाज आई-"ओ नीले घोड़े के सवार .... ।"

प्रताप चौकन्ना हुआ। तत्काल खड़े होकर तलवार एवं भाले को संभाला। क्षण पूर्व की करुणा पुनः रौद्र रूप में प्रकट हो गई। उन्होंने देखा कि दूर से एक घुड़सवार दौड़ा आ रहा था। उसने आगे दौड़ रहे दो मुगल सैनिकों का वध किया और अब वह समीप आ रहा था। जिरह बख्तर के कारण घुड़सवार को पहचानने में थोड़ा विलम्ब हुआ। आगन्तुक ने दूर से ही शस्त्र फेंक कर पुकारा-

"भैय्या... ।"

"कौन, शक्ति ?"

"हाँ, भाई !"

"आप यहाँ कैसे ?"

"भैया, आप मेरा घोड़ा लेकर भाग जाएँ आपके प्रश्न का उत्तर जीवित रहा तो कभी दूँगा।"

"किन्तु तुम तो शत्रु सेना से हो ?"

"यह सत्य है । मेवाड़ के विरुद्ध तलवार उठाने का अपराध मुझसे हो गया है । क्षमा करें, अन्नदाता ।"

प्रताप के दोनों हाथ फैल गए । शक्तिसिंह प्रताप के पैरों पर गिर पड़ा । प्रताप ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया । दोनों की आँखें नम हो गईं । प्रताप बुदबुदाया-

"वाह प्रभु ! आपने आज यह कैसा संयोग मिलाया । मेरा बिछुड़ा भाई आज मुझे मिल गया ।"

"भैया, अब मैं चलूंगा ।"

"कहाँ ... ?" प्रताप ने पूछा ।

"आपके शत्रुओं की सेना में । बस इतनी सी विनती है कि आप मेरा घोड़ा स्वीकार कर लें ।"

"और तुम कैसे जाओगे ?"

"मैंने आपका पीछा कर रहे दो घुड़सवारों को मार गिराया था । उनके घोड़ों में से एक को मैं ले लूंगा । अब चलूंगा भैया । जय एकलिंग ।"

"जय एकलिंग"-प्रताप एकटक अपने भाई को जाते हुए देखता रहा ।

हल्दीघाटी की वह उपत्यका भाव विभोर हो उठी । एक ओर चेतक मरा पड़ा था । दूसरी ओर बिछुड़ा भाई जा रहा था । युद्ध का श्रम, चेतक की करुणा और भाई के स्नेह की त्रिवेणी प्रताप के मन को मथ रही थी । दोपहर ढल रही थी । थका हारा पंछी उधार के पंखों के सहारे अपने नीड़ की ओर लौट रहा था ।

□

(15)

गोगुन्दा के राज मार्ग पर भूताला गाँव स्थित है । दो पहाड़ियों के बीच बने तालाब के तट पर बसा यह गाँव गोगुन्दा की अग्रिम चौकी के रूप में प्रतिष्ठित था । इसी गाँव से कोई दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर एक पोला मगरा है । यह पहाड़ पोला है अर्थात् इसमें बनी गुफा पर्वत के भीतर तक चली गई है । कहते हैं, यह गुफा पर्वत के आर-पार निकल जाती है । इस गुफा को आजकल 'मायरा की घूणी' कहा जाता है । उस काल में 'मायरा की गुफा' कहा जाता था । यहाँ की स्थिति सामरिक दृष्टि से बड़ी ही महत्वपूर्ण थी । इस गुफा के प्रवेश द्वार पर खड़ा रहकर कोई भी व्यक्ति दस-पंद्रह किलोमीटर दूर से आते हुए सैनिकों को देख सकता था ।

हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध के समय मायरा की गुफा में महाराणा प्रताप व
राजकोष एवं सुरक्षित शस्त्रागार स्थापित किया गया था। इस गुफा की रक्षा का भार महाराणा
ने अपने पुत्र अमरसिंह, सहसमल और कल्याण को सौंपा था। प्रधानमंत्री भामाशाह का पुत्र
जीवाशाह भी वहीं था। वहीं पर अमरसिंह की बुआ का बेटा शत्रुशाल भी (झाला मान क
पुत्र) उपस्थित था। युद्धकाल में राजकुमारों एवं सामंतपुत्रों को द्वितीय रक्षापंक्ति के रूप
सुरक्षित रखा जाता था।

मायरा की गुफा के प्रवेशद्वार के समीप आम, नीम एवं पीपल के पेड़ों के प
बने चबूतरे में से एक पर कुंवर अमरसिंह अपने मित्रों के साथ युद्ध सम्बन्धी वार्तालाप
मग्न थे।

"भाई, सहस ! मुझे पिताजी की यह बात बिल्कुल पसंद नहीं कि वे स्वयं
हल्दीघाटी के मोरचे पर डटे रहें और हम जवान होकर यहाँ गुफा में हाथ पर हाथ धरे
रहें।" अमर के मन की कुंठा बोली।

"कुंवर, बड़े लोगों के विचारों को अपनी बुद्धि से तोलने का प्रयत्न उचित न
है। हमें तो अपने आप को सैनिक समझना चाहिए और सैनिकों का केवल एक ही
होता है कि वे आदेश का पालन करें। हमें इस गुफा में रहने का आदेश है, तो हम यहीं
रहें, और आगे के आदेश की प्रतीक्षा करें, यही हमारे लिए करणीय है।" सहसमल
मंतव्य प्रकट किया।

"मैं धर्म की चर्चा नहीं करता। मेरा मन तो कहता है कि मैं भी अपनी तल
के हाथ दिखाऊँ और शत्रुओं को समाप्त करूँ।" अमरसिंह ने कहा।

"यह स्वाभाविक है, कुंवर ! कौन क्षत्रिय युद्ध का अवसर आने पर घर बैठ
पसंद करेगा ?" शत्रुशाल कह उठा।

"भाइयों ! यह सत्य है कि युद्ध भावुकता नहीं है। यदि भावुकता में ही यु
लड़े जाते रहे तो विनाश से नहीं बचा जा सकता। मेरे गुरु व्यासजी एक बात कहा करते थे
अमर ने कुछ विराम के बाद फिर कहना आरम्भ किया, "कि संघर्ष गणित है, कविता नहीं
संघर्ष का एक-एक कदम गिन-गिनकर रखा जाता है। संघर्ष भावनाओं की उड़ान मात्र न
है कि एक ही झोंके में कूदकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया जाए। संघर्ष चाहता है धै
साहस और गणितीय बुद्धि।"

"कुमार ! यही तो गणित है कि आप यहाँ बैठे रहें और हमारे ज्येष्ठ एवं श्रे
रणक्षेत्र में अपने हाथ दिखाएँ।" जीवाशाह ने पहली बार होंठ खोले।

"कुमार, कोई दूत आपसे मिलना चाहता है।"

सुनते ही सभी साथी अमरसिंह को वहीं छोड़ गुफा के अन्दर चले गए।

"अरे कविराज, आप ! आप तो काफी थक गए हैं। क्या खबर है युद्ध की ?"

"युवराज, बहुत बुरी खबर है। खमनोर के पास जमकर युद्ध हुआ। झाला मान
डोडिया भीम और ग्वालियर के रामसिंह अपने बेटों के साथ स्वर्ग सिधार गए।"

"पिताजी कैसे हैं, कविराज ?" अमरसिंह के चेहरे पर आकुलता उतर आई।

"वे स्वयं तो सुरक्षित हैं । भामाशाह एवं उनके भाई ताराचंद भी सुरक्षित हैं । महाराणाजी का आपके लिए संदेश है।"

"क्या ?" अमरसिंह की भौंहें तन गईं।

"यह कि आप राजकोष एवं सुरक्षित अस्त्र-शस्त्रों को लेकर उभयेश्वर चले जाएँ। हमारी सूचना के अनुसार, मानसिंह की सेना इसी मार्ग से गोगुन्दा की ओर जाएगी, क्योंकि बिना राजधानी को अपने अधिकार में लिए उनकी विजय पूरी नहीं होगी।"

"और कुछ ?"

"बस, इतना ही । यदि आप कुछ कहना चाहें तो आज्ञा दें।" मेवाड़ राज्य का प्रमुख गुप्तचर चारण कवि हाथ जोड़कर प्रतीक्षा करने लगा।

"आप पिताश्री को मेरा प्रणाम निवेदन करना और एक बात उन्हें हमारी ओर से कह देना... ।"

"क्षमा करें कुंवर, आपका यह कहना कि 'हमारी ओर से', इसका क्या तात्पर्य है ?"

"हमारी ओर से का अर्थ है, मेरी तथा इस गुफा में फंसे मेरे जैसे युवकों की ओर से। उन्हें कहना कि वे घायलों को उभयेश्वर के मार्ग से झाड़ोल-कोल्यारी एवं आबरगढ़ भेज दें। मैं मार्ग को निष्कंटक बनाने की व्यवस्था कर रहा हूँ। साथ ही एक विशेष प्रार्थना है कि इस युद्ध में गए सैनिकों, सामंतों एवं अधिकारियों में से कोई भी आगे कार्यवाही नहीं करे। आगे का करणीय मैंने तय कर लिया है। मैं तथा मेरे साथी बिना जन एवं धन की क्षति किए कुछ करना चाहते हैं । उन्हें विश्वास दिलाएँ कि हम सभी सुरक्षित रहेंगे और ऐसा कुछ करना चाहेंगे कि मुगलों की बची-खुची सेना यह अनुभव करे कि मेवाड़ में अब भी दम शेष है।"

"कुमार, क्या यह आपका दुस्साहस नहीं है ?"

"है ! आप जाएँ और अन्नदाता को हमारा मंतव्य सुना दें। हम आज ही इस गुफा को छोड़ देंगे। एक बात और.... "

"क्या ?"

"भीलों के कुछ युवक इस पहाड़ी के नीचे बरगद के पास इकट्ठे हैं, आप उनमें से कुछ को मेरे पास भिजवा दें।"

अमरसिंह ने गुफा में प्रवेश किया। सभी भाइयों और मित्रों ने अमरसिंह को घेर लिया। अमरसिंह ने पूरा विवरण सुना दिया। युवकों में प्रतिकार की ज्वाला भड़क उठी।

"आप मेरी सुनें, भाइयों !"

"आज्ञा, कुंवर ! यदि इन शत्रुओं से बदला नहीं लिया तो हमने अपनी माँ का दूध ही लजा दिया-ऐसा समझना चाहिए।"

"भाई, मेरी भी एक बात सुन लें। इस आदेश को आप अपने तक ही रखें। मेरा सुझाव है कि सर्वप्रथम अन्नदाता की आज्ञा का पालन करें।" सहसमल ने अनुरोध किया।

"आज्ञा करें, कुमार !" शत्रुशाल ने अनसुनी करके कहा।

"भाई शत्रु, आपके पिताश्री ने स्वर्ग-गमन किया है, अत: आप विश्राम करें
अमरसिंह ने संवेदना-भरे स्वर में कहा।

"भैया अमर ! क्षत्रियों का जन्म ही इसी दिन के लिए होता है। आप आज्ञा
मुझे ऐसा कार्य बताएँ कि मैं अपने पिताश्री की कीर्ति को और उज्ज्वल कर सकूँ।"

"तो फिर आप इन युवकों में से पचास युवकों को लेकर इसी गुफा में पड़े
और जैसे ही मुगल सेना भूताला से आगे बढ़े, आप भीलों के झुंड सहित हमला बोल
उन्हें लूटें। स्मरण रहे कि अपने पक्ष का एक भी व्यक्ति हताहत नहीं हो।"

"ठीक है, युवराज, आपकी आज्ञा का अक्षरश: पालन होगा।" शत्रुशाल अ
व्यवस्था में जुट गया।

"जीवाशाह, आप सौ सैनिकों को साथ लेकर राजकोष और अस्त्र-शस्त्रों स
सुरक्षित कोल्यारी चले जाएँ।"

"जैसी आज्ञा, युवराज !"

जीवाशाह उठा और करणीय के निमित्त उपाय करने लगा।

"भाई सहस ! आप उदयपुर की ओर से आने वाले मार्ग को देखेंगे। मद
अपना मुख्यावास बनाकर आप भी वही करेंगे, जो मैंने भाई शत्रुशाल से कहा-अपने
सुरक्षित रखते हुए मुगल सेना की अधिक से अधिक लूट !"

सहसमल तत्काल आयोजन में लग गया।

"कल्याण, तुम सायरा का मार्ग देखना और मैं स्वयं उभयेश्वर से गोगुन्दा के
को रोकूंगा। हमारा पहला लक्ष्य होगा-मुगलों की रसद को लूटना। रसद कम होने प
इधर-उधर के मार्गों से बाहरी दुनिया से संपर्क करेंगे। हमें ऐसे लोगों को रोकना है।
अपनी टुकड़ी के लिए आवश्यक राशि एवं अस्त्र-शस्त्र जीवाशाह से प्राप्त कर लें।"

अमरसिंह ने सभी को उचित आदेश दिए।

लगभग दो घड़ी की अवधि में मायरा की गुफा में रखी गई सारी सामग्री जं
के मार्ग से कोल्यारी की ओर भेज दी गई।

मुगल सेना क्षत-विक्षत होकर ही गोगुन्दा पहुँची। मुगल सेना के उन बचे-
सैनिकों को रात होते ही पत्थरों, तीरों और बंदूक की गोलियों का शिकार होना पड़
रसद लूट ली गई। मुगल सेना को खाने के लाले पड़ने लगे। मुगलों का सबसे नजदीक
थाना मोही था। वहाँ से मंगवाई रसद को भी शत्रुशाल के साथियों ने लूट लिया। सेन
कुछ लोगों ने मिर्वा की ओर बढ़कर अनाज इकट्ठा करने का यत्न किया, कि
कल्याणसिंह के साथियों ने न केवल उन्हें लूटा, अपितु उस सैनिक टुकड़ी के आधे ल
को तीरों से बींध डाला।

मुगल सेना को वे विकट दिन जानवरों का मांस तथा कच्ची केरियाँ खा
गुजारने पड़े। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि विजय का दंभ भरने वाली मानसिंह की सेन
कई सैनिक भूख एवं पेचिश की बीमारी के कारण मर गए। विवश होकर मानसिंह
गोगुन्दा खाली करके लौटना पड़ा। इस लौटती सेना को भी जगह-जगह लूटा गया।
विजय कहें या पराजय ? मानसिंह जब अजमेर पहुँचा तो अकबर ने कई दिनों

तथाकथित "विजयी" सेना के सेनापति को मुलाकात का समय ही नहीं दिया। उसकी ड्योढ़ी माफ कर दी गई।

इस प्रकार मानों पानी की एक लहर उमड़ी और मेवाड़ी चट्टानों से टकराकर, अपने को विजित समझती हुई, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए पुनः सागर में लौट गई।

मानसिंह को अपने फूफा बादशाह अकबर के दर्शन करने के लिए कई दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

18 जून, 1576 के दिन हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। सितम्बर, 1576 तक मुगल सेना गोगुन्दा में रही। इसके बाद मानसिंह अजमेर पहुँचा। महाराणा प्रताप को सजा देने के लिए स्वयं बादशाह अकबर अपनी सेना के साथ 11 अक्टूबर, 1576 को अजमेर से शिकार खेलने का बहाना बनाकर मेवाड़ की ओर चला। अक्टूबर के महीने में ही वह गोगुन्दा पहुँच गया। नवम्बर में वह उदयपुर पहुँचा। दिसम्बर में बादशाह बांसवाड़ा में उपस्थित था। दिसम्बर में ही उसने पुनः एक सेना बांसवाड़ा खेमे से महाराणा को पकड़ने के लिए भेजी।

अर्थात् जून से दिसम्बर के बीच की अवधि में ही बादशाह की ओर से यह तीसरा आक्रमण किया गया।

❑

(16)

सदियों पूर्व कीतू चौहान ने नाड़ोल से अपनी शक्ति का विस्तार कर मेवाड़ पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उस आपत्ति के समय मेवाड़ के अधिपति ने आवरगढ़ दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया था। यहाँ एक बड़ा तालाब है। वैसे छोटे-बड़े बारह जलाशय हैं। किले के चारों ओर बनी शहरकोट आज भी है। किले के भीतर, पहाड़ी पर महाराणा प्रताप के निवास के खंडहर हैं। चार-पाँच कमरे और बाहर बड़ी चौपाल है। तालाब के ऊपर जगह-जगह खंडहर हैं। संभवतया ये खंडहर सैनिकों के आवास-गृह रहे होंगे। किले के भीतर इस पहाड़ी की चढ़ाई जहाँ समाप्त होती है, वहाँ बरगद के दो बड़े-बड़े पेड़ हैं।

कहते हैं, इन पेड़ों पर महाराणा के पुत्र-पौत्रों के झूले पड़े रहते थे। यहाँ भी कुछ खंडहर हैं। यहीं एक बड़ा, गोल चबूतरा बना हुआ है। मान्यता यह है कि प्रताप का मुख्य आवास यहीं था। इस चबूतरे पर खड़े होकर बीस-पच्चीस किलोमीटर की दूरी तक आसानी से देखा जा सकता है। यहाँ से पूरा आवरगढ़, उसका परकोटा, तालाब, जैन मंदिर और कितने ही खंडहर आसानी से देखे जा सकते हैं। गोल चबूतरे के पास के खंडहरों के

बारे में मान्यता है कि यहाँ उस युग में हाथी और घोड़े बंधे रहते थे। यहाँ धाम में होली बुर्ज है। महाराणा प्रताप के समय से ही यहाँ होली जलती रही है। कमलनाथ के पुजारी आज भी होली के दिन इस स्थान पर होली जलाते हैं। इस होली की लपटों को देखने के बाद ही आसपास के गाँवों में होली जलाई जाती है। लगभग आठ किलोमीटर की परिधि में फैले इस किले को सर्वथा सुरक्षित समझा जाता है। इस किले का जीर्णोद्धार महाराणा कुंभा ने किया था। इसी किले में महाराणा उदयसिंह ने भी अपने दुर्दिन काटे थे।

इसी सुरक्षित दुर्ग तक पहुँचने के लिए बहुत ही परिश्रम करना होता है। शत्रु का पहुँचना तो यहाँ अत्यन्त कठिन है। चारों ओर पर्वतों की शृंखला इस प्रकार फैली है कि शत्रु यहाँ पहुँच ही नहीं सकें। घने जंगलों के बीच खड़े इस दुर्ग में आम, आंवला, महुआ, अटेड़ी, कारया, कणजी, बिल्वपत्र, बबूल आदि के पेड़ बहुतायत से फैले हुए हैं। जलाशयों की कमी नहीं है। इस चबूतरे पर उन दिनों सख्त पहरा हुआ करता था।

"सभी सामंत-मंत्रणा-कक्ष पर पधार चुके हैं, अन्नदाता !" प्रमुख प्रहरी ने प्रताप सिंह के कक्ष में प्रवेश कर निवेदन किया। महाराणा अपने आवास से निकले और एक कक्ष के द्वार में प्रविष्ट हो गए। यह द्वार पहाड़ी की गुफा के भीतर खुलता था यहीं से पर्वत के अन्दर खोदकर एक गुफा बनाई गई थी, जिसमें तीस-चालीस व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था थी।

महाराणा के प्रवेश करते ही सभी सामंत अपने आसन से उठ खड़े हुए। अभिवादन-अभिनंदन के पश्चात् मंत्रणा आरम्भ हुई।

"कार्यवाही आरम्भ करें, मंत्रिप्रवर।" महाराणा ने आज्ञा दी।

"भगवान् एकलिंगनाथ के दीवाण जी की आज्ञा से हम कई विषयों पर चर्चा करना चाहेंगे। जिन विषयों में नीतिगत निर्णय लेने हैं, सर्वप्रथम हम उन्हीं पर अपने विचार रखें। प्रमुख विषय है-हमारी युद्धनीति, विदेशनीति, गुप्तचर-संगठन एवं प्रजा के कष्टों के प्रति हमारा उत्तरदायित्व। सर्वप्रथम युद्धनीति पर आप लोग अपने विचार रखें।" प्रधान अमात्य भामाशाह ने तात्कालिक समस्याओं पर विचार आमंत्रित किए।

"हमने प्रत्यक्ष युद्ध का परिणाम हल्दीघाटी में देख लिया है। उचित होगा कि आगे से हम प्रत्यक्ष युद्ध से बचें और "भूमियावाट" (छापामार) प्रणाली का सहारा लें।" रावत भाण शक्तावत ने प्रस्ताव रखा।

"उम्र में छोटा और नासमझ होने पर भी इस विषय में मेरा मत है कि हम हाथियों की अपेक्षा घोड़ों पर अधिक विश्वास करें तथा एक ऐसी सेना का गठन करें जो बिना समय खोए त्वरित आक्रमण करके तत्काल पलायन भी कर सके।" युवराज अमरसिंह ने हाथ जोड़कर सभी सभासदों से निवेदन किया।

"आप में से और कोई कुछ कहे, इसके पूर्व मैं भी अपना मत रखना चाहता हूँ।" महाराणा प्रताप बोल पड़े, "शत्रु की संख्या, शक्ति एवं सामर्थ्य हमसे बहुत अधिक है। ऐसे

रिस्थिति में रावत जी के विचारों से मैं पूर्णतः सहमत हूँ और यह भी चाहूँगा कि सेना की टी-छोटी टुकड़ियाँ बनाई जाएँ। जहाँ भी अवसर मिले, मुगलों के स्थापित थानों को खाड़ा जाए। ये दल अपनी समस्त सुविधाएँ, मेवाड़ में फैले विभिन्न गुप्त स्थलों से प्राप्त कर । सेना का एक भाग कोष, अंतःपुर एवं बच्चों की हिफाजत के लिए सुरक्षित रहे। इस मस्त व्यवस्था का भार मैं अपने भाई शक्तिसिंह के पुत्र रावत-भाण को सौंपता हूँ।" हाराणा ने निर्णय सुना दिया।

"अगला विषय विदेश नीति से संबंधित है।" भामाशाह ने सभासदों का ध्यान आकर्षित किया।

"इसका प्रमुख आधार हमारे रक्त-संबंध एवं समान विचारों की भूमिका रहती है। मैं चाहूँगा कि सलूम्बर राव इस विषय पर अपने विचार रखें।" महाराणा ने आज्ञा ।

"श्रीमान्! डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा में हमारे रक्त-सम्बन्धी शासन करते हैं, किन्तु शाह अकबर के पिछले अभियान के समय डूंगरपुर ने बिना युद्ध किए न केवल समर्पण किया, अपितु गुहिल वंश के घराने से बेटी का डोला भी मुगल बादशाह को । बांसवाड़ा के शासक ने भी आत्मसमर्पण करने में ही अपनी भलाई देखी। इन दोनों में से हमें बहुत आशा थी, किन्तु उनका इस तरह समर्पण क्षत्रियोचित नहीं कहा जा ता। मेरी राय में उन्हें दंड दिया जाना ही उचित होगा।" सलूम्बर राव ने प्रस्ताव रखा।

"मैं इस प्रस्ताव का न केवल समर्थन ही करता हूँ, अपितु अनुरोध भी करता हूँ इस मुहिम का अवसर मुझे दिया जाए।" देवगढ़ के रावतजी ने निवेदन किया।

"यह उचित है, अन्नदाता!" दो-तीन सामंत एक साथ बोल उठे।

"आपका यह सुझाव मुझे स्वीकार है। इस योजना के कार्यान्वयन का भार भी मैं -भाण को सौंपता हूँ। इस कार्य में मैं उनके काका रणसिंह जी से भी सेना के साथ जाने आग्रह करूँगा, किन्तु अभी कुछ समय तक प्रतीक्षा करें।" महाराणा ने आज्ञा दी।

"हमारा दूसरा पड़ौसी है ईडर। मेरे नानाश्री नारायणदास की राजधानी पर यद्यपि गलों का अधिकार हो गया है, तथापि उन्होंने राजपूती शान को बनाए रखा है। हमारा संपर्क उनसे बराबर बना रहना चाहिए तथा उन्हें वांछित सहायता भी प्रदान करनी चाहिए। अवस्था में भी उनके द्वारा संघर्ष की जो मशाल जलाई गई है, वह बुझनी नहीं चाहिए।" कुंवर अमरसिंह ने कहा।

"युवराज का सुझाव हमें स्वीकार है।" सलूम्बर, देवगढ़ एवं भींडर के रावत एक साथ बोल उठे।

"सिरोही के देवड़ों को अपने अनुकूल किया जाना उचित होगा। वहाँ के राजपरिवार के कलह में हमें रुचि लेनी चाहिए, क्योंकि कुछ ही वर्ष पूर्व सिरोही भी मेवाड़ के सामंत के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह कर चुका है। वहाँ के नृपति को

विधर्मी की अपेक्षा हम जैसे क्षत्रिय का सहायक बनने में प्रसन्नता ही होगी। यद्यपि वहाँ का शासक सुरताण देवड़ा इन दिनों बादशाह के साथ है, तथापि उसे अपनी ओर मिलाने के गुप्त प्रयत्न किए जाने चाहिए।" भामाशाह के भाई ताराचंद ने सुझाव दिया।

"यही बात हमें जालौर के विषय में भी सोचनी होगी।" महाराणा बोले, "जालौर का ताजखान, जो हमारा सहायक था, वह भी टूट गया। अकबर ने पिछले दो महीने के मेवाड़-प्रयास में जालौर और सिरोही पर अपना अधिकार जमा लिया, तथापि वहाँ प्रतिरोध के बीज अब तक हैं। हमारा संपर्क ऐसे सूत्रों से बराबर जुड़ा रहना चाहिए। मैं आज से श्री ताराचंद को गोड़वाड़ का सामंत नियुक्ति करता हूँ। मैं चाहूँगा कि श्री ताराचंद सादड़ी में अपना मुख्यालय स्थापित करके जालौर और सिरोही पर अपनी निगाह रखें।" महाराणा प्रताप ने निर्णय दिया।

"बूँदी के क्या समाचार है, कविराज ?"

मेवाड़ के प्रमुख गूढ़पुरुष एक ओर चुप बैठे थे। महाराणा जी के संबोधन ने मानो उन्हें जगा दिया।

"श्रीमन् !" कविराज ने सविनय कहा, "यह तो आप सभी को ज्ञात है कि बूँदी के राव सुर्जन तथा उनके दोनों पुत्र-दूदा एवं भोज इन दिनों बादशाही फौज के साथ "दुगुन और दो-दो" का स्वाद ले रहे हैं। पिछले वर्ष किसी बात को लेकर बूँदी का युवराज दूदा बिना किसी को बताए शाही शिविर को छोड़ भागा। उसने बूँदी आकर उपद्रव आरम्भ कर दिया। हमारा उनसे संपर्क बराबर बना हुआ है। मार्च 1577 में अकबर बादशाह ने दूदा के भाई एवं उसके पिता राव सुर्जन को एक बड़ी सेना देकर बूँदी भेजा। बूँदी पर आती हुई सेना के सीधे विरोध के लिए हमने दूदा को सलाह नहीं दी। हमारा दूदा से संपर्क यथावत् बना हुआ है। उसने अपने पिता के राज्य में छापामार युद्ध चला रखा है।"

कविराज ने कुछ रुककर फिर कहना आरम्भ किया, "श्रीमन्, मेरा एक निवेदन और है।"

"कहो, कविराज। आप जो भी कहेंगे, हमें आनंदित ही करेगा।" महाराणा प्रताप ने छूट दी।

"अन्नदाता ! हमारे राज्य की सीमा पर स्थित जोधपुर राज्य के उन तत्त्वों से भी हमारा संपर्क बराबर बना हुआ है, जो राठौड़ राव चंद्रसेन के इर्द-गिर्द जमा हो गए थे। राव चंद्रसेन जी श्रीजी हुजूर के राज्याभिषेक के अवसर पर कुंभलगढ़ में स्वयं उपस्थित भी हुए थे। उसी समय से हमारा संबंध उनके क्रियाकलाप से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार मेवाड़ अपने चारों ओर फैले अन्य राज्यों से अपने कूटनीतिक संबंध बनाए हुए हैं। प्रयत्न यह भी किया जा रहा है कि मुगल सामंतों को भेदनीति के आधार पर तोड़ा जाए।" प्रधान गूढ़पुरुष कविराज ने विस्तार से जोधपुर संबंधी जानकारी दी।

"अगला विषय स्पष्ट करें, आमात्य महोदय।" राणा ने विषय बदलना चाहा।

"अगला बिन्दु कूटनीति एवं गूढ़नीति से संबंधित है । इस विषय पर मेरी राय में श्रीजी हुजूर, कविराज, भट्ट लक्ष्मीनाथ जी एवं युवराज अमरसिंह जी अलग से चर्चा कर लें तो उपयुक्त होगा । आज्ञा हो तो मैं अगले विषय पर बढ़ूँ ।"

"हाँ, आगे बढ़िए, भामाशाह जी ।"

"अन्नदाता, हमारी सारी कोशिशों के बावजूद हमें मुगल सेना का प्रतिकार करने हेतु विवश होना पड़ता है । हर दूसरे-चौथे महीने कोई-न-कोई सेना आ धमकती है । इसका दुष्परिणाम सभी को भुगतना पड़ता है । गरीब किसानों, वनवासी भीलों एवं बनजारों [illegible] चराने वाले चरवाहों को भी इन आक्रमणों की मार सहनी पड़ती है..." भामाशाह आगे भी कुछ कहना चाहते थे इसी बीच सलूम्बर राव गरज उठे, "क्या आप यह कहना चाहते हैं कि उन गरीबों के कष्टों की गाथा सुनकर हम अपना निर्णय बदल दें ? क्या हम भी आमेर राज्य की भाँति मुगलों की दासता स्वीकार कर लें ?"

"मैं दासता की बात नहीं कहता, परन्तु इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि हमें प्रजा के बारे में भी विचार करना चाहिए ।" भामाशाह ने अत्यन्त गंभीर होकर कहा ।

"यह सत्य है, प्रधानजी कि आक्रांता सेनाओं के सैनिक यहाँ [illegible] आते हैं । वे इन गरीबों को लूटते हैं, उनकी बहू-बेटियों के शील पर हाथ डालते हैं । हमारी आस्था के केन्द्रों को भूमि में मिला देते हैं । खेत-खलिहान और गाँवों को जलाकर राख कर देना तो आम बात है । यही कारण है कि मेवाड़ की प्रजा प्रतिदिन गाँव खाली कर के पर्वतों तथा अन्य राज्यों में बसे संबंधियों की शरण में जा रही है ।" युवराज अमरसिंह ने कहा ।

"कुँवर, आपका कहना सत्य है, परन्तु किया क्या जाए ? हम अपनी नीति तो [illegible] नहीं सकते और आक्रांताओं का समूह अपनी [illegible] से मुँह नहीं मोड़ सकता । [illegible] अपने साम्राज्य के अहं के [illegible] सत्य-असत्य का विवेक खो चुका है । ऐसी स्थिति में आने वाले घोर संकटों का हमें तथा हमारी प्रजा को मुकाबला करना ही है ।" [illegible]सिंह ने [illegible] ।

"[illegible], [illegible] से हम नहीं [illegible] । वे [illegible] [illegible] रखते हैं, [illegible] ।" [illegible] अमरसिंह ने [illegible] ।

"[illegible] ?" प्रताप ने [illegible] ।

"[illegible] ।" [illegible] नों में [illegible] ों से [illegible] वस्तुओं को [illegible]

संपर्क करके ऐसी व्यवस्था की जाए कि वे आम आदमी को लूटने को बजाए उन्हें संरक्ष
प्रदान करें। अच्छा हो कि इन वनवासियों की भी चौकियाँ स्थापित की जाएँ।"

"युवराज का सुझाव उत्तम है, अन्नदाता !" सलूम्बर राव ने अपनी प्रतिक्रि
जताई।

"इस कार्य हेतु मैं श्री पूँजाजी एवं उनके वंशजों को जिम्मेदारी सौंपता हूँ कि
बनजारों से संपर्क कर, मेवाड़ के पर्वतों की गुफाओं में अन्न के भंडार स्थापित करें अ
मुगलों के आक्रमणों से पीड़ित लोगों की सहायता करें। उन्हें संरक्षण दें तथा उनमें से ल
योग्य युवकों को सेना में भी भरती करें। यह मेवाड़ की प्रजा ही है जो मुझे शक्ति देती है
मेरा यह व्रत कि मैं मुगलों की दासता स्वीकार नहीं करूँगा- इसके मूल में मेरे नागरि
की शक्ति और धैर्य ही तो है। मेवाड़ का गरीब से गरीब व्यक्ति भी
उनके संरक्षण की जिम्मेदारी मैं स्वयं लेता हूँ। पुत्र कल्याण से कहें
बारे में प्रति सप्ताह मुझे सूचनाओं का सार सुनाया करें। यह भी प्रचारित कर दें
को किसी ने भी तंग करने का प्रयत्न किया, उन्हें लूटने की कोशिश की, तो ऐसा व्य
जीवित नहीं रह पाएगा। हमारा प्रत्येक अधिकारी, सैनिक एवं कर्मचारी भी मेरी
चेतावनी को स्मरण रखे।"

इस आदेश के साथ ही महाराणा उठ खड़े हुए। मंत्रणा समाप्त हो गई थी।

(17)

"अन्नदाता, आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।" माथे पर फैंटा लं
घुटने तक की ऊँची धोती पहने, अँगरखे में लिपटे एवं फटी जूतियों में पाँवों को फंस
दीत्या भील ने सैनिकों से घिरे महाराणा प्रतापसिंह के निकट आकर कहा। महाराणा
संकेत से आसपास के सैनिक हट गए। दीत्या ने हाथ जोड़कर, धीरे से कुछ कहा। राण
कुँवर अमरसिंह को संकेत से पास बुलाया। कुछ देर कानाफूसी हुई। महाराणा ने दीत्या
कंधे पर हाथ रखा। दीत्या मानों किसी देवपुरुष का स्पर्श पा गया। उसकी आँखों में चम
आ गई।

कुछ ही पलों के बाद सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी दीत्या के मार्गदर्शन
चल दी। आगे-आगे दीत्या था और उसके पीछे कुँवर अमरसिंह का दल। संध्या का सम
था। वीरान पड़े खेतों में से होकर यह दल रात होते-होते मोही गाँव के निकट पहुँच गया

के निकट बाँडी नदी बहती है । नदी की अपेक्षा इसे नाला कहना ही उचित होगा । वर्षा त समाप्त हुए थे, अतः पानी की धारा बहती दिखाई देती थी ।

नदी के रेत में ठहरकर कुँवर अमरसिंह ने अपने दल के साथ बैठकर चने और सांध्यकालीन भोजन किया । महाराणा के निर्देश थे कि भोजन सभी लोग एक जैसा एँ-चाहे महाराणा हों या सेवक । स्वयं महाराणा भी कई बार भीलों, मीणों एवं क्षत्रियों एक जैसा ही भोजन किया करते थे । गुड़ और भुने हुए चने का भोग लगाकर सबने के जल से अपनी प्यास बुझाई । फिर वहीं बैठकर योजना को अंतिम रूप दिया

बाँडी नदी के तट पर कोई दस-पंद्रह बीघे जमीन पर मक्का की फसल खड़ी थी । णा ने आज्ञा दे दी थी कोई भी किसान फसल नहीं बोए । यदि खाने को अन्न न हो तो ों को आदेश था कि वे राज्य के अन्न-भंडारों से, जो कि समूचे मेवाड़ में इतस्ततः , मुफ्त अन्न प्राप्त कर सकते थे । शत्रु को लाभ पहुँचाने वाली फसल और उसे बोने किसान दोनों को सबक सिखाना आवश्यक था । यह फसल मोही के थानेदार द खान के संरक्षण में बोई गई थी । महाराणा की आज्ञा के विपरीत बोई गई यह महाराणा की अपेक्षा मुगल सैनिकों की घोषणाओं को सार्थक बता रही थी । मोही में ने स्वयं एक सैनिक टुकड़ी रख छोड़ी थी । यही वह बड़ा थाना था, जहाँ से अन्य ी भी आवश्यकतानुसार सैनिक भेजे जाते थे । यहाँ का सेनापति मुजाहिद खान अपने कबर का सर्वाधिक विश्वासपात्र समझता था । वह बातचीत में कहा भी करता था कि न वह राणा प्रताप को पकड़कर अकबर के समक्ष प्रस्तुत करेगा, उस दिन उसे सालार का ओहदा दे दिया जाएगा ।

उसी मुजाहिदखान की मूँछ के नीचे खड़ी फसल को आधी रात गए इस दल ने आरम्भ कर दिया । खेती करने वाले किसानों में से एक ने दौड़कर रात को ही थाने लगाई । नींद में डूबा थानेदार अपने तीर-कमान, भाले एवं बंदूकों को संभालकर पाहियों के साथ घोड़े दौड़ाता हुआ बाँडी पार कर खेतों की ओर जा पहुँचा ।

घोड़ों की टापें सुनाई दीं तो दीत्या भील ने अंधेरे का लाभ उठाया और अपने कुछ को छिपाकर टुकड़ी को आगे बढ़ने दिया । मुगल सैनिक कुछ ही आगे बढ़े थे कि से तीन-चार तीर सनसनाते हुए मुजाहिदखान को लगे । किंकर्त्तव्यविमूढ़ मुगल सेना ने र-उधर तीर एवं गोलियाँ चलाना आरम्भ कर दिया । उन्हें यह भी पता नहीं लगा कि का दल किस ओर फैला हुआ है । मुजाहिदखान थोड़ा आगे बढ़ा । उसका घोड़ा के एक बड़े पेड़ के पास पहुँचा ही था कि एक भारी-भरकम भाला उसके पेट में घुस उसने जल्दी से घोड़ा मोड़कर लौटना चाहा किन्तु वह अपने को संभाल नहीं पाया रती पर गिर गया उसके साथियों ने उसे घेर लिया । तीन-चार घुड़सवार थाने से छ सैनिकों को बुलाने दौड़े, किन्तु वे दीत्या के तीरों के शिकार हुए । मुजाहिदखान

को घेरकर खड़े सिपाहियों का मनोबल टूट गया। वे अपने नायक को वहीं छोड़ कर भ
खड़े हुए।

अकबर बादशाह ने अकबरनामा में लिखवाया है कि रुस्तम जैसे शरीर व
मुजाहिदखान की मौत की खबर ने बादशाह के मन को अशांत बना दिया। इस खबर
परिणाम यह हुआ कि मोही के थाने के सैनिकों ने सुबह होते ही थाना खाली कर अज
की ओर प्रस्थान कर दिया। जिस-जिस थाने पर खबर पहुँची, वहीं से मुगल सैनिक भ
खड़े हुए। अकबर के छः महीनों के मेवाड़ अभियान का समस्त प्रभाव समाप्त हो गय
मेवाड़ रूपी मधुमक्खी के छत्ते में हाथ डालने से मुगल सैनिक आनाकानी करने लगे।

बादशाह अकबर इस खबर से बौखला उठा। जिस प्रताप को वह 'दर-दर'
ठोकरें खाने को' छोड़ आया था, उसी ने मुगल सैनिकों को दर-दर का भिखारी बना दि
था।

अकबर ऐसे अतिक्रमणों को बिना दंडित किए नहीं छोड़ सकता था। अब अ
व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भी प्रताप का दमन करना आवश्यक हो गया। वा
सितम्बर, 1577 को फिर फतेहपुर से अजमेर के लिए रवाना हुआ। 18 सितम्बर को उ
अजमेर की दरगाह में माथा टेका। 5 अक्टूबर के दिन उसने मेड़ता की ओर प्रस्थान कि
अकबर प्रायः यही किया करता था कि जिस ओर जाना हो उसके ठीक विपरीत दिशा
ओर प्रस्थान करता था, ताकि जासूसों को उसके असली मकसद का पता नहीं लग सके
वहाँ पहुँचकर राजा भगवानदास, कुंवर मानसिंह पायिंदाखान मुगल, सैयद कासिम, सै
राजू एवं अन्य वफादार नामी सैनिकों को मीरबख्शी शाहबाजखान के नेतृत्व में काम
करने का दायित्व सौंपा गया। 15 अक्टूबर, 1577 को यह सेना मेवाड़ के लिए रवा
हुई।

शाहबाजखान को भगवानदास और मानसिंह पर भरोसा नहीं था, अतः मेवाड़
सीमा में घुसने से पहले ही उसने इन्हें बादशाह की सेवा में भेज दिया गया। इन दि
महाराणा प्रताप ने कुंभलगढ़ को अपनी राजधानी बना रखा था। महाराणा कुंभा ने
पर्वतीय दुर्ग का निर्माण सन् 1452 में कराया था। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर स्थि
यह दुर्ग अब तक अजेय समझा जाता था। शाहबाजखान ने इसी किले को अपना ल
बनाया। लगभग छः महीनों के अनेक प्रयासों में असफल होकर अंततः शाहबाजखान
धोखे और चालाकी से काम लिया और 3 अप्रैल, 1578 को इस किले पर अधिकार ज
लिया, किन्तु महाराणा प्रताप हाथ नहीं आए। किले में कोई भी व्यक्ति जीवित नहीं मिल
सिर ऊँचा किए हुए खड़े मंदिरों की ध्वजाएँ शिखरों पर अवश्य लहरा रही थीं।

कुंभलगढ़ विजय के बाद शाहबाजखान ने तीन महीनों तक प्रताप की खोज
मेवाड़ को उजाड़ना जारी रखा, किन्तु महाराणा हाथ नहीं आए। 17 जून, 1578 के

शाहबाजखान बादशाह अकबर के समक्ष प्रस्तुत हुआ। 18 जून, 1576 से 17 जून, 1578 के बीच की ठीक दो वर्ष की अवधि में मेवाड़ पर मुगल बादशाह का यह चौथा आक्रमण था।

जिस समय मुगल दरबार में शाहबाजखान का राजकीय सम्मान किया जा रहा था, उसी समय मेवाड़ के प्रधानमंत्री भामाशाह और उनके भाई ताराचंद कावड़िया मेवाड़ की सीमा से बाहर निकलकर शाही जागीर मालवा को लूट रहे थे। इस लूट में भामाशाह को पच्चीस लाख रुपये और बीस हजार अशर्फियाँ हाथ लगीं। भामाशाह ने यह दौलत महाराणा की सेवा में प्रस्तुत कर अपनी अनूठी स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

शाहबाजखान द्वारा स्थापित मुगलों के पच्चीस थानों द्वारा प्रतिदिन मेवाड़ की प्रजा को कष्ट दिए जाने के समाचार प्रतापसिंह के पास पहुँचा करते थे। इधर शाहबाज खान ने मेवाड़ छोड़ा और उधर लगभग प्रत्येक थाने पर हमला तेज कर दिया गया। साथ ही भामाशाह के भाई ताराचंद ने मंदसौर से लेकर चंबल के बीच के इलाके को, जो कि मुगलों के अधिकार में था, लूटना आरम्भ कर दिया।

कुंभलगढ़ से कोई पैंतालीस किलोमीटर दूर दिवेर गाँव में भी मुगलों का एक थाना था। यह गाँव इन दिनों राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 पर देवगढ़ और गोमती चौराहा के बीच स्थित है। कुंभलगढ़ के समीप यही सबसे बड़ा थाना था।

यहाँ से मारवाड़ जाने का प्राचीन मार्ग भी था, अतः महाराणा ने शाहबाजखान के प्रभाव को नगण्य बनाने के लिए सर्वप्रथम इसी थाने को चुना।

इस थाने का रक्षक था सुलतान खां। संबंध में यह बादशाह अकबर का काका लगता था। सुलतान खां दिवेर की घाटी में थानेदार पद पर आसीन होकर अपनी सेवाएँ दे रहा था। संध्या के समय सुलातन खाँ अपने चहेतों के मध्य विराजमान होकर शतरंज के खेल का आनंद लूट रहा था। शाह और बचाव का यह खेल अपने चरम पर था कि एक गुप्तचर ने आदाब अर्ज कर सुलतानखाँ के कान में कोई मंत्र फूंका। सुलतानखाँ ने लकड़ी के हाथी-घोड़ों को छोड़कर फौरन नगाड़ा पीटने का हुक्म दिया। जो भी सैनिक जिस स्थिति में था, दौड़कर थाने के अहाते में उपस्थित हुआ। सुलतानखाँ ने आज की रात को कत्ल की रात के समान गंभीर बताया। हर व्यक्ति को सतर्क रहने का आदेश दिया। सरदार अपने-अपने मोरचे पर तैनात किए गए। कौन-कौन प्रमुख होगा, किसके साथ कौन रहेगा, किसे किस स्थान पर अपना मोरचा लेना है, सब कुछ तय कर दिया गया। अग्रिम दस्ते के सैनिक भी निश्चित कर दिए गए। सारी रात लोगों को जागते हुए बितानी पड़ी, किन्तु सिवाय गोफन से फेंके गए पत्थरों के कोई भी हमला नहीं हुआ। सैनिकों ने भी अंधेरे में गोलियाँ एवं तीर छोड़कर उत्तर दिया, परन्तु उसका भी कोई लाभ नहीं हुआ।

किसी तरह रात कटी। अभी कुछ-कुछ अंधेरा ही था। पक्षी चहचहाने लगे थे कि एक ओर से कुत्ते भौंकने लगे। सैनिकों ने सुलतानखाँ को बताया कि प्रताप की फौज आ गई थी।

सभी ने अपने-अपने मोरचे लिए। हरावल का दस्ता आगे बढ़ा और बढ़ता ही चला गया। जिस गति से बढ़ रहा था, उससे सुलतानखाँ ने यह अनुमान लगा लिया कि प्रताप की सेना के पाँव उखड़ गए हैं। उसने अपने सैनिकों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। वह स्वयं हाथी पर सवार होकर आगे बढ़ती सेना का नेतृत्व कर रहा था। सूर्योदय हो गया था। अचानक एक तीर हाथी की आँख में आकर लगा। हाथी भड़क उठा। सुलतान खाँ का ध्यान क्षणभर के लिए हाथी की ओर चला गया। बस, इसी क्षण प्रतापसिंह ने जोर से भाले का वार किया। भाला हाथी के गंडस्थल को विदीर्ण कर गया। रक्त का सोता फूट पड़ा। चिंघाड़कर हाथी जमीन पर लुढ़क गया।

सुलतान खाँ ने हाथी का मोह छोड़ कर सैनिक का घोड़ा पकड़ लिया। अब सेनापति अश्वारुढ़ होकर संघर्ष करने लगा। अचानक उसका घोड़ा अगली टाँगें उठाकर हिनहिना उठा। इतने में एक भारी-भरकम भाला सुलतान खाँ के जिरह-बख्तर को छेदता उसकी छाती में धँस गया। वार इतना गहरा था कि सुलतान खाँ की छाती से भाला निकल ही नहीं सका।

"देखते क्या हैं, युवराज ! एक ठोकर लगाओ और भाला खींच लो।" राणा प्रतापसिंह ने चिल्लाकर कहा।

"अन्नदाता, यह मर रहा है, इसे ठोकर लगाना क्या उचित होगा !" अमरसिंह ने शंका व्यक्त की।

"यह मरा नहीं है, खींचो अपने भाले को। क्षत्रियों को अपना शस्त्र नहीं छोड़ना चाहिए।" राणा प्रतापसिंह ने सलाह दी। भाला खींच लिया गया। सेनापति के धराशायी होते ही मुगल फौज भाग छूटी।

"मैं उस युवक को देखना चाहता हूँ, जिसने मुझे भाले से चोट पहुँचाई।" सुलतानखाँ ने मरणासन्न स्थिति में प्रार्थना की। महाराणा ने युवा क्षत्रिय को सुलतानखाँ के समक्ष खड़ा कर दिया।

"यह वह युवक नहीं है, जिसने मुझे भाला मारा।" सेनापति कराह उठा। प्रतापसिंह ने अमरसिंह की ओर संकेत किया। अमरसिंह ने एक पात्र में पानी भरकर दम तोड़ते सुलतानखाँ के होंठों से लगा दिया।

सुलतानखाँ ने एक घूँट पिया और सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

सुलतानखाँ की पराजय ने मुगलों के मनोबल को तोड़ दिया। युवराज अमरसिंह एवं भामाशाह ने दिवेर का मोरचा फतह कर लिया था। अब तो प्रताप की सेना के हौंसले ऐसे बढ़े कि शाहबाजखान ने जितने भी थाने स्थापित किए थे, वे सभी खाली हो गए। मुगल सैनिक थाने छोड़कर अजमेर तक भागते चले गए। बादशाह अकबर की नींद हराम हो गई।

□

(18)

अकबर अपमान कैसे सह सकता था ? हल्दीघाटी का युद्ध, स्वयं उसके द्वारा प्रताप को दबाने हेतु की गई कार्यवाहियाँ, बांसवाड़ा से सेना भेजकर प्रताप को पकड़ने या समाप्त करने के प्रयत्न और तीन बार शाहबाजखान द्वारा किए गए सैनिक अभियान-सभी व्यर्थ हो गए थे। राणा प्रताप ने हल्दीघाटी और दिवेर के अतिरिक्त मुगल सेना से कभी सीधा युद्ध नहीं किया।

शहबाज खान ने मेवाड़ के विरुद्ध पहला अभियान 15 अक्टूबर, 1577 में किया था और वह अभियान पूरा करके 17 जून, 1578 के दिन पुनः शाही दरबार में उपस्थित हुआ था। दूसरा अभियान 15 दिसम्बर, 1578 के दिन आरम्भ करके शहबाज खान ने प्रताप के राज्य को उजाड़ने का भरसक प्रयत्न किया। तीसरी बार 15 नवम्बर, 1579 को उसने फिर मेवाड़ पर धावा मारा और 12 जून, 1580 के दिन दरबार में लौट गया। इस प्रकार मुगलों की ओर से राणा प्रताप को कोई ऐसा अवसर नहीं दिया गया कि वे सँभल सकें। जैसे ही शहबाजखान लौटा, राणा प्रताप ने मुगलों के थाने उठाना प्रारम्भ कर दिया। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि जिस कुंभलगढ़ को जीतने में शहबाजखान को लगभग छः माह लगे थे, उसी में रहती मुगल सेना ने जब सुना कि दिवेर के युद्ध में बादशाह का चाचा सुलतानखाँ युवराज अमरसिंह के हाथों मारा गया तो वह भाग खड़ी हुई। एक के बाद एक थाना उठाते हुए,राणा प्रताप जब कुंभलगढ़ पहुँचे तो उनका प्रतिरोध करने के लिए एक भी मुगल सैनिक वहाँ मौजूद नहीं मिला।

बादशाह का पारा चढ़ गया। उसने अजमेर प्रदेश के सूबेदार पद पर दस्तमखान को नियुक्त कर दिया। यह सूबेदार मेवाड़ की ओर नहीं बढ़ पाया। आमेर के राजा भारमल के भतीजों के विद्रोह को दबाने के लिए 16 जून, 1580 के दिन हुए भयंकर युद्ध में दस्तमखान को ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

दस्तमखान के स्थान पर अकबर ने अपने बचपन के संरक्षक बैरमखान के पुत्र मिर्जा अब्दुर्रहीमखान (जो खानखाना के नाम से मशहूर है) को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया। इन्हें हिन्दी साहित्य रहीम के नाम से जानता है। रहीम के दोहे आज भी प्रसिद्ध हैं। इस सेनापति ने अपनी सेना के साथ मेवाड़ के लिए शेरपुर से प्रवेश करना उचित समझा,

शेरपुर में छावनी डाली । शेरपुर गोगुन्दा से दक्षिण की ओर एक गाँव है । यह गाँव कोटड़ा के पास है । खानखाना ने सैनिकों की एक टुकड़ी शेरपुर में छोड़ दी और शेष सेना को साथ लेकर मेवाड़ के पाषाण खंडों से टकराने के लिए आगे बढ़ा ।

महाराणा प्रताप उन दिनों गोगुन्दा में अपना डेरा डाले हुए थे । अकबर द्वारा की गई नियुक्ति तथा खानखाना के गोगुन्दा की ओर बढ़ने की खबरें उन तक पहुँची । राणा ने एक आपात योजना तैयार की ।

"बेटा अमर ! इस बार तुम्हारे युवक दल से मुझे अत्यधिक अपेक्षा है ।" प्रताप ने अमरसिंह को सम्बोधित किया ।

"आज्ञा हो, अन्नदाता !"

"आपका युवा दल पर्वतों की घाटियों का सहारा लेकर उलटी दिशा से अपनी सेना के साथ जाए, ताकि मुगल जासूसों और आम लोगों को ऐसा लगे कि आप लोग पलायन कर रहे हैं । मैं गोगुन्दा का मोरचा संभालता हूँ । आपकी सेना कहाँ जा रही है, इसका भेद केवल आपको ही ज्ञात होना चाहिए । मैं चाहता हूँ कि आप लोग शेरपुर की छावनी लूट लें । खानखाना की सेना को रसद शेरपुर छावनी से ही पहुँचती है । यदि मेरी खबर सही है तो वहाँ शस्त्रों का भी बहुत बड़ा भंडार होना चाहिए । तब आप अपनी योजना बना लें । भगवान एकलिंग आपकी सहायता करें ।"

"आपकी अपेक्षा को पूरा करने में मैं कोई कोर-कसर नहीं उठा रखूंगा, पिताश्री ! आप निश्चिंत होकर सामने से आ रहे शत्रु को संभालें । आपका आशीर्वाद मेरे साथ है । अब मुझे किसी की भी चिंता नहीं है । अब आज्ञा दें, अन्नदाता !" अमरसिंह ने पिता के चरणों में माथा टिकाया ।

प्रताप की आँखों से आँसुओं की दो बूँदें टपक पड़ीं ।

"पिताश्री, यह क्या ?"

"कुछ नहीं, बेटा, वैसे ही कुछ कमजोरी आ गई थी ।"

"कैसी कमजोरी, पिताश्री ?"

"रहने दो ! फिर कभी कहूँगा ।"

"पिताश्री, यदि गोपनीय नहीं हो तो आज ही कह दें । यदि आप नहीं कहेंगे तो संपूर्ण अभियान में आपके आँसू मेरे मन में चुभते रहेंगे । हमारे रहते आपकी आँखों में आँसू आ जाएँ, तो हमारा जन्म ही व्यर्थ है । आप मुझे अवश्य बताएँ कि इन आँसुओं का कारण क्या है ?" अमरसिंह ने शिलाखंड पर बैठे राणा प्रताप के चरणों को दृढ़ता से पकड़ लिया ।

"बेटा, क्षत्रियों का भी क्या जीवन है ! एक पिता अपने युवा पुत्र को मृत्यु के खेल में झोंक देता है । मैं तुम्हें क्या दे सका-घास की रोटियाँ और दिन-रात मुगलों के भय से दौड़ते फिरना । न अच्छे वस्त्र दे सका, न वैभव । राज्य के युवराज के उत्तराधिकार में मैं क्या दे सकता हूँ ? भय, आशंका, भाग-दौड़ और एक उजाड़ देश ही तो तुम्हें विरासत में । पता नहीं तुम हमारे बारे में क्या सोचते होंगे...."

"पिताश्री, मैं आपका पुत्र हूँ। मैंने भी क्षत्राणी का ही दूध पिया है। मेरी माँ ने ग़ही सिखाया है कि जन्म के साथ ही मृत्यु का दिन तय हो जाता है। फिर मृत्यु का कैसा ? वैसे भी क्षत्रिय धरतीपुत्र होते हैं, इसलिए धरा के लिए मरना हमारा धर्म है। आप महाराणा हैं, भगवान एकलिंग के दीवाण हैं। आपके मुँह से निकला प्रत्येक शब्द के सैनिकों के लिए देव-वचन से कम नहीं है। हमें युद्ध में जाने की आज्ञा देना तो का कर्तव्य है। इसमें कमजोरी की कौनसी बात है ?" अमरसिंह ने साग्रह कहा।

"बेटा ! मैं यायावर हूँ। तुम मुझे भले ही राजा कहो। इससे बड़ी एक बात और कमजोरी का कारण बनती है।"

"वह क्या, पिताश्री ?"

"वह यह कि मैं अपने पुत्रों का पिता भी हूँ। पिता के लिए अपने पुत्र का अनिष्ट ा कितना कठिन होता है। धधकती दावाग्नि में अपने पुत्र को फेंककर उसके मंगल ामना करना कितना विचित्र लगता है। किन्तु दो विरोधी ध्रुवों के बीच जीना ही मानो नेयति है। लगता है, इस जीवन में तो ऐसा ही होता रहेगा।" महाराणा उदास हो गए।

"पिताश्री, आप यह क्यों भूलते हैं कि अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़गढ़ पर गए आक्रमण के समय भट्ट लक्ष्मणसिंह ने एक-एक करके अपने सात पुत्रों को युद्ध में दिया था। उसी वंश के शिरोमणि में ऐसी कमजोरी आना सहज तो नहीं लगता।"

"यह सत्य है, पुत्र! पूर्वजों का स्मरण मात्र ही मेरे मन में उत्साह जगा देता है, एकांत के कुछ क्षण कभी-न-कभी एक पिता को मोह में भी तो डाल देते हैं। इसी का परिणाम ये आँसू हैं, किन्तु ध्येय के सामने यह मोह उसी प्रकार भाग जाता है जिस सूर्य की प्रखर किरणों के समक्ष छोटे-छोटे बादल लुप्त हो जाते हैं।"

"मैं आश्वस्त हुआ, अन्नदाता !" अमरसिंह आश्वस्त हो गया।

"पुत्र, सदा स्मरण रखना कि पिता और पुत्र, राजा और प्रजा, पति और पत्नी, धनी क ता आते ही रहे हैं और आगे भी आएँगे; किन्तु अन्याय के समक्ष समर्पण की ता यदि घर कर गई तो हमारी संतति का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा। मेरी चिंता अश्रुबिन्दु उस गहराई से निकले हैं, जहाँ मेरा अंतरतम इस राज्य के अधिष्ठाता भगवान लंग से एक ही प्रश्न पूछता रहता है कि वह हमें परीक्षा की अग्नि में इतना क्यों तपा ? क्या कारण है कि... " राणा प्रताप को सहसा रुक जाना पड़ा।

एक अश्वारोही भागता हुआ आया और उसने सीधे महाराणा के समक्ष उपस्थित विशेष समाचार दिया।

"अच्छा, पुत्र, जाओ ! सामंत-पुत्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" प्रताप ने बेटे के पर हाथ रखा और उसकी पीठ थपथपाई।

अमरसिंह अपनी निर्धारित दिशा की ओर चल दिया। पद, प्रतिष्ठा, वैभव एवं दारियाँ प्रायः व्यक्ति के अंतर में जन्मे भावों को जिह्वा तक नहीं आने देती। सदियों से ाज्य पर औपचारिकताएँ शासन करती आई हैं, किन्तु यदाकदा औपचारिकताओं के ब भी टूटते देखे गए हैं। ☐

(19)

शेरपुर का मुगल सैनिक शिविर लूटे जाने का समाचार जब खानखाना के पहुँचा तो उसके पांवों तले से धरती खिसक गई। हिन्दुस्तान के बादशाह अकबर सेनापतियों में प्रमुख अब्दुर्रहीम खान को कभी इस जलालत का सामना करना पड़ेगा, इस उसे कल्पना तक नहीं थी। दर-दर की ठोकरें खाने वाले प्रताप की युवा सेना उसे इस तक जलील करेगी, यह वह सोच भी नहीं सकता था। जब यह खबर बादशाह के पहुँचेगी, वह क्या सोचेगा ? दरबारियों में जो रहीम के शत्रु हैं, उन्हें तो इस खबर से प्रसन्नता होगी।

इस घटना से तो उसके दीन और ईमान दोनों जाते रहे। जिस परिवार की सु सुविधा के लिए वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है, उसकी रक्षा तक नहीं कर स महाराणा प्रताप को जिंदा या मुरदा पकड़ने के सपने संजोकर वह मेवाड़ में आया था। सोचा था कि जिस प्रतापसिंह को मानसिंह, स्वयं बादशाह एवं शहबाजखान जैसे सेनान गिरफ्तार नहीं कर सके थें, उस हस्ती को वह शाही दरबार में ला खड़ा करेगा। जरा असावधानी से उसके बाल-बच्चे, बेगमें-बाँदियाँ एवं नौकर-चाकर गिरफ्तार हो प्रतापसिंह के पास पहुँच गए। इसे दुर्भाग्य कहें या बुद्धिभ्रंश, उसकी समझ में कुछ भी आ रहा था। "बेगम और बच्चे मुझ जैसे बुजदिल के बारे में क्या सोचते होंगे"-इस कल्पना मात्र से अब्दुर्रहीम खान सूखा जा रहा था। अपने डेरे के शामियाने में एक सिं दूसरे सिरे तक एड़ियाँ रगड़ते-रगड़ते उसने दो घड़ियाँ बिता दीं। सेना के किसी अधिकारी का साहस नहीं हो रहा था कि वह दिलासा के दो शब्द तक रहीम से कह स

अनहोनी कल्पनातीत होती है। व्यक्ति अपने उत्कर्ष के सपने देखने में निपुण होता है। उसका सोच सदा स्वयं को श्रेष्ठ मानकर धरातल के ऊपर का होता है। उसके पास आज नहीं है, उसे वह प्राप्त करने की भावनाओं को पाले रखता है। बुद्वि स्वयं को आगे समझता है और दूसरों को मूर्ख मानता है। किन्तु घटनाएँ, वास्तविक अथवा विधि के विधान की रेखाएँ जब अपना रंग जमाती हैं तो वही डींग हांकने वाला, का पोषक व्यक्ति अपने को नितांत अकेला, निरीह एवं विवश मानकर दुखी होता

अब्दुर्रहीम खान के साथ भी यही हुआ। विजय के स्वप्न भंग हो गए। वास्तविकता की धरती पर उसे दिखाई दिया कि उसके बाल-बच्चे और बेगमें अमरसिंह द्वारा गिरफ्तार कर लिये गए। वह क्या करे ? कहाँ ढूँढे उस व्यक्ति को, जिसने उसे आज यह दिन देखने की स्थिति में ला खड़ा किया।

"हुजूर !" द्वारपाल ने तीन बार झुककर सलाम किया।

अब्दुर्रहीम खान ने टेढ़ी निगाह डाली, कहा, "हूँ।"

"कोई राजदूत आपसे मिलना चाहता है।"

"कहाँ का दूत है ?"

"हुजूर, यह सब वह खुद आपसे ही अर्ज करना चाहता है।"

रहीम ने कोई जवाब नहीं दिया। 'क्या प्रताप ने इसे भेजा है ? क्या वह बीवी-बच्चों के मारे जाने की खबर लाया है ? क्या बेगमों को राजपूतों ने अपने हरम में डाल लिया है ?' एक क्षण में ही वह सब कुछ सोच गया। फिर चौंककर द्वारपाल को संकेत से उस दूत को अंदर भेजने की आज्ञा दी।

"जय एकलिंग, सेनापति !" प्रवेश करके बिना सिर झुकाए दूत ने कहा।

रहीम को उसका व्यवहार बड़ा विचित्र लगा। न झुकना, न अदब, न कायदा ! पता नहीं इन जंगली लोगों को कब अक्ल आएगी।

"बैठो !" रहीम ने अपनी गद्दी पर रखे मसनद के सहारे एक ओर झुकते हुए कहा।

"सेनापति जी ! मैं भगवान एकलिंग के राज्य के दीवाण महाराणा प्रतापसिंह का दूत हूँ और आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"कहो, क्या कहना चाहते हो ?"

"समाचार नहीं, मैं आपसे क्षमा माँगने आया हूँ।"

"क्षमा ? किस बात की क्षमा ?"

"यही कि हमारी सेना के कुछ युवकों ने आपके साथ बदसलूकी की, इसका हमें दुख है।"

"कैसी बदसलूकी, दूत ?" रहीम ने दूत की ओर घोर से देखा। कोई छः-सवा छः फीट लंबा नौजवान, लंबे हाथ, पका हुआ रंग, तनी हुई मूँछें और चेहरे पर एक विचित्र प्रकार का तेज। आँखों में चमक और व्यवहार भी दूत जैसा नहीं। आखिर यह है कौन ?

"हमारे कुछ युवकों ने आपकी बेगमों और बच्चों को शेरपुर में बंदी बना लिया और अपने साथ ले गए। यह अपराध है। हम इसके लिए क्षमा चाहते हैं।"

दूत ने पल भर रुककर कहा, "किन्तु वे सब पूरी तरह सुरक्षित हैं। उनके साथ ऐसा कोई व्यवहार नहीं किया गया जैसा आपकी सेना के लोग हमारी बहू-बेटियों के साथ किया करते हैं।" दूत की आँखों में विशेष चमक उभरी।

"अब क्या चाहते हो ?"

"क्या आपने हमें क्षमा कर दिया, सेनापति जी ?"

"क्षमा करके भी मुझे क्या मिलेगा ?"

"आपको अपनी बेगमें और बच्चे मिलेंगे, हुजूर !"

"कैसे ?" रहीम को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि बेगमें ... लौटा जाएँगी।

"मैं अभी कुछ ही क्षणों में आपके हरम के सदस्यों को आपके सम्मुख उपस्थि कर सकता हूँ, सेनापति जी।"

"ले आओ, युवक ! इससे बड़ा मेरा उपकार तुम क्या कर सकते हो। लो यह इनाम रख लो।" रहीम ने अपने गले में पड़ा मोतियों का एक हार युवक की अं फैंका।

"यह नहीं हो सकता, सेनापति जी ! मैं क्षमा माँगने आया हूँ, पारितोषिक ले नहीं !" दूत ने उस कीमती हार को छुआ तक नहीं।

"यह तो मैं तुम्हें खुशी से दे रहा हूँ, युवक। इसे रख लो।"

"नहीं, सेनापति जी। हम गरीब भले ही हों, आपके आक्रमणों से हमें दर-द भटकना भी पड़ता है, पर हमारा जमीर अभी मरा नहीं। अब भी हमारे लोगों में लाज शे है। अब आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी बेगमों को आपके समक्ष ला सकूं, किन्तु एक वचन आपको देना होगा ?"

"कैसा वचन ?"

"वचन यह कि हरम के साथ आए युवकों को यहाँ तक आने दिया जाए और जब वे लौटें तो उनका पीछा नहीं किया जाए।"

"मुझे शर्त मंजूर है।"

"अच्छा मैं चलता हूँ, सेनापति !" दूत ने अचानक कहा।

"दूत, तुम्हारा नाम क्या है ?" रहीम का यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह गया। युवक उठकर फुर्ती से शामियाने के बाहर चला गया।

कोई घड़ी-भर बीता होगा कि दूर से पाँच-सात बैलगाड़ियाँ आती दिखाई दीं। इन बैलगाड़ियों के आगे-आगे वही युवक चल रहा था। कुछ राजपूत युवक भी घोड़ों पर बैठे साथ चल रहे थे। बैलगाड़ियों के पीछे परदे लगे थे। रहीम ने सोचा, कहीं कोई चाल तो नहीं है। इन लोगों ने अलाउद्दीन के समय में भी डोलों में छिपाकर सेना भेज दी थी। कहीं बेगमों का नाम लेकर इन बैलगाड़ियों में शत्रु तो नहीं आ रहे हैं ? सेनापति ने तुरंत निर्णय लिया। उसने अपनी बाँदी को तुरन्त दौड़कर बैलगाड़ियों के पास जाकर वास्तविकता का पता करने को कहा तथा वहीं से दुपट्टे को हिलाकर संकेत देने की विधि भी समझा दी।

वे दौड़ती-हाँफती बैलगाड़ियों के पास पहुँच गई। बैलगाड़ियों के पास जाकर उसने परदे उठाकर देखे और अपना दुपट्टा हिलाकर संकेत कर दिया कि डोलियों में बेगमें ही हैं।

बैलगाड़ियाँ शामियाने के पास पहुँचकर रुकीं। बेगमें, बाँदियाँ और बच्चे नीचे उतरे।

"अब मैं आज्ञा लूँ, सेनापति!" उसी युवक ने पास खड़े सेनापति का ध्यान अपनी ओर खींचा।

"नहीं, हुजूर! इन्हें रोक लीजिए और शामियाने के अन्दर आने को कहिए।" बड़ी बेगम ने निवेदन किया।

"क्यों?"

"मैं अभी सब कुछ बताती हूँ। आप इन्हें अन्दर तो बुलाइए।"

बेगमें, बाँदियाँ और बच्चे शामियाने के अन्दर पहुँचे। न चाहते हुए भी रहीम ने उस युवक को भीतर बुला लिया।

"हुजूर, इस लड़के को जितना दे सकें, उतना इनाम दीजिए। इसने हमारी जो इज्जत की है, ऐसी इज्जत हमें जिंदगी में कहीं भी नहीं मिली।" बड़ी बेगम ने अपने बुरके की नकाब हटा दी तथा युवक को बैठने का संकेत किया। वह खुद भी वहीं फैले गद्दे पर बैठ गई।

अब उसने विस्तार से बयान जारी किया-

"हुजूर, जब हमें गिरफ्तार किया गया तो यह युवक सम्मानपूर्वक बैलगाड़ियों में बैठाकर हमें महाराणा प्रताप के छिपने के स्थान तक ले गया। महाराणा ने हमें देखकर इस लड़के से पूछा कि ये कौन लोग हैं? जब इस युवक ने कहा कि ये मुगल सेनापति की बेगमें हैं तो महाराणा का चेहरा लाल हो गया। उनके ये शब्द अभी भी मुझे ज्यों-के-त्यों याद हैं-"अमर! यह तूने क्या किया! हमारी लड़ाई बादशाह से है। इन बच्चों और बेगमों से नहीं। अभी जाओ, सेनापति से माफी माँगो और उनकी बेगमों को उन्हें सौंप आओ।" कुछ सामंतों ने अमरसिंह को भेजने का विरोध भी किया। उन्हें डर था कि कहीं हमारी छावनी में युवराज की हत्या न कर दी जाए; किन्तु धन्य हैं वह महाराणा जिसने कहा-"पराई औरतों से हमारी कोई शत्रुता नहीं है। यह अमरसिंह का ही काम है कि वे जाकर इन्हें लौटा आएँ। यदि क्षमा माँगने गए अमरसिंह की हत्या भी हो जाती है तो मैं यह सोचकर प्रसन्न होऊँगा कि किसी मूल्य की रक्षा के लिए मैंने अपना बेटा खोया है। आगे से इस घटना को उदाहरण समझा जाए और सदा स्मरण रखा जाए कि हमारी शत्रुता आगरा से है, उसके आश्रितों से नहीं।"

बेगम का गला रुँध गया था। पल-भर अपने को संभालकर वह फिर बोली, "महाराणा के इतना कहने पर इस वीर ने अकेले ही आपके पास आना चाहा, परन्तु इस युवक के चार-पाँच मित्र इसे अकेला नहीं आने देना चाहते थे, इसलिए साथ आ गए। हुजूर,

यह घटना मैं जिंदगी-भर नहीं भूल सकती। इस बियाबान जंगल में हमारा कौन है ? धन्य है वह माता, जिसने प्रताप जैसा पुत्र पैदा किया। इस अमरसिंह की माँ की भी मैं आभारी हूँ जिसके पुत्र ने अकेले ही हम सभी को साथ लेकर आपके पास आने की हिम्मत की।' बेगम की आँखों में से आँसू झरने लगे। गला भर आया। उसके आँसू बहुत कुछ कह गए।

अब्दुर्रहीम की आँखें भी डबडबा आईं। इस स्थान पर ऐसे भी लोग हो सकते हैं जो अपनत्व की रोशनी दे सकते हैं। बिना बादलों के भी वर्षा हो सकती है-ऐसा उदाहरण रहीम ने पहली बार देखा।

"बेटा, आज से तुम मेरे बेटे से भी बढ़कर हुए। यद्यपि मैं तुम्हारे विरोध में खड़ी सेना का सेनापति हूँ, पर मन करता है कि तुम्हारे उस देवतुल्य पिता के चरण पकड़ लूँ जिसने दुश्मनों की बेगमों के साथ ऐसी उदारता दिखाई। मैंने तुम्हें दूत समझा, इस धृष्टता को क्षमा करना, अमरसिंह।" रहीम के आँसू न चाहने पर भी ढलक पड़े।

अमरसिंह उठा और "जय एकलिंग" कहकर लौटने के लिए मुड़ा ही था कि बड़ी बेगम ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहने लगी, "अमरसिंह ! मेरे हुजूर ने तुम्हें बेटा कहा है, मैं तुम्हारी माँ हुई। तुम कुछ खा-पीकर जाओ, बेटा।"

"माँ ! मैं आपके बादशाह के शत्रु का पुत्र हूँ। कभी मुसीबत में पड़ा तो आप अपने इस पुत्र को जो कुछ खिलाना-पिलाना चाहें, उस समय खिलाना। पिताजी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब आज्ञा दें, माँ !"

"बेटा ! मैं और मेरे परिवार के लोग अपनी जान देकर भी तुम्हारे कुछ काम आ सके तो सौभाग्य मानेंगे। मैं सदा तुम्हारी इस बात को याद रखूंगी।" बेगम ने अमरसिंह का सिर चूमकर उसे बिदा दी।

भावुक रहीम खुदा को यादकर नमाज की मुद्रा में बैठ गया। बादल आया और वृष्टि कर गया। कारवाँ आया और गुजर गया। तपती धूप में ठंडी हवा का एक झौंका मन को छू गया। रहीम यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि ये सब कुछ कैसे हुआ ?

"वाह रे, प्रताप ! तूने आज मुझे परास्त कर दिया। तेरी ऊँचाई के सामने मैं बौना हो गया। अरावली की चट्टानों के सामने आगरा का साम्राज्य मिट्टी जैसा हो गया। इस गरीबी में भी तूने वह कर दिखाया, जो बड़े-बड़े शहंशाह नहीं कर सके। वाह रे, शक्तिपुत्र अमरसिंह ! तू वास्तव में शेर का बच्चा है। शत्रु की सेना में अकेला आकर तू हमें आँसुओं में भीगने के लिए विवश करके चला गया। या परवरदिगार, मेरे हाथों से ऐसा कुछ भी नहीं कराना, जिससे उस सूर्यवंशी प्रताप और उसके लड़के का कुछ अहित हो। बेगम ! आज मैं हार गया और प्रताप जीत गया।" रहीम का गला रुँध गया था।

बेगम ने अपनी आँखें पोंछीं। अब्दुर्रहीम खान को सहारा देकर उठाया और भीतर ले गई। यह घटना सन् 1581 के आरम्भ की है।

(20)

महत्वाकांक्षा व्यक्ति में उत्साह एवं शक्ति का संचार करती है । यह जितनी लवती होगी, व्यक्ति की गति और मति उतनी ही तीव्रता से कार्य करेगी । अकबर के थ भी यही हुआ । सन् 1585 में आमेर के जगन्नाथ कछवाहा के नेतृत्व में बहुत बड़ी सेना मेवाड़ को धूल चटाने के उद्देश्य से आक्रमण किया । इस आक्रमण में एक दिन ऐसा भी ाया कि महाराणा प्रताप और उनको परिवार के सदस्य शत्रु के हाथ आ जाते; पर नियति ो यह स्वीकार नहीं था । महीनों की खाक छानने के बाद सेना ने अपने थाने बैठाकर हले के आक्रांताओं की भाँति अजमेर में अकबर द्वारा बनवाए गए किले में शरण ली । कबर ने अपनी महत्वाकांक्षा के नए आयाम ढूंढ लिए । उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमांत देशों में अफगानों को दबाने के प्रयास तेज कर दिए । इन्हीं दिनों बंगाल और बिहार में भी बेदारों-सरदारों ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया । इन विद्रोहों को दबाने में ही अकबर का र्याप्त समय निकल गया । इससे महाराणा प्रताप को समय मिल गया । सन् 1585 से 1596 जनवरी महीने के बीच बारह वर्ष की अवधि में अकबर द्वारा नियुक्त अजमेर के सूबेदारों से किसी का भी साहस नहीं हुआ कि मेवाड़ के पर्वतों से टकरा सके ।

जैसे ही जगन्नाथ कछवाहा मेवाड़ से हटा, महाराणा ने कुंवर अमरसिंह को सेना साथ दक्षिणी-पश्चिमी मेवाड़ पर पुनः अधिकार करने के लिए भेज दिया और स्वयं त्तर-पूर्व के क्षेत्र में जा पहुँचे । मुगलों के थानों पर अमरसिंह भारी पड़ने लगा । एक अवसर ऐसा भी आया कि कुंवर ने मुगलों के पाँच थानों को एक दिन में ही उजाड़ दिया । मुगल निकों ने हथियार डाल दिए और मुँह में तिनका दबाए, जीवित रहने की भीख माँगकर वे वाड़ से विदा हुए । स्थिति यहाँ तक आ गई कि चित्तौड़गढ़-मांडलगढ़ और अजमेर के ख्य राजमार्ग को छोड़कर संपूर्ण मेवाड़ महाराणा प्रताप की तलवार के नीचे आ गया । इस कार उन्हें उत्तराधिकार में जितना मेवाड़ मिला था, उतना फिर उनके अधिकार में आ या ।

अकबर की महत्वाकांक्षा को मेवाड़ से क्या मिला ? असंख्य भूखे-नंगे नर-कालों के ढेर, मृतकों के घरों में मिट्टी के टूटे-फूटे बरतनों की ठीकरियाँ, राख के ढेर े दबे खेत-खलिहान और आग में झुलसे वनांचल-ये थे अकबर की फतह के तोहफे ।

एक ओर संपूर्ण भारतवर्ष का सम्राट था और दूसरी ओर था छोटी-मोटी पहाड़ियों में रह वाला एक राजपूत योद्धा । एक ओर समुद्र था तो दूसरी ओर छोटा-सा पोखर । एक ओ वैभव, विलास एवं अतुल संपदा का स्वामी तथा दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं से भरपू जन-जन की आस्था का प्रतीक पुरुष । एक ओर सर्वग्रासी दृष्टि सब कुछ रौंदकर अपने बू के नीचे बिलखते नृपतियों के मुकुट देखना चाहती थी तो दूसरी ओर थी दीन-हीन, अपर्न लोगों के दिलों पर शासन करने वाले राणा प्रताप की बढ़ती जा रही लोकप्रियता । अहंका और सात्विक स्वाभिमान के बीच का संघर्ष जारी था । मनुपुत्रों को भेड़-बकरी एवं घास फूस से अधिक नहीं मानने वाले सेनापतियों के मुँह पर उस समय कालिख पुत गई, ज युवराज अमरसिंह ने अब्दुर्रहीम खानखाना के परिवार की महिलाओं को ससम्मान उन सौंप दिया । अहंकार, लोभ एवं सत्ता के मद के महाधिकार को चुनौती देता उदात्त मानवता और उच्च मानसिकता के इस दीपक जैसा उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ह कहीं मिले ।

वाह री धरती ! तूने क्या-क्या नहीं सहा ! क्या-क्या नहीं देखा ! तूने उस रक रंजित, नष्ट-भ्रष्ट पर्वतीय उपत्यका में एक पुत्र तो ऐसा पैदा किया जो तुझे माँ कहक पुकारता था । तेरी आन-बान के लिए नित्य अपने लहू की आहुतियाँ देता था । तेरे धरतीपुत्र भी धन्य हैं जो अपने सिर पर कफन बाँधकर इधर-से-उधर भागते रहते थे । अप दर्प और वैभव में आकंठ डूबे आततायियों के पीछे-पीछे सुख की मरीचिका को पकड़ के प्रयास में दुम हिलाते राजकीय श्वानों की बाढ़ में एक भूखंड तो ऐसा रहा, जिस कोमल मानव मूल्यों को भीख में प्राप्त रत्नों से श्रेष्ठ माना । प्रताप ही नहीं, यहाँ के असंख जन-जन ने आदर्शों की रक्षा करने में जो प्रताड़नाएँ सहीं, उसका उदाहरण ढूँढ़ना कठिन है हल्दीघाटी के युद्ध से लेकर जगन्नाथ कछवाहा के आक्रमणों के बीच की अवधि में (स 1576 से 1585 तक) शायद ही कोई दिन ऐसा गया हो जब युद्ध नहीं हुआ हो । इ धराखंड में उगे नर-नारियों की सहनशीलता, आक्रामकता और अपनी पगड़ी सिर पर बना रखने की अभिलाषा ने अविराम संघर्ष किया । पूरा एक दशक संघर्ष करते ही बीत गया । इ संघर्ष में कितने लोग बीत गए, कितने तिरोहित हो गए, कितने कोष रीत गए, कितने स्वप भंग हो गए-इसका इतिहास तो कोई बिरला ही लिखेगा ।

उसी धरती का एक पक्ष वनों, उपत्यकाओं एवं पर्वतों के शिखरों पर मारा-मार फिर रहा था । एक बड़ा वर्ग क्रीतदासों की श्रेणी में खड़ा होकर मुगल सिंहासन के आ सर्वस्व न्यौछावर कर रहा था और उसी धरती का एक सिंहशावक अपनी ग्रीवा ऊँची क अरावली की कंदराओं एवं कंटकाकीर्ण पगडंडियों पर गर्जना करता स्वतंत्र घूम रहा था ।

समस्त विरोधाभासों और प्रतिकूल परिस्थितियों में जन-जन का नेतृत्व करने वाले राणा प्रतापसिंह स्वयं द्वारा बसाई गई राजधानी चावंड में फूस के झोंपड़े में रात्रि-विश्राम क रहे थे । उसी से सटे दूसरे झोंपड़े में मेवाड़ का उत्तराधिकारी वीरवर अमरसिंह अपनी पत्नी

शाहमती के साथ आस्तरण से ढकी घास पर अधलेटा वर्षा की तड़-तड़ सुन रहा था। श्रावण के अंतिम सप्ताह में मूसलाधार वर्षा हो रही थी। दूर से घोड़ों की हिनहिनाहट, शृगालों की हुआँ-हुआँ और पक्षियों की विचित्र ध्वनियाँ उस तूफानी रात में भी गूँज रही थी। उन झोंपड़ियों से हटकर कुछ दूर, पेड़ों के नीचे अपने टूटे-फूटे तंबुओं, डागलों और घास के छप्परों में सैंकड़ों देशभक्त उस बरसाती रात में भी मोरचा जमाए हुए थे।

निद्रा का तो प्रश्न ही नहीं था। जहाँ रात-दिन भागना पड़ता हो और जीवित रह पाना ही अपने आप में एक उपलब्धि हो, वहाँ निद्रा का प्रवेश वर्जित था। महाराणा प्रताप अपना कवच पहने, शस्त्रों सहित लेटे-लेटे अतीत की स्मृतियों में डूबे हुए थे। सहसा पास के झोंपड़े से कोई स्त्री-स्वर सुनाई दिया। उनके कान सतर्क हो गए।

"देव, आप सोए नहीं ?" शाहमती ने पूछा।

"नहीं, देवी, जहाँ जान के ही लाले पड़े हों, वहाँ नींद कैसी ?" युवराज अमरसिंह ने उत्तर दिया।

शाहमती सहसा उठ बैठी। वर्षा की भीषणता कुछ कम हुई। बाहर से कोई मेंढ़क कूदकर शय्या पर आ गया था। उसे दूर भगाती हुई शाहमती बोली, "स्वामी, अब तो मेंढ़क भी हमारी सेज पर आने लगे हैं !"

"हूँ।" अमरसिंह ने अन्यमनस्क होकर कहा।

"हो सकता है, कभी कोई साँप भी आ जाए।"

"संभव है, देवी।"

"क्या हमारा सारा जीवन इन मेंढ़कों और साँपों के बीच ही गुजरेगा।"

"देवी, नियति का क्या किया जा सकता है ! राजकुल में जन्म लेना और युवराज बन जाना नियति का एक पक्ष है तो घास की झोंपड़ियों में शयन करना उसी का दूसरा आयाम है। वैसे एक अच्छी बात भी इसमें छिपी है।"

"वह क्या देव ?"

"अच्छा बताओ, आप महलों में कहाँ शयन करती थीं ?"

"आपके पलंग पर !"

"पलंग कितना बड़ा होता था ?"

"यही कोई तीन-साढ़े तीन हाथ लंबा।"

"और आप उस पलंग पर कितना स्थान घेरकर सोती थीं ?"

"बस, अपने शरीर जितना।"

"तो, उतना स्थान तो यहाँ भी उपलब्ध है। मुख्य कार्य तो विश्राम करना है। स्थान चाहे पर्यंक हो या घास-नींद आना ही प्रमुख बात है।"

"वही तो नहीं आती, स्वामी !"

"क्यों ?"

"वैसे ही। कभी-कभी सोचती हूँ, आप नियति को बदलने का मार्ग क्यों नहीं ढूँढते।"

"कौनसी नियति की बात कह रही हैं आप ?"

"यही कि यह भागना-दौड़ना, चैन की नींद नहीं ले पाना-आखिर कब तक यह सब चलता रहेगा ? आज मेरी जैसी अन्य बहनें अपने-अपने महलों के विशेष शयन-कक्षों में पौढ़ रही होंगी और एक मैं हूँ, जो मेंढ़कों को भगाती हुई रात काट रही हूँ।"

"यह तो सत्य है, देवी।"

"क्या यह सत्य बदला नहीं जा सकता ? कब तक यह भाग-दौड़ चलती रहेगी ? कब तक हम इधर-उधर छिपते रहेंगे ? कब तक हमारे बच्चे पेड़ों पर लटकी टोकरियों में झूलते रहेंगे ?" शाहमती व्याकुल होकर बोलती रही, "कब तक जंगली फलों से गुजारा करना होगा ? क्या जंगली अनाज ही हमारी नियति में है ? क्या हमारा जन्म विरोध, संघर्ष और युद्धों की विभीषिकाओं के बीच ही बीत जाएगा ?" शाहमती ने भारी साँस छोड़ी। आँखे भर आई। वाणी भारी हो गई।

"देवी, क्या मुझे सुख प्रिय नहीं है ? क्या मैं नहीं चाहता कि मेरा पुत्र कर्णसिंह राजप्रासादों में खेले... मैं भी चाहता हूँ कि आपको नित नए शृंगार की वस्तुएँ सुलभ कराऊँ।"

"तब, आप इन स्वप्नों को साकार करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?"

"कैसा प्रयत्न, देवी ?"

"यही कि युद्ध बंद हो, सैनिक विश्राम करें और हमें अपने भूखंड में कोई चुनौती नहीं दे।"

"यह कैसे संभव है, शाहमती ?"

"आप प्रयत्न करके तो देखें, स्वामी !"

"मैं क्या करूँ, प्रिये ? सब कुछ चाहते हुए भी मैं कुछ नहीं कर सकता।"

"क्यों ?"

"मेरे पूज्य दाजीराज कभी झुकना पसंद नहीं करेंगे। मेरे चाहने मात्र से क्या होगा ?" अमरसिंह ने अपनी विवशता बताई।

अकस्मात् जोर की बिजली कड़की। अमरसिंह का विषादग्रस्त चेहरा स्पष्ट दिखाई दिया। दादुरों की टर-टर तीव्र हो गई। वर्षा का वेग पुनः बढ़ गया। फूस की छत से पानी निरन्तर टपक रहा था। एक ओर विषादग्रस्त पति-पत्नी थे और दूसरी ओर, धराखंड के स्वामी राणा प्रताप अपने बेटे के संवादों के अर्थ खोजने में व्यस्त हो गए।

प्रभात हुआ। बादलों का कालापन कुछ कम हो गया था। रह-रहकर सूर्य की किरणें बादलों की ओट से प्रकट होकर नदियों के जल में प्रतिबिंबित हो उठतीं। राणा प्रताप ने अपने कुलदेवता सूर्य को अर्घ्य अर्पित किया। उन्हें प्रणाम निवेदन कर निर्माल्य ग्रहण किया। पुरोहित जी ने शुभाशीष दिया। प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर महाराणा प्रताप सधे कदमों से चलते हुए घने वटवृक्ष के नीचे, चबूतरे पर लगे अपने आसन पर आसीन हुए।

आसन के पास ही ऊँची कद-काठी के युवराज अमरसिंह ने अपना स्थान ग्रहण किया। धीरे-धीरे समस्त सामंत अपनी-अपनी श्रेणी के अनुरूप महाराणा की ओर दृष्टि टिकाए विराजमान हुए।

महाराणा ही सबसे पहले बोले, "मित्रों ! आज मैं आपसे अपने मन की बात कहना चाहता हूँ। यही कारण है कि मैंने सबसे पहले निवेदन करना उचित समझा। आप अनुमति दें !" प्रताप के चेहरे पर एक विशिष्ट चमक उभर आई।

"आरंभ करें राजन् !" मेवाड़ के बूढ़े पुरोहित ने ससंभ्रम कहा।

"बंधुओं, मेरे मन में एक प्रश्न अत्यंत तीव्रता से उभर रहा है। मैं जानना चाहता हूँ... आप निस्संकोच अपने-अपने इष्टदेव को स्मरण कर मुझे स्पष्ट बताएँ कि आप मेरा साथ क्यों दे रहे हैं ? वह कौनसा लाभ अथवा मोह है जो आपको मेरे साथ रहने को विवश कर रहा है ? वह कौनसी आशा है, जो आपको मेरे साथ रहकर मुगलों से संघर्ष करने की प्रेरणा दे रही है ? आप मेरे साथ क्यों है ?"

महाराणा दो पल के लिए रुके।

सभी सभासद सन्न बैठे रह गए। महाराणा को आज हो क्या गया है ? वे हमारी परीक्षा लेना चाहते हैं ? क्या हमारे समुदाय में से किसी ने अनुशासन भंग किया है ? हमसे कौनसी त्रुटि हुई है कि राणा जी को आज ऐसी कठोर बात कहनी पड़ी ?

"आपका प्रश्न अकारण तो नहीं कहा जा सकता, राणाजी !" कुल पुरोहित ने विस्मय से भरकर कहा।

"प्रश्न के कारण की खोज करना आप जैसे सहयोगियों का लक्ष्य हो सकता है, किन्तु मुझे अपने प्रश्न का यदि उत्तर मिल जाए तो मैं अत्यन्त संतुष्ट होऊँगा।"

सभा फिर मौन रही। कोई कुछ भी नहीं बोला।

"आप कुछ कहें, सलूम्बर रावजी।"

महाराणा के वचनों को आज्ञा मानकर सलूम्बर रावजी उठे। अपने उत्तरीय को सीधा करते हुए कहने लगे, "अन्नदाता, आप और हम एक ही वंश के हैं। ये रक्त-सम्बन्ध ही हमें आपके साथ बाँधे हुए हैं।"

"रक्त-सम्बन्ध तो डूंगरपुर वालों के साथ भी हैं। किन्तु वे तो हमारे साथ नहीं हैं।" राणा प्रताप ने तर्क किया।

"यह उनकी इच्छा है.. उन्हें तन प्यारा है, मूल्य नहीं।" हल्दीघाटी के वीर झाला मान के पुत्र ने उठकर कहा।

"मित्रों, मैं आज आप सभी को मुक्त करता हूँ।" महाराणा ने सहसा कहा, "सारे पारम्परिक अनुशासनों से आप मुक्त हैं। मैंने आपको क्या दिया ? कष्ट, भूख, असुरक्षा, अनिद्रा, प्रतिदिन लड़ना, भागना, बाल-बच्चों को तंग करना और अपनी भूमि की तबाही करना-यही सब कुछ तो। मेरी प्रजा ने जो भूख देखी है, जो सर्वनाश देखा है, उसका गुनहगार यदि कोई है तो यह प्रतापसिंह है और कोई नहीं। मैं हृदय से चाहता हूँ कि आप मुझे मेरे

ताल पर छोड़ दें। मुगलों से संधि कर लें और अपनी तलवार के जोर पर अपने बच्चों के लिए जागीर कायम करें। अमरसिंह को भी मैं आज अपनी ओर से मुक्त करता हूँ। आप सब जहाँ जाना चाहें, चले जाएं। जिसके साथ रहना चाहें, रहें !"

प्रधान अमात्य भामाशाह से नहीं रहा गया। अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अर्ज करने लगे, "अन्नदाता, हमने आपका नमक खाया है। यह आपने कैसे सोच लिया कि हम आपको छोड़कर चले जाएँगे ? क्या यह संभव है ?"

"असंभव को संभव करने के लिए ही तो मैं आपसे कह रहा हूँ।" राणा प्रताप अडिग रहे।

"हमें आपका प्रस्ताव मंजूर है, परन्तु एक शर्त है !" अब सलूम्बर राव से रहा नहीं गया।

सबकी दृष्टि रावजी पर टिक गई।

"बिना संकोच के कहो, रावजी !"

"आपके पूर्वजों और आपने, हमारी कमर पर तलवार बाँधने की रस्म पूरी की थी। हम अपनी तलवारें आपको सौंप देते हैं। आज आप इन तलवारों से हमारी गरदनें धड़ से अलग कर दीजिए। इसके बाद आप स्वतः हम सभी से मुक्त हो जाएँगे।"

राणा प्रताप की आँखे डबडबा आई। वे कुछ भी बोल पाने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करने लगे।

अमरसिंह ने उठकर पिता के पांव पकड़ कर पूछा, "हमसे क्या त्रुटि हो गई, अन्नदाता ?"

राणा जी ने अपने पांव हटा लिए। उन्होंने अमरसिंह की ओर हिकारत-भरी दृष्टि से देखा।

"दूर हट यहाँ से !" राणा प्रताप की आँसू भरी आँखें एकाएक लाल हो गई।

कविराज ने समझ लिया कि कोई बात अवश्य है, अन्यथा प्रताप जैसा व्यक्ति इतना विचलित नहीं होता। कविराज उठे। उन्होंने अमरसिंह को संकेत से स्थान एवं सभा छोड़ने का आग्रह किया, किन्तु राणा प्रतापसिंह ने अमरसिंह को वहीं बैठने का आदेश दिया और उच्च स्वर में कहा, "मित्रों, मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनें। अमरसिंह, तुम भी सुनो ! तुम्हारे सामने ही मैं प्रस्ताव रख रहा हूँ ताकि बाद में कोई विवाद नहीं हो !"

अब कुछ-कुछ समझ में आया कि बात बाप-बेटे के बीच की है। सामंतों ने बात ताड़ ली। अमरसिंह भी समझ गया कि मुझसे कोई-न-कोई भूल हुई है, अन्यथा पिता के इतने कुपित रूप के दर्शन तो उसने आज तक कभी नहीं किए थे।

महाराणा प्रताप ने घोषणा-सी की, "मेरा निवेदन है कि मेरे बाद अमरसिंह को राणा मत बनाना। यह मेवाड़ को बेच देगा। इसे आराम पसंद है, मूल्य नहीं। जिस उद्देश्य को लेकर मैं जीवन-भर लड़ता रहा, मेरे पिता उदयसिंह जी लड़ते रहे, मेरे दादा संग्रामसिंह जी लड़ते रहे, यह अमरसिंह उस उद्देश्य की इतिश्री कर देगा। यह मुगलों के हरम में बहु-

बेटियों का डोला भेजेगा। दिल्ली दरबार की खिलअत पहनेगा और उनके फरमानों को अदब के साथ स्वीकार करेगा।"

"युवराज पर इस आक्षेप का प्रमाण, राणा जी!" पुरोहित जी का अंतर्निहित ब्राह्मण फूट पड़ा।

"प्रमाण स्वयं अमरसिंह से ही पूछा जाए।" महाराणा ने क्रोध का घूँट निगलकर कहा, "इसी से पूछें कि रात को यह अपनी पत्नी से क्या-क्या कह रहा था।

अमरसिंह की आँखें भर आईं। उसने पिता के पाँवों को दृढ़ता से पकड़ लिया और अपने आँसुओं से राणाजी के चरणों का प्रक्षालन करता रहा।

"बंधुओं, मैं रहूँ या न रहूँ, हमारे मूल्य जीवित रहने चाहिए, हमारी बहन-बेटियों की इज्जत-आबरू बनी रहे, चाहे एक नहीं सौ-सौ पीढ़ियों को ही क्यों न खपना पड़े। अपनी इज्जत ही चली गई तो धन-दौलत, खेत-खलिहान, महल और हवेलियों का क्या अर्थ है? यह सब कुछ तो वेश्याओं के पास भी होता है। हमारा मार्ग मूल्यों के लिए मर-मिटने का है। जो इस पर चलना चाहे, उसका स्वागत है, जो जाना चाहे, मुक्त है।" सिंह की गर्जना थमी।

"भगवान एकलिंगनाथ की जय!" एक सभासद् चिल्लाया।

"महाराणा प्रताप की जय!" सभा-स्थल जय-जयकार से गूँज उठा। प्रताप उठ खड़े हुए।

दूसरे दिन कुछ सामंतों की विशेष बैठक हुई। बैठक में पुरोहित जी, कविराज, भामाशाह, सलूम्बर राव, झाला मान के पुत्र, युवराज अमरसिंह एवं चार अन्य सरदार उपस्थित थे। इस बैठक में अमरसिंह ने वह सारी वार्ता ज्यों-की-त्यों सुना दी, जो उसके और शाहमती के बीच हुई थी। महाराणा को गहरा दुख पहुँचा था। सभी लोग इस चिंता में थे कि महाराणा के मन में चुभे शूल को कैसे निकाला जाए। व्यक्ति संसार-भर से संघर्ष कर सकता है, नानाविध दुखों के सागरों को भी पार कर सकता है, यंत्रणाओं को भी हँसते-हँसते झेल सकता है, परन्तु वह अपने प्रिय व्यक्ति की वाणी के घाव से टूट जाता है। अमरसिंह शूरवीर है और नेतृत्व की क्षमता से संपन्न सभी गुण उसमें हैं। दिवेर की लड़ाई में उसने जो पराक्रम दिखाया, जगन्नाथ कछवाहा के लौटने पर अमरसिंह ने मुगलों के पाँच थाने एक दिन में ही उठाकर जो कीर्तिमान स्थापित किया, सामंतों से जो सहयोग एवं स्नेह उसने प्राप्त किया, उसका कोई उदाहरण खोज निकालना कठिन है। किन्तु वही अमरसिंह अपनी पत्नी से कहे गए मात्र एक वाक्य से राणा प्रताप की अंतरात्मा को झकझोर गया। महाराणा प्रताप मन से टूट गए। उस भग्न हृदय को किस स्नेह से सिंचित किया जाए, उस मर्मांतक पीड़ा को कैसे दूर किया जाए-यही चिंता का विषय था।

"यदि हमारा मस्तक ही हमसे अलग हो जाए, यदि हमारा सिरमौर राणा ही आहत हो जाए, तो हमारा जीवित रहना कहाँ संभव है?" भामाशाह ने कहा।

"प्रश्न यह नहीं कि महाराणा का क्या होगा ? यह भी विचारणीय नहीं कि अमरसिंह को राज्य मिलेगा या नहीं, विचारणीय तो यह है कि पिछली तीन पीढ़ियों से चला आ रहा मूल्यों का संघर्ष आगे कौन-सी दिशा लेगा ? क्या हम भी आमेर और मारवाड़ के नृपतियों की श्रेणी में खड़े होकर मुगलिया शासकों और सामंतों की चरणवंदना करेंगे ? क्या हमारी धवल यश-पताका सदा-सदा के लिए कलंकित हो जाएगी।" कविराज ने कहा।

"अमरसिंहजी, आप भी तो कुछ कहें।" सलूम्बर राव ने तीक्ष्ण दृष्टि से अमरसिंह के हावभाव देखते हुए पूछ लिया।

"मैं तो पहले ही निवेदन कर चुका हूँ-कुटुंबियों का संकट और पीड़ा देखकर मन में कभी-कभार मानवीय दुर्बलता तो जाग ही उठती है। परसों रात को हीनता के इन भावों को वाणी का वाहन मिल गया और ये फूट पड़े। मुझे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उस बरसती रात में मेरी उक्तियों को कोई सुन रहा होगा। अब मैं कौनसा मुँह लेकर दाजीराज के समक्ष उपस्थित होऊँ ? मुझे जीवन-भर इस घटना का पश्चाताप रहेगा।" अमरसिंह की आँखें नम हो गईं।

"कुंवर ! यह खेद का विषय नहीं है। दुर्बलता किसमें नहीं होती है ? आप धैर्य से काम लें। हम प्रयत्न करेंगे कि राणाजी के मन में जमी गाँठ को निकाल सकें।" सलूम्बर राव ने अमरसिंह के कंधे पर हाथ रखकर आश्वस्त किया।

"यह कार्य आप मुझ पर छोड़ें, सरदारों ! मैं स्वयं इस समस्या को हल कर आज ही लौट जाना चाहूँगा। मैं वृद्ध हूँ। मैंने भी राजवंश का नमक खाया है। उस नमक का हिसाब चुकाने का अवसर आप सब मुझे प्रदान करें तो मुझे प्रसन्नता होगी। आपको कोई एतराज तो नहीं, मित्रों ?" वृद्ध पुरोहित जी ने अपनी दाढ़ी के श्वेत बालों को अंगुली से सँवारते हुए निवेदन किया।

"आपकी सेवाओं की तो हम जितनी भी प्रशंसा करें, कम है। महाराणा उदयसिंह जी ने आपसे मिली सूचनाओं के आधार पर ही चित्तौड़गढ़ छोड़ा था। आपने ही हल्दीघाटी के मोरचे की पूर्वसूचना हमें दी थी। आपकी ही सूचनाओं का प्रभाव था कि जगमाल को सिंहासन से हटाया गया। आप समर्थ हैं, योग्य हैं और हम सभी से अधिक विश्वसनीय हैं। आपके प्रयासों से बाप-बेटों के बीच की यह खाई भर जाए तो हम सभी पर यह आपका उपकार होगा।" भामाशाह ने स्वीकृति दे दी।

योजना की रूपरेखा पहले से ही बना ली गई थी। सभा विसर्जित हुई। पुरोहित ने अपने संकेत से देवजी बावरी के पुत्र लछमन को बुलाया। दस्युवृत्ति की जातिगत विशेषताओं से सम्पन्न होते हुए भी राजवंश के प्रति उसकी भक्ति अटूट थी। पुरोहित जी ने सारी बातें लछमन को समझा दीं।

पुरोहित जी सीधे राणाजी की फूस की झोंपड़ी की ओर चले गए।

महाराणा जी ने प्रेमपूर्वक पुरोहित जी को बिठाया। बात आरम्भ होने को थी कि बाहर कुछ शोरगुल सुनाई दिया। राणा प्रताप ने क्षमायाचना करते हुए बाहर निकलकर

शोरगुल का कारण जानना चाहा। पुरोहित जी भी बाहर आ गए। बाहर बैलों और गायों का एक समूह लेकर लछमन सैनिकों से वाक्‌युद्ध कर रहा था। राणा ने सैनिक प्रमुख और लछमन को पास बुलाया।

"क्या मामला है, सैनिक ?"

"अन्नदाता, इस चोर को सजा मिलनी चाहिए।" सैनिक ने कहा।

"क्यों, इसका अपराध क्या है ?"

"यह बैल चुरा लाया है, अन्नदाता, और इन बैलों को पीट रहा है ?"

"हूँ। क्या नाम है तेरा ?" महाराणा चोर की ओर मुखातिब हुए।

"अन्नदाता, मुझे लछमन कहते हैं।"

"किस जाति के हो ?"

"जी, मैं मोधिया हूँ। बावरी जात का लड़का हूँ।"

"क्या चोरी का पेशा करते हो ?"

"नहीं, अन्नदाता ! दो पीढ़ियों से हमारे वंश में किसी ने चोरी नहीं की।"

"ये बैल कहाँ से लाए ?"

"मेरी अपनी सम्पत्ति है अन्नदाता।"

"तो फिर इन बैलों को पीट क्यों रहे हो ?"

"यह तो मेरी सम्पत्ति है, मैं जो चाहे करूँ।"

"अरे भाई ! ये भी जीव हैं। इन बैलों से ही तुम कमाते-खाते हो, और इन्हीं से वैर करते हो ?"

"हुजूर, मुझे क्षमा करें ! अपनी सम्पत्ति को मैं जैसे चाहूँ, रखूँ। उन्हें मारूँ-पीटूँ या बेच दूँ। यह तो मेरा अधिकार है।"

पास खड़े सैनिक ने लछमन का गला पकड़ लिया। कड़ककर कहा, "अन्नदाता के मुँह लगता है।"

'सैनिक' इसे छोड़ दो। इसे जो चाहे, कहने दो।" महाराणा ने फिर लछमन से कहा, "जीवों को मारना तो पाप है। जो तुझे रोटी-रोजी देते हैं, जिन्होंने तेरे परिवार को भोजन दिया, उन्हें ही तू पीट रहा है। तेरे इस कार्य को कौन सही कहेगा ?"

"अन्नदाता, मेरे बड़बोलेपन को क्षमा करें। एक बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ..."

"हाँ, हाँ पूछो ?"

"आप इस सैनिक को यहाँ से दूर हटा दें। इसके सामने कहते मुझे डर लगता है।"

सैनिक चला गया।

अब रह गए प्रताप, पुरोहित जी और लछमन।

"कहो भाई, क्या कहना चाहते हो ?"

"अन्नदाता, आपने अनेक युद्ध किए। क्या वे सभी युद्ध आपने अकेले लड़े ?"

"नहीं।"

"दिवेर का मोरचा आपने कैसे फतह किया था, अन्नदाता ?"

"अमरसिंह के बल पर।"

"वर्तमान में सेना का प्रमुख कौन है ?"

"अमरसिंह और सलूम्बर राव।"

"तो हुजूर, जिन अमरसिंह ने जीवन-भर आपका साथ दिया, जिनके कारण आप विजयी बने, उन्हें आप युवराज पद से कैसे अलग कर सकते हैं। जब युवराज अमरसिंह जी जैसे शूरवीर पुत्र को आप अपनी सम्पत्ति समझकर, उनके साथ कुछ भी कर सकते हैं, तो फिर, मैं तो मूढ़-गंवार हूँ। मैं अगर अपने बैलों को पीटता हूँ तो आपको क्यों कष्ट होता है ?"

"तू गँवार तो नहीं लगता, रे ! तू है कौन ?..." महाराणा का वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि सहसा एक ओर से अमरसिंह प्रकट हो गया।

पुरोहित जी ने संकेत किया।

कुंवर अमरसिंह ने पिता के पाँव पकड़ लिए। विनीत होकर कहा, "मुझे क्षमा करें, अन्नदाता ! मैंने आपका दिल दुखाया। मुझे राजपाट कुछ भी नहीं चाहिए। आप इतने ही नाराज हैं तो मुझे आशीर्वाद दें कि मैं आपको फिर कभी मुँह नहीं दिखाऊँ।" अमर के आँसुओं ने वह सब कुछ भी कह दिया, जो वह शब्दों से नहीं कह पाया।

"राजन्, आपको स्मरण होगा कि गुप्तचर विभाग में देवजी मोधिया काम करते थे। देवजी मेरे साथ आगरा और अजमेर में भी रहे हैं। लछमन उन्हीं का पुत्र है। यह आपसे न्याय चाहता है, दीवाण !"

"ठीक है, तुम्हें न्याय मिलेगा, लछमन। मेरे बाद अमरसिंह ही राणा बनेगा। तूने मेरे मन के घावों को धो दिया।"

"बैलों का तो बस एक नाटक था, अन्नदाता ! मुझे तो आप तक साधारण लोगों की बात पहुँचानी थी, सो कह दी। मेरे कारण आपको यदि कोई कष्ट पहुँचा हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ।" लछमन ने राणा के चरणों माथा पर टिका दिया।

"लछमन ! तूने जो कुछ कहा, यह तेरी भावना नहीं थी। तुझमें मुझे मेवाड़ की प्रजा दिखाई देती है। मैं कल आवेश में अमरसिंह को जो कुछ सुना बैठा, उसका मुझे खेद है।"

फिर महाराणा ने अमरसिंह को उठाते हुए कहा, "उठो पुत्र! अपना स्थान प्राप्त करो और स्मरण रखो कि दैहिक सुख, वैभव, सोना-चाँदी, महल-हवेलियाँ, बाग-बगीचे, नौकर-चाकर हमारे उद्देश्य नहीं हैं। हम तो भगवान एकलिंगनाथ के चाकर मात्र हैं। यहाँ की प्रजा के चाकर हैं। अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित मूल्यों के रक्षक हैं। मूल्यों की रक्षा में चाहे कुछ भी बलिदान करना पड़े, कभी पीछे मत हटना !"

अजेय महाराणा का मन हलका हो गया। आकाश से बादल छँट गए। सूर्य पुनः चमकने लगा।

□

(21)

चावण्ड के चामुण्डादेवी के मंदिर में चल रहा यज्ञ आज पूर्णाहुति तक पहुँच गया। यज्ञ के निमित्त एकत्रित जनसमूह के समक्ष महाराणा प्रताप वटवृक्ष की छाया में अपने आसन पर सुशोभित थे। इधर-उधर की चर्चाएँ चल रही थीं। आम आदमी अपनी समस्याएँ सुना रहा था। सामन्तगण अपने पद के क्रमानुसार सामने बैठे थे। इतने में एक दूत ने आकर भामाशाह के कान में कुछ कहा। भामाशाह का चेहरा खिल उठा। प्रताप की दृष्टि भामाशाह पर केन्द्रित हो गई।

"क्या बात है, प्रधान जी ?" प्रताप की बड़ी-बड़ी आँखें मानों निमंत्रण माँग रही थीं।

"अन्नदाता ! बहुत ही शुभ सूचना है। चारण कविराज आगरा की यात्रा कर लौट आए हैं" भामाशाह ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"यह तो बहुत ही अच्छा संयोग है कि कविराज इस यज्ञ की पूर्णाहुति पर यहाँ पधार गए।" प्रताप का मन प्रसन्नता से अभिभूत हो गया। वे आगे कहने लगे-"आप सभी मित्रगण कोई ऐसा उपाय खोजें कि हम चारणकवि की कुछ सेवा कर सकें। रात-दिन दौड़ लगाने वाला यह व्यक्ति न कोई जागीर स्वीकारता है, न कोई आभूषण। मात्र पहनने योग्य वस्त्र और पेट भरने जितना अन्न ही यह व्यक्ति राजकोष से लेता है। न इसे लोभ है, न परिवार का मोह। इस व्यक्ति को क्या और कैसे दूँ, यह नहीं समझ पा रहा हूँ।"

उपस्थित जन समूह कविराज की सेवाओं के कई उदाहरण सुनाने लगा। महाराणा भी बीच-बीच में अपनी ओर से कई प्रसंग बता रहे थे, किन्तु उनके नेत्र सामने की पहाड़ी से प्रकट हो रहे घुड़सवारों के दल पर केन्द्रित थे। कुछ ही पलों में कविराज अपने साथियों के साथ घोड़ों से उतरे। सेवकों ने वल्गाएँ पकड़ीं। कविराज सीधे महाराणा की ओर उन्मुख होकर भीड़ में से अपना मार्ग बनाने लगे।

"आओ कविराज ! आपका स्वागत है।"

"जय एकलिंग जी की अन्नदाता !"

"जय एकलिंग।"

अभिवादन के पश्चात् महाराणा ने कविराज को बैठने का संकेत किया किन्तु वे बैठे नहीं। उन्होंने संकेत से अपने एक अनुचर को बुलाकर कई प्रकार की सामग्रियों का ढेर महाराणा जी के सामने लगवाना शुरू कर दिया।

"अन्नदाता ! बादशाह अकबर ने आपके अच्छे स्वास्थ्य की कामना की है। उस सभा में उपस्थित बीकानेर महाराज के भाई पृथ्वीराज जी ने ये वस्तुएँ आपकी सेवा में भेजी हैं।"

"और ये स्वर्णाभूषण .....?"

"ये आभूषण सम्राट अकबर ने मुझे दिए थे।"

"इतने सारे आभूषण...? ऐसा क्या किया आपने ?"

"वैसे ही उन्होंने दे दिए, । प्रधान जी आप इन्हें राज्यकोष में जमा कर लें।" कविराज ने भामाशाह की ओर संकेत किया।

"क्यों...? ये उपहार तो आपको दिए गए थे। यह तो आपकी ही सम्पत्ति है।" भामाशाह कविराज के चेहरे पर थिरकते भावों को पढ़ने की चेष्टा करने लगे।

"ये उपहार मुझे नहीं दिए गए थे। इन्हें दिया गया था महाराणाजी के एक सामान्य से दूत को। इसमें महत्व राज्य के प्रतिनिधित्व का है, इस चारण का नहीं।" चारण कवि की लोभविहीन भावना से निकले वाक्य सामंतों के मर्म तक उतरने लगे।

"आप इन्हें अपने लिए रख लें, कविराज।" इस बार महाराणा प्रताप ने अपना सुझाव दिया।

"अन्नदाता ! आपके आदेश की अवज्ञा के लिए क्षमा चाहता हूँ। किसी भी दूत, अधिकारी या कर्मचारी को दिया गया उपहार व्यक्तिगत सम्पत्ति की श्रेणी में नहीं गिनाया जा सकता है। उस व्यक्ति का सम्मान राज्य के कारण किया जाता है। इस सोच के अनुसार व्यक्ति गौण है, राज्य प्रमुख है।" कविराज समस्त सामग्री भेंट कर चुपचाप एक कोने में बैठ गया।

महाराणा जी ने कविराज के साथ गए अंगरक्षक को बुलवाया और कहा- "मित्र.... । ये कविराज तो अपनी ओर से कुछ भी नहीं बताएँगे कि इन्होंने अकबर के दरबार में क्या कहा और क्या सुना। स्वयं की प्रशंसा करना कविराज के स्वभाव में नहीं है। आप बताएं कि सम्राट अकबर की सभा में कविराज ने ऐसा क्या किया कि उन्होंने इतने सारे आभूषण इन्हें दे दिए।"

अंगरक्षक ने सभी को प्रणाम कर कहना आरम्भ किया-

"अन्नदाता ! हमें राजमहलों में ले जाने वाले अधिकारी ने बड़े आदर के साथ दरबार में उपस्थित किया। सम्राट अकबर के सामने नियत स्थान पर खड़े होकर चारण कवि ने अपने सिर की पगड़ी उतार कर नंगे सिर को झुका कर सम्राट अकबर को प्रणाम की मुद्रा में नमन किया।

"यह क्या बदतमीजी है ?" मुगलों का एक सेनापति गुर्राया। चारण कवि ने कोई उत्तर नहीं दिया। इन्होंने अपने हाथ की पगड़ी को पुनः सिर पर धारण कर लिया और अपना सिर ऊँचा कर खड़ा रहा।

"दूत...?" इस बार बादशाह सलामत ने स्वयं पूछा।

"जी... हुजूर।" बिना झुके चारण कवि ने उत्तर दिया। इसे देख कवि पृथ्वीराज, मानसिंह और समस्त हिन्दू अधिकारी भी चौंके।

"दरबार में नंगे सिर आदाब अर्ज करने का कौनसा रीति-रिवाज है ?" अकबर ने पुनः पूछा।

"हुजूर ! नंगा सिर करके नमन करना हमारे दरबार के लिए तो अपराध गिना जाता है।" निडर चारण कविराज ने उत्तर दिया।

"फिर तुमने यह बदसलूकी करने की हिम्मत कैसे की ?"

"जी..., मेरी विवशता थी।"

"यह जानते हुए कि तुम सम्राट के दरबार में एक दूत बनकर खड़े हो। यह जानते हुए कि ऐसे काम के लिए तुम्हारा सिर भी धड़ से अलग किया जा सकता है, तुमने सिर नंगा किया... ?"

"मैंने निवेदन किया कि इसमें मेरी मजबूरी थी।"

"कौनसी मजबूरी... ?"

"हुजूर, यह पगड़ी महाराणा प्रताप की है। उन्होंने अपने सिर से इस पगड़ी को उतार कर मेरे सिर पर पहनाई थी।"

"यह तो कोई मजबूरी नहीं है ?"

"है, हुजूर... । जिस राणा का सिर आपके दरबार में नहीं झुका, जिसने आपकी अधीनता स्वीकार नहीं की, उसकी दी हुई पगड़ी को आपके समक्ष झुका दूँ, यह मुझे स्वीकार नहीं था। यही कारण था कि मुझे महाराणा जी की दी हुई पगड़ी को अपने सीधे हाथ में रखना पड़ा और आपको सलाम करना पड़ा।"

"जब तुम्हारा आश्रयदाता अपनी पगड़ी की इतनी कीमत आंकता है, तो तुमने सलाम क्यों किया ?"

"मैं चारण हूँ। मेरा काम दूत कर्म है। दूत को कई स्थानों पर कई लोगों को नमन करना होता है। इस कारण मैंने आपको नमन किया। प्रतापसिंह जी जितना साहस मुझमें नहीं है, किन्तु उनकी धरोहर की रक्षा तो मैं कर ही सकता हूँ।"

"यदि तुम्हारा सिर काट दिया जाए तो यह पगड़ी पैरों की ठोकरों में होगी।" अकबर का क्रोध बढ़ता जा रहा था।

"आप ऐसा नहीं कर सकते हैं हुजूर। यदि आपने ऐसा किया तो पगड़ी के साथ मैं भी अमर हो जाऊँगा। लोग कहेंगे कि एक चारण ने पगड़ी की रक्षा में अपनी जान दे दी। शायद आपका दरबार मुझे इतनी शोहरत नहीं देगा।" निर्भीक कवि कहता ही गया।

"तुम बहुत चालाक हो दूत। अब बताओ मेवाड़ से इतनी दूर चलकर आने का कारण क्या है ?"

"आपके कृपापात्र कवि पृथ्वीराज जी ने दो दोहे लिखकर भेजे थे। उनका जवाब लेकर उपस्थित हुआ हूँ।"

"पहले तो यह बताओ कि तुम्हारा राणा क्या जंगलों में भटकने से तंग आ चुका है ?"

"यह अनुमान आपने कैसे लगाया, हुजूर ?"

"महाराणा ने बहुत पहले हमें पत्र लिखा था कि वह हमसे सुलह करना चाहता है।"

"ऐसे किसी पत्र की जानकारी न महाराणा जी को है, न हमारे यहाँ के किसी अधिकारी को। कहीं ऐसा तो नहीं कि आपकी खुशामद करने वालों में से किसी ने फर्जी पत्र तैयार कर लिया हो और आपने उसे सच मान लिया हो ?"

"लगता है पृथ्वीराज जी के दोहों से तुम्हारा राणा का मन फिर से कठोर हो गया है। खैर... छोड़ो उन प्रसंगों को। अब बताओ कि तुम क्या उत्तर लेकर आए हो ?"

"मुझे आज्ञा दी थी कि यह पत्र पृथ्वीराज जी को ही प्रस्तुत करूँ, क्योंकि पृथ्वीराज जी के पत्र का उत्तर उन्हें ही दिया जाना चाहिए।"

चारण कवि की निर्भीक वाणी दरबारियों में अपना स्थान बनाती जा रही थी।

"वह पत्र मैंने बादशाह सलामत की इजाजत से ही लिखा था। मेरे पत्र का उत्तर आप हुजूर के सामने बता सकते हैं।" इस बार पृथ्वीराज ने अपना मुँह खोला।

"यदि आप यही चाहते हैं तो यह उत्तर पत्र आपकी सेवा में समर्पित है।" चारण कवि ने अपने दुपट्टे में खोंसे गए मखमली वस्त्र पर उकेरे गए पत्र को निकाल कर भेंट करना चाहा।

"पत्र हमें नहीं दें। आप स्वयं इसे पढ़कर सुनाएँ कि आपका राणा क्या कहना चाहता है... ?" अकबर ने आदेश दिया। कविराज तो चाहता ही यह था। उसने ऊँचे स्वर में दोहों का पठन आरम्भ किया-

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूं इकलिंग।
उगे जाँही उगसी, प्राची बीच पतंग॥
खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूँछा पाण।
पछटण है जेतो पतो, कलमां सिर के वाण॥
सांग मूँड सहसी सको, समजस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतो भलां, वेण तुरक सूँ वाद॥

भावार्थ इस प्रकार है- एकलिंगनाथ इस तन से प्रताप के मुख से (अकबर को) तुरक ही कहलाएगा (पातशाह नहीं), सूर्योदय जहाँ होता है वहीं पूर्व दिशा में ही होगा। हे वीर पृथ्वीराज! सहर्ष मूछों पर ताव दो, जब तक प्रताप है उसकी तलवार यवनों के सिर पर ही जानो। प्रताप सिर पर भाला सहेगा क्योंकि अपने बराबर वालों का यश विष के समान होता है। हे योद्धा पृथ्वीराज! तुरक के साथ वचनरूपी विवाद से आप भलीभाँति विजयी हों।"

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। कवि पृथ्वीराज का चेहरा दमक उठा। कुछ क्षणों के मौन के बाद सम्राट ने कहा-"चारण! तेरा स्वामी अब भी सीधा चलना नहीं चाहता है। किन्तु तुम्हारी स्वामीभक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तेरा राणा भी भाग्यशाली है। जिस राणा के सम्मान में उसके दूत जान की बाजी लगाने में हिचक महसूस नहीं कर सकते, वह राणा कितना प्रभावी होगा ?"

इसके बाद बादशाह अकबर ने अपने गले का हार कविराज को उपहार में दिया। इसके साथ ही उन्होंने और भी कई प्रकार की वस्तुएँ इन्हें दीं। जब हम विदा हुए उस समय भी कविराज ने अपनी पगड़ी उतार कर उन्हें नमन किया।

"वाह कविराज! आप धन्य हैं। आपका वंश धन्य है और वह सम्राट भी धन्य है जिसमें व्यक्ति को पहचानने की अद्भुत क्षमता है," कहकर महाराणा ने खड़े होकर कविराज को गले लगा लिया।

जन समुदाय बोल उठा-

"एकलिंगनाथ की जय...
महाराणा प्रताप की जय"

□

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

I. उपन्यास विधा सम्बन्धी प्रश्न :

1. 'उपन्यास' की परिभाषा देते हुए उसके तत्वों पर प्रकाश डालिये।
2. "उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है।" विवेचना कीजिये।
3. उपन्यास में 'देश-काल' का क्या महत्व है।
4. उपन्यास के कितने प्रकार होते हैं। सविस्तार वर्णन कीजिये।
5. हिन्दी उपन्यास के विकास पर निबन्ध लिखिये।
6. निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिये—
   (अ) कथोपकथन (ब) भाषा-शैली
   (स) घटना-चरित्र प्रधान उपन्यास (द) प्रेमचन्द्र के उपन्यास

II. निम्नांकित अवतरणों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए—

1. "जहाँ तक हो सके, व्यक्ति को किसी के अहसान से बचकर रहना चाहिए, क्योंकि उपकार करने वाला व्यक्ति, यदि सज्जन है, तो वह कभी भी अपने द्वारा किए गए उपकार को गिनाएगा नहीं, किन्तु यदि वह धूर्त है तो किए गए उपकार को जगजाहिर कर उपकृत व्यक्ति के यश को फीका करने का प्रयास करेगा।" (पृष्ठ 5)
2. "प्रश्न यह है कि हमारे साथ सेना है, प्रशासनिक तंत्र है, आर्थिक नियंत्रण है, अर्थात् सब कुछ हमारे पास है। दूसरी ओर प्रताप अकेला है, उसे राज्य का आश्रय मिला हुआ है। उसका प्रभुत्व भी नहीं है, तथापि आम आदमियों में उसकी पहचान बन रही है, इसका कारण मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।" (पृष्ठ 7)
3. "मैं यहाँ रह कर कम से कम शहरी विष से तो दूर हूँ। वनों में रहने वाले भील युवकों में जितनी सच्चाई है, संभव है उन युवकों में नहीं है, जो दुर्ग के प्रासादों से अपनी प्रजा को देखते हैं।" (पृष्ठ 12)
4. "यही गलतफहमी राजनेताओं एवं सत्ता शीर्ष पर बैठे लोगों को होती है। वे समझते हैं कि संपूर्ण देश एवं उसकी रीति-नीति के नियंता वे लोग हैं, जो ऊपर से चमकदार वस्त्र पहनते हैं, ऊँची पगड़ियाँ धारण करते हैं, या मखमली गद्दों पर शयन करते हैं।" (पृष्ठ 12)
5. "लोगों की जय-जयकार, कुर्सी की मादकता और बुरा-भला कर गुजरने की क्षमता राजाओं के अहं में वृद्धि करती है। इन सारी स्थितियों से तो आपको गुजरना होगा, कुँवर जी!" (पृष्ठ 12)
6. "सत्ताधारियों की चमक और वेश्याओं की पायलों की धमक में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। सत्ताधीश स्वयं को प्रजा से विशिष्ट समझ लेता है और वेश्या प्रत्येक पुरुष को बिकाऊ मान बैठती है-यही दोनों में साम्यता के आधार हैं, किन्तु इन दोनों के अपवाद भी धरती पर होते हैं।" (पृष्ठ 12)

7. "बेटा, तू औरत नहीं है, इसलिए माँ के मन की पीड़ा को क्या समझेगा ? फिर भी इतना समझ ले कि मेरे जीवन की ज्योति का आधार एक मात्र तू ही है। मैं किसी महाराणा या महाराजकुँवर को नहीं जानती हूँ। मेरे लिए इन समस्त पदों की तुलना में मेरा पुत्र मुझे प्रिय है।" (पृष्ठ 14)

8. "यही कि उसे प्रताप से विवाह करना है, महलों से नहीं। उसे बहू बन कर रहना है, राजरानी नहीं।" (पृष्ठ 24)

9. "क्या किसी पहाड़ का नाम धरती है, या किसी मैदान या नदी का नाम ? बाईजी, धरती बसती है धरती पुत्रों के मन में। धरती के प्रति लगाव का भाव, उसके प्रति समर्पण का भाव एवं धरती पुत्रों के प्रति सेवा का भाव, जहाँ भी होता है, वह धरती जीवित कही जाती है।"

10. "यह तो इस युग की ही विशेषता है कि सत्ता शीर्ष पर बैठा व्यक्ति आम आदमी की जेब काटकर अपना घर भरता है और स्वयं को सेवक कहता है। राज्य की आय में से अपने लिए जागीरें निर्मित करता है, और कहता है कि मैं जनता की भलाई के लिए कार्य कर रहा हूँ।" (पृष्ठ 30)

11. "सुख एक मृगमरीचिका है, जिसके पीछे दौड़कर कई लोगों ने अपने जीवन की जवानियाँ खो दी हैं। आपने जो दोनों मार्ग सुझाए हैं, उनमें से किसका चुनाव किया जाना उचित होगा, यह तो व्यक्ति के मन में बैठा वह मूल्य है, जिसकी कसौटी पर व्यक्ति निर्णय लेता है।" (पृष्ठ 62)

12. "मुझे इतनी समझ तो नहीं है कि मैं बड़े पद पर आसनी और छोटे पद पर काम कर रहे व्यक्ति में अन्तर कर सकूँ, क्योंकि मेरे मत में दोनों ही व्यक्ति नौकर हैं, चाहे एक बड़ा नौकर हो या दूसरा छोटा नौकर। रही आज की हवा की बात, तो मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि हवाएँ चाहे कैसी भी चलें, मन तो वहीं रहता है। व्यक्ति की इज्जत, उसकी शान और उसकी चाल वही रहनी चाहिए। जो चीज मन की होती है, उस पर बाहरी हवा का कोई असर नहीं होता है।" (पृष्ठ 63)

13. "आप सोने के पलंग पर सो सकते हैं और मैं धरती की किसी चट्टान पर, मुझे नींद उतनी ही आएगी। आप स्वर्णपात्रों में भोजन कर सकते हैं, किन्तु यदि मेरा स्वाभिमान सुरक्षित रहता है तो पलाश के पत्तों पर परोसा गया भोजन भी मेरे लिए उतना ही स्वादु होगा।" (पृष्ठ 65)

14. "हम कहते हैं कि हम आप पर आक्रमण नहीं करेंगे और वे चाहते हैं कि हमारा राज्य उनके राज्य में मिला लिया जाए। हम चाहते हैं मैत्री और वे चाहते हैं स्वामी और दास का सम्बन्ध।" (पृष्ठ 71)

15. "वाह रे, प्रताप ! तूने आज मुझे परास्त कर दिया। तेरी ऊँचाई के सामने मैं बौना हो गया। अरावली की चट्टानों के सामने आगरा का साम्राज्य मिट्टी जैसा हो गया। इस गरीबी में भी तूने वह कर दिखाया, जो बड़े-बड़े शहंशाह नहीं कर सके।" (पृष्ठ 103)

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमाक्षर दिए गए कोष्ठक में लिखिए।

1. कुंवर प्रतापसिंह चित्तौड़गढ़ के नीचे मैदानी भाग में रहता था क्योंकि-
   (क) उसे शिकार का शौक था।
   (ख) महाराणा उदयसिंह का आदेश था।
   (ग) उसे वनवासियों से प्रेम था।
   (घ) उसे देश निकाला दे दिया गया था। ( )
2. जैवन्ती बाई अपने पुत्र प्रताप को डूंगरपुर अभियान पर नहीं भेजना चाहती थी क्योंकि-
   (क) उसे भय था कि कहीं उसकी सेना के लोग ही उसे मार न डालें।
   (ख) प्रताप को युद्ध से भय लगता था।
   (ग) प्रताप की उम्र युद्ध के योग्य नहीं थी।
   (घ) प्रताप स्वयं युद्ध में नहीं जाना चाहता था। ( )
3. चारण कवि के अनुसार-
   (क) धरती, मैदान को कहते हैं।
   (ख) धरती का अर्थ पर्वत है।
   (ग) धरती सरिताओं एवं वनभूमि को कहते हैं।
   (घ) धरती का निवास निवासियों के मन में होता है। ( )
4. युद्धों का सबसे अधिक बोझ झेलना पड़ता था-
   (क) किसानों को। (ख) मजदूरों को।
   (ग) व्यापारियों को। (घ) सैनिकों को। ( )
5. महाराणा प्रताप के अनुसार राष्ट्रीय एकता का आधार था-
   (क) एक शासक, उसके कुछ पिछलग्गू और अनाक्रमण संधि।
   (ख) न कोई प्रमुख शासक, न कोई पिछलग्गू और अनाक्रमण संधि।
   (ग) न कोई प्रमुख, न कोई पिछलग्गू।
   (घ) सभी प्रमुख शासक और आक्रमण के समय सभी का सम्मिलित होना। ( )
6. अकबर की नजरों में प्रताप-
   (क) योग्य शासक था।
   (ख) अवज्ञा, ढिठाई, धोखाधड़ी और कपटाचार की सीमाएँ लाँघ चुका था।
   (ग) अहंकारी था।
   (घ) अपना राज्य बढ़ाना चाहता था। ( )

7. "यदि स्वाभिमान बेच कर हम सुख सुविधा के साधन एकत्रित कर अपने बच्चों को दे जाएँ, तो इससे न बच्चों का भला होगा न हमारा।" यह वाक्य जिसने कहा था, उसका नाम था-

(क) ग्वालियर नरेश रामसिंह। (ख) महाराणा प्रताप।
(ग) चारण कवि। (घ) जैवन्ती बाई। ( )

8. शिकार कर रहे मानसिंह पर प्रताप ने आक्रमण करने की आज्ञा नहीं दी क्योंकि-

(क) प्रताप उससे वैर नहीं बढ़ाना चाहता था।
(ख) प्रताप आक्रमण करने की स्थिति में नहीं था।
(ग) प्रताप के मन में मुगल सेनापति का भय था।
(घ) अकेले पर वार करना कायरता का काम था। ( )

9. मुगल सेनापति अब्दुर्रहीम खानखाना प्रताप के विरुद्ध नहीं लड़ सका क्योंकि वह-

(क) सेना की दृष्टि से कमजोर था।
(ख) उसे पर्वतीय भागों में युद्ध करने का अभ्यास नहीं था।
(ग) प्रताप से संधि करना चाहता था।
(घ) प्रताप के मूल्यों के प्रति समर्पण से प्रभावित हो गया था। ( )

10. शक्तिसिंह को अपने भाई प्रताप को संकट के समय सहायता देने की प्रेरणा देने वाले का नाम था-

(क) झाला बीदा (ख) हकीम खाँ सूर
(ग) रामसिंह तँवर (घ) भामाशाह ( )

11. हल्दीघाटी युद्ध के बाद अकबर ने कुछ दिनों तक सेनापति मानसिंह से मिलने से मना कर दिया क्योंकि-

(क) मानसिंह युद्ध हार कर आया था।
(ख) मानसिंह के विरुद्ध अन्य सेनापतियों ने कान भर दिए थे।
(ग) मानसिंह की सेना भूख से मरने लगी थी।
(घ) मानसिंह द्वारा किया गया युद्ध किसी परिणाम तक नहीं पहुँच पाया था। ( )

12. एक बार महाराणा प्रताप अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के प्रति नाराज हो गए क्योंकि-

(क) अमरसिंह के मन में सुख-सुविधाओं के प्रति झुकाव दिखाई दिया था।
(ख) अमरसिंह पिता की आज्ञा नहीं मानता था।
(ग) अमरसिंह को युद्ध संचालन का अहंकार था।
(घ) अमरसिंह प्रताप के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा था। ( )

13. चारण कवि ने अकबर के समक्ष नंगे सिर सलाम किया था क्योंकि-
    (क) चारण कवि के सिर पर पगड़ी नहीं थी।
    (ख) चारण कवि स्वभाव से अक्खड़ था।
    (ग) अकबर के दरबार में सलाम करने की यही परम्परा थी।
    (घ) चारण कवि प्रताप की दी गई पगड़ी को नहीं झुकाना चाहता था। ( )

14. प्रताप ने अपने जीवनकाल में मेवाड़ की जिन राजधानियों को देखा था वे थीं-
    (क) चित्तौड़गढ़, गोगून्दा, कुंभलगढ़, चावंड
    (ख) चित्तौड़गढ़, गोगून्दा, उदयपुर, चावंड
    (ग) गोगून्दा, चावंड
    (घ) गोगून्दा, कुंभलगढ़, चावंड ( )

2. लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. व्यक्ति को स्वयं के लिए दूसरों द्वारा दिए गए उपकारों से बचना चाहिए, क्यों ?
2. उदयसिंह अपने पुत्र से, प्राचीन प्रसंगों को स्मरण कर भयभीत हो गया था। वे प्राचीन प्रसंग क्या थे ?
3. उदयसिंह को क्षत्रिय प्रमाणित करने में किन मापदण्डों का प्रयोग किया गया।
4. महारानी धीरजकंवर प्रताप से ईर्ष्या रखती थीं-क्यों ?
5. पटरानी जैवन्तीबाई महल छोड़कर चित्तौड़गढ़ दुर्ग के नीचे मैदानी भाग में क्यों रहती थी ?
6. "धरती बसती है धरती पुत्रों के मन में"-यह वाक्य किसने कहा ? इस वाक्य के भावों को अपनी भाषा में लिखिए।
7. जैवन्तीबाई अपने पुत्र को युद्ध में नहीं भेजना चाहती थी, उसे किसका डर था ?
8. प्रताप ने अपनी होने वाली पत्नी को समझाने हेतु माँ से क्या कहा था ?
9. चारणकवि ने जैवन्तीबाई से धरती के बारे में किस प्रकार के भाव प्रकट किए हैं ?
10. महाराजकुंवर प्रताप के किसानों के प्रति प्रकट किए गए भावों को अपने शब्दों में लिखिए।
11. अब विजेता का स्वागत करने हेतु कुत्ते और शृगाल ही बचे थे"-इस कथन का अर्थ समझाइए।
12. चित्तौड़गढ़ के निवासियों की मृत्यु पर प्रताप ने जलांजलि क्यों दी ?
13. उदयसिंह के दाह संस्कार के अवसर पर आम आदमी ने प्रताप की उपस्थिति को अनुचित क्यों माना ?
14. सलूम्बर राव ने जगमाल को राज्यसिंहासन से उठा दिया-क्यों ?

15. महाराणा प्रताप को अकबर के पक्ष में करने के लिए कई राजदूत आए थे। इ दूतों के नाम लिखिए।
16. कुंवर मानसिंह बिना भोजन किए ही उदयसागर की पाल से क्यों चले गए ?
17. अकबर की दृष्टि में महाराणा प्रताप ने कुंवर मानसिंह का कोई अपमान नहं किया था। अकबर के सोच को अपने शब्दों में लिखिए।
18. महाराणा प्रताप देश के राज्यों में एकता चाहते थे। उनके विचार के अनुसार एकत के कौनसे आधार थे ?
19. राव लूणकरण के मन में प्रताप के विरुद्ध सैनिक अभियान के विषय में क्या भाव आए थे ?
20. ग्वालियर नरेश रामसिंह, हल्दीघाटी के युद्ध के पहले कुंवर अमरसिंह पर बहुत प्रसन्न थे, क्यों ?
21. महाराणा प्रताप को पता था कि कुंवर मानसिंह बहुत ही कम साथियों के साथ शिकार खेलने गए थे, फिर भी उन्होंने मानसिंह पर हमला नहीं किया-क्यों ?

3. निबन्धात्मक प्रश्न :

1. 'धरती का सूरज' इस उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
2. राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में महाराणा प्रताप के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. "मूल्यों के लिए स्वयं को बलिदान देने होते हैं" इस कथन को महाराणा प्रता के चरित्र के आधार पर प्रमाणित कीजिए।
4. "कर्तव्य, भावनाओं से ऊँचे होते हैं।" इस कथन को प्रताप के जीवन वे उदाहरण देकर पुष्ट कीजिए।
5. प्रताप के जीवन के उन अंशों को स्पष्ट कीजिए, जिनसे मूल्य स्थापना के भा उजागर होते हों।
6. धीरजकुँवर एवं जैवन्तीबाई के चरित्र का विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं के आध पर कीजिए-
   (1) उनकी पैत्रिक पृष्ठभूमि
   (2) जगमाल एवं प्रताप के विषय में विचार
   (3) अंतःपुर की स्थितियाँ
7. प्रताप और हकीम खाँ सूर के आपसी सम्बन्धों पर आपके विचारों का विवर दीजिए।
8. संक्षिप्त विवरण दें-
   (1) चारण कवि   (2) अमरसिंह
   (3) चेतक घोड़ा   (4) पंडित गोपीनाथ
   (5) कुंवर